बुद्धत्व का मनोविज्ञान

(The Psychology of the Esoteric- का हिन्दी अनुवाद)

अनुक्रम

1. अंतस-क्रांति.....2
2. ध्यान का रहस्य.....9
3. काम, प्रेम और प्रार्थना: दित्यता के तीन चरण.....21
4. कुंडलिनी योग : उदगम की ओर वापसी.....30
5. गुहा के खेल विकास में अवरोध.....45
6. सपनों का मनोविज्ञान.....55
7. सात शरीरों का अतिक्रमण.....67
8. बनना और होना.....87
9. ज्ञान का भ्रम.....99
10. सत्यम्, शिवम्, सुंदरम् दिव्यता के झरोखे.....112
11. सम्यक प्रश्न.....123
12. तर्क और तर्कातीत का संतुलन.....139

पहला प्रवचन

अंतस-क्रांति

ओशो मनुष्य के विकास के पथ पर क्या यह संभव है कि भविष्य में किसी समय सारी मनुष्य-जाति संबुद्ध हो जाए? आज मनुष्य विकास के किस बिंदु पर है?

मनुष्य के साथ विकास की प्राकृतिक स्वत: चलने वाली प्रक्रिया समाप्त हो जाती है। मनुष्य अचेतन विकास की अंतिम रचना है। मनुष्य के साथ सचेतन विकास का आरंभ होता है। बहुत सी बातें खयाल में ले लेनी है।

पहली बात अचेतन विकास यांत्रिक एवं प्राकृतिक होता है। यह अपने आप से होता है। इस प्रकार के विकास के माध्यम से चेतना विकसित होती है। किंतु जैसे ही चेतना अस्तित्व में आती है, अचेतन विकास रुक जाता है, क्योंकि इसका उद्देश्य पूरा हो चुका है। अचेतन विकास की आवश्यकता तभी तक है, जब तक कि चेतना अस्तित्व में न आ जाए। मनुष्य चेतन हो गया है। एक प्रकार से उसने प्रकृति का अतिक्रमण कर लिया है। अब प्रकृति कुछ नहीं कर सकती। प्राकृतिक विकास के माध्यम से जो अंतिम उत्पाद संभव था, वह अस्तित्व में आ चुका है। अब मनुष्य यह निर्णय करने के लिए स्वतंत्र है कि वह विकसित हो या न हो।

दूसरी बात अचेतन विकास सामूहिक होता है, लेकिन जिस पल विकास सचेतन बनता है, वह निजी हो जाता है। मानव-जाति से परे किसी सामूहिक, स्वत: चलने वाले विकास की गति नहीं है। अब से विकास एक निजी प्रक्रिया बन गया है। चेतना से निजता पैदा होती है। जब तक चेतना विकसित न हो, कोई निजता नहीं होती। केवल प्रजातियां होती है, व्यक्ति नहीं।

विकास अगर अभी तक अचेतन हो तो यह एक स्वत: चलने वाली प्रक्रिया होती है, इसके बारे में कोई अनिश्चितता नहीं होती है। घटनाएं कार्य और कारण के नियम से घटित होती हैं। अस्तित्व यंत्रवत और निश्चित होता है। लेकिन मनुष्य के साथ, चेतनता के साथ अनिश्चितता अस्तित्व में आ जाती है। अब कुछ भी निश्चित नहीं होता। विकास घटित हो सकता है या नहीं भी हो सकता है। क्षमता तो होती है, पर चुनाव पूरी तरह से प्रत्येक व्यक्ति पर निर्भर होता है। इसीलिए चिंता मानवीय घटना है। मनुष्य से नीचे के जगत में कोई चिंता नहीं है, क्योंकि चुनाव की स्वतंत्रता भी नहीं है। प्रत्येक घटना उसी तरह से घटित होती है जैसे कि उसे घटित होना चाहिए। वहां पर न चुनाव होता है, न चुनाव करने वाला, और चुनाव करने वाले की अनुपस्थिति में चिंता असंभव है। कौन चिंतित होगा? कौन तनावग्रस्त होगा?

चुनाव की संभावना के साथ चिंता एक छाया की तरह आती है। अब हर चीज को चुना जाना है। प्रत्येक कार्य सचेतन प्रयास होना है। तुम अकेले ही उत्तरदायी होते हो। अगर तुम असफल होते हो, तो तुम असफल होते हो। यह तुम्हारा उत्तरदायित्व है। अगर तुम सफल होते हो, तो तुम सफल होते हो। यह भी तुम्हारा उत्तरदायित्व है।

और एक अर्थ में प्रत्येक चुनाव परम होता है। तुम इसे अनकिया नहीं कर सकते, तुम इसे भूल नहीं सकते, तुम इससे पहले की स्थिति में फिर से वापस नहीं जा सकते। तुम्हारा चुनाव तुम्हारी नियति बन जाता है। यह तुम्हारे साथ रहेगा और यह तुम्हारा एक हिस्सा बन जाएगा। तुम इससे इनकार नहीं कर सकते। लेकिन तुम्हारा चुनाव सदा ही एक जुआ है। प्रत्येक चुनाव अनभिज्ञता में किया जाता है, क्योंकि कुछ भी निश्चित नहीं होता।

यही कारण है कि मनुष्य चिंता से पीड़ित होता है। वह अपनी गहराइयों में चिंतित होता है। सबसे पहली बात जो उसे संताप ग्रस्त करती है, वह यह है कि होना है या नहीं होना है? करना है या नहीं करना है? यह करूं या वह करूं?

चुनाव न करना संभव नहीं है। अगर तुम नहीं चुनते हो, तो तुम न चुनने को चुन रहे हो, यह भी एक चुनाव है। इसलिए तुम चुनने के लिए बाध्य हो। तुम ' न चुनने' के लिए स्वतंत्र नहीं हो। चुनाव न करने का वैसा ही परिणाम होगा जैसा कि चुनाव करने का।

यह सजगता ही मनुष्य की गरिमा, प्रतिष्ठा और सौदर्य है। लेकिन यह एक बोझ भी है। जैसे ही तुम सजग होते हो वैसे ही तुम्हें एक गरिमा प्राप्त होती है और बोझ भी अनुभव होता है, दोनों एक साथ आते है। प्रत्येक कदम इन्हीं दो बिंदुओं के बीच की गति होती है। मनुष्य के साथ दो बातें पैदा होती है चुनाव करना और जागरूकता से अपनी निजता को विकसित करना। तुम विकसित हो सकते हो पर तुम्हारा विकास तुम्हारा निजी प्रयास होता है। तुम विकसित होकर बुद्ध हो सकते हो या नहीं भी हो सकते हो। चुनाव तुम्हारे हाथ में है।

तो विकास दो प्रकार का है सामूहिक विकास और वैयक्तिक सचेतन विकास। लेकिन हू विकास ' को अचेतन सामूहिक प्रगति समझा जाता है, इसलिए यह बेहतर होगा कि हम मनुष्य के संदर्भ में 'क्रांति' शब्द का प्रयोग करें। मनुष्य के साथ क्रांति संभव हो जाती है।

क्रांति का जिस अर्थ में मैं यहां प्रयोग कर रहा हूं उसका अभिप्राय है, विकास की ओर किया गया निजी, सचेतन प्रयास। यह निजी उत्तरदायित्व को उसकी चरम सीमा पर लाना है। अपने विकास के लिए मात्र तुम ही उत्तरदायी हो।

सामान्यत: मनुष्य अपने विकास के प्रति उसका जो उत्तरदायित्व है, उससे भागने की कोशिश करता है; चुनाव करने की जो स्वतंत्रता है, उसके उत्तरदायित्व से भागने का प्रयास करता है। स्वतंत्रता बहुत भयभीत करती है। अगर तुम गुलाम हो तो तुम अपने जीवन के प्रति उत्तरदायी कभी नहीं होते; कोई दूसरा ही उत्तरदायी होता है। इसलिए एक प्रकार से गुलामी बहुत सुविधाजनक घटना है। वहां कोई बोझ नहीं होता। इस संदर्भ में देखा जाए तो गुलामी एक स्वतंत्रता है क्योंकि तुम सजग चुनाव करने से बच सकते हो। जिस क्षण तुम पूरी तरह से स्वतंत्र होते हो, तुम्हें अपने चुनाव स्वयं करने पड़ेंगे। तुम्हें कोई कुछ करने को बाध्य नहीं करता है; सारे विकल्प तुम्हारे सामने खुले होते है। तब मन से संघर्ष शुरू होता है। इसलिए व्यक्ति स्वतंत्रता से भयभीत हो जाता है।

कम्युनिज्म या फासिज्म जैसी विचारधाराओं के प्रति आकर्षण के कारणों में से एक कारण यह भी है कि वे व्यक्तिगत स्वतंत्रता से पलायन का प्रस्ताव रख देती हैं और व्यक्तिगत उत्तरदायित्व को नहीं मानती। व्यक्ति से उत्तरदायित्व का बोझ हटा लिया जाता है। समाज को जिम्मेवार ठहराया जाता है। जब भी कुछ गलत हो जाता है तुम राज्य पर, संगठन पर, अंगुली उठा सकते हो। मनुष्य बस एक सामूहिक संरचना का भाग बन जाता है। लेकिन व्यक्तिगत स्वतंत्रता को इनकार करके कम्युनिज्म और फासिज्म मानव के विकास की संभावना से भी इनकार कर देते है। यह उस महान संभावना से पीछे लौट जाना है जिसे क्रांति प्रस्तुत करती है मनुष्य का पूर्ण रूपांतरण। जब ऐसा होता है तो तुम परम को उपलब्ध करने की संभावना को नष्ट कर देते हो। तुम्हारा पतन हो जाता है, तुम दुबारा पशुओं के समान हो जाते हो।

मेरे देखे आगे का विकास निजी उत्तरदायित्व के साथ ही संभव है। तुम अकेले उत्तरदायी हो। यह उत्तरदायित्व छद्म रूप में एक महान आशीष है। इस व्यक्तिगत स्वतंत्रता के साथ एक संघर्ष का जन्म होता है जो कि अंतत: चुनाव रहित बोध की ओर ले जाता है। अचेतन विकास का पुराना ढांचा हमारे लिए समाप्त हो चुका

है। तुम इसमें लौट सकते हो, लेकिन तुम इसमें ठहर नहीं सकते। तुम्हारा अस्तित्व विद्रोह कर देगा। मनुष्य चेतन हो चुका है, उसे चेतन बने रहना पड़ेगा। कोई और रास्ता नहीं है।

अरविंद जैसे दार्शनिक पलायनवादियों को बहुत लुभाते हैं। वे कहते है कि सामूहिक विकास संभव है। दिव्यता का अवतरण होगा और प्रत्येक व्यक्ति संबुद्ध हो जाएगा। लेकिन मेरे देखे यह संभव नहीं है। और अगर ऐसा संभव भी हो तो भी इसका कोई महत्व नहीं होगा। अगर तुम अपने व्यक्तिगत प्रयास किए बिना संबुद्ध हो जाते हो तो यह संबोधि किसी महत्व की न होगी। इससे तुम्हें उस प्रकार की समाधि नहीं मिलेगी जो प्रयास की पूर्णता से मिलती है। इसको मिले हुए के रूप में लिया जा सकता है- जैसे कि तुम्हारी आंखें, तुम्हारे हाथ, तुम्हारा श्वसन-तंत्र। ये महान वरदान हैं, लेकिन कोई उनका महत्व नहीं समझता, न ही उनको प्रिय मानता है।

जैसा कि अरविंद वादा करते हैं, अगर उसी प्रकार से तुम एक दिन संबुद्ध होकर जन्म लो तो यह महत्वहीन होगा। तुम्हारे पास बहुत कुछ होगा, लेकिन क्योंकि यह तुम्हारे पास बिना प्रयास के, बिना परिश्रम के आ गया है, यह तुम्हारे लिए अर्थहीन होगा। इसका महत्व खो जाएगा। सचेतन प्रयास आवश्यक है। उपलब्धि उतनी सार्थक नहीं है जितना कि प्रयास स्वयं में है। प्रयास इसको अर्थवत्ता देता है, संघर्ष इसको इसकी पहचान देता है।

जैसा कि मैं इसको देखता हूं वह संबोधि जो अचेतन, सामूहिक रूप से, दिव्यता की भेंट के रूप में आती है, न केवल असंभव है बल्कि अर्थहीन भी है। तुम्हे संबोधि के लिए संघर्ष करना चाहिए। संघर्ष के माध्यम से तुममें वह क्षमता सृजित हो जाती है जिससे तुम आने वाले आशीष को देख सको, अनुभव कर सको और उसे ग्रहण कर सको।

अचेतन विकास मनुष्य के साथ समाप्त हो जाता है और सचेतन विकास- क्रांति- आरंभ होती है। लेकिन सचेतन विकास किसी विशेष व्यक्ति में आरंभ होना आवश्यक नहीं है। यह सिर्फ तभी आरंभ होता है जब तुम इसे आरंभ करना चाहो। लेकिन अगर तुम इसे न चुनो, जैसा कि बहुत से लोग नहीं चुनते तो तुम बहुत तनावपूर्ण स्थिति में रहोगे। और आजकल मानव-जाति इसी तरह है-न कहीं जाना है, न कुछ पाना है। अब सचेतन प्रयास के बिना कुछ भी उपलब्ध नहीं किया जा सकता है। तुम अचेतन की अवस्था में वापस नहीं जा सकते। दरवाजा बंद हो चुका है, पुल टूट चुका है।

विकसित होने का सचेतन चुनाव एक महान साहसिक कार्य है, यही मनुष्य का एकमात्र दुस्साहस है। पथ दुर्गम है, पर इसे ऐसा होना ही है। त्रुटियां वहां होंगी ही, असफलताएं आएंगी, क्योकि कुछ भी निश्चित नहीं है। यह स्थिति मन में तनाव पैदा कर देती है। तुम नहीं जानते कि तुम कहां हो, तुम नहीं जानते कि तुम कहां जा रहे हो। तुम्हारी पहचान खो गई है। यह स्थिति ऐसे बिंदु पर भी पहुंच सकती है कि तुम आत्मघाती हो सकते हो।

आत्मघात एक मानवीय घटना है। यह मानवीय चुनाव के साथ आती है। पशु आत्मघात नहीं कर सकते क्योंकि सचेतन होकर मृत्यु का चुनाव करना उनके लिए असंभव है। जन्म अचेतन की अवस्था में है, मृत्यु अचेतन की अवस्था में है। लेकिन मनुष्य- अज्ञानी मनुष्य, अविकसित मनुष्य के साथ एक चीज संभव हो जाती है मृत्यु को चुनने करने की योग्यता।

तुम्हारा जन्म तुम्हारा चुनाव नहीं है। जहां तक तुम्हारे जन्म का संबंध है, तुम अचेतन विकास के हाथ में होते हो। वस्तुत: तुम्हारा जन्म किसी भी तरह से मानवीय घटना नहीं है। अपनी प्रकृति से यह पशु जगत का हिस्सा है, क्योंकि यह तुम्हारा चुनाव नहीं है। मानवता सिर्फ चुनाव से ही आरंभ होती है। लेकिन तुम अपनी मृत्यु का चुनाव कर सकते हो-एक निश्चयात्मक कृत्य। इसलिए आत्मघात निश्चित रूप से एक मानवीय कृत्य बन

जाता है। और अगर तुम सचेतन विकास को नहीं चुनते तब बहुत संभावना है कि तुम आत्मघात को चुन लो। तुममें शायद इतना साहस न हो कि तुम सक्रिय रूप से आत्मघात कर सको, किंतु तब तुम एक धीमी, लंबी, आत्मघात की प्रक्रिया से गुजरोगे-घिसटते हुए, मृत्यु की प्रतीक्षा करते हुए।

तुम किसी दूसरे को अपने विकास के प्रति उत्तरदायी नहीं ठहरा सकते। इस स्थिति की स्वीकृति तुम्हें शक्ति देती है। तुम अपने विकास के, वृद्धि के पथ पर होते हो। हम देवताओं को बनाते है और हम गुरुओं की शरण में जाते हैं, ताकि हमें अपनी स्वयं की जिंदगी के प्रति, अपने स्वयं के विकास के प्रति उत्तरदायी न बनना पड़े। हम खुद से हटा कर उत्तरदायित्व को किसी अन्य के ऊपर रखने का प्रयास करते है। अगर हम किसी देवता या किसी गुरु को स्वीकार कर पाने में समर्थ नहीं होते तो हम नशीले पदार्थो या नशीली औषधियों के माध्यम से, या अन्य किसी पदार्थ के माध्यम से, जो हमें अचेतन बना दे, उत्तरदायित्व से बचने का प्रयास करते हैं। लेकिन उत्तरदायित्व को नकारने के ये प्रयास असंगत, बच्चों जैसे और बचकाने है। वे सिर्फ समस्या को स्थगित करते है, वे समाधान नहीं हैं। तुम इसे मृत्यु तक स्थगित कर सकते हो, लेकिन तब भी समस्या बनी रहती है, और तुम्हारे नये जन्म में यह सब उसी प्रकार से जारी रहेगा।

एक बार तुमको यह बोध हो जाए कि तुम अकेले ही उत्तरदायी हो, कि अचेतन होकर भी किसी प्रकार से कोई पलायन संभव नहीं है। और अगर तुम पलायन का प्रयास करते हो तो तुम मूर्ख हो, क्योंकि उत्तरदायित्व विकास के लिए एक महान अवसर है। इस प्रकार से निर्मित संघर्ष से ही कुछ नया विकसित हो सकता है। बोधपूर्ण होने का अभिप्राय है, यह जान लेना कि सभी कुछ तुम पर निर्भर है। तुम्हारा देवता भी तुम पर निर्भर है, क्योंकि उसे तुम्हारी कल्पना द्वारा निर्मित किया गया है।

प्रत्येक बात अंतिम रूप से तुम्हारा हिस्सा है, और तुम ही इसके लिए उत्तरदायी हो। ऐसा कोई नहीं है जो तुम्हारे बहाने सुने न कोई अदालतें हैं जहां तुम अपील कर सको, पूरा उत्तरदायित्व तुम्हारा है। तुम एकाकी हो आत्यंतिक रूप से एकाकी हो। इसे बहुत स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए। जिस पल कोई व्यक्ति सजग होता है, वह एकाकी हो जाता है। जितनी अधिक सजगता होगी उतना ही अधिक यह बोध होगा कि तुम अकेले हो। इसलिए समाज, मित्र, संघ, भीड़ इन सबमें उलझ कर इस तथ्य से मत भागो। इससे भाग मत जाओ। यह एक महत घटना है, विकास की संपूर्ण प्रक्रिया इसी दिशा में कार्य करती रही है।

चेतना अब उस बिंदु पर आ चुकी है जहां तुम जान लो कि तुम एकाकी हो। और सिर्फ एकाकीपन में ही तुम संबोधि प्राप्त कर सकते हो। मैं अकेलेपन के लिए नहीं कह रहा हूं। अकेलापन तब अनुभव होता है जब कोई एकाकीपन से पलायन कर रहा हो, जब कोई इसे स्वीकार करने को राजी नहीं है। अगर तुम एकाकीपन के इस तथ्य को स्वीकार नहीं करते तो तुम अकेलेपन का अनुभव करोगे। तब तुम किसी भीड़ या नशे का कोई उपाय खोजते हो, जिसमें तुम खुद को भूल सको। भूल जाने के लिए अकेलापन अपना स्वयं का जादू निर्मित कर लेगा।

अगर तुम सिर्फ एक पल के लिए भी एकाकी हो सको, पूर्णत: एकाकी, अहंकार मिट जाएगा, 'मैं' मर जाएगा। तुम्हारा विस्फोट घटित हो जाएगा, फिर तुम न रहोगे। अहंकार एकाकीपन में नहीं रह सकता। यह सिर्फ दूसरों से संबंधों के द्वारा अस्तित्व में होता है। जब भी तुम एकांत में होते हो एक चमत्कार घटित होता है, अहंकार क्षीण हो जाता है। अब यह लंबे समय तक अस्तित्व में नहीं रह सकता है। इसलिए अगर तुममें एकांत में होने कि लिए पर्याप्त साहस है, तो धीरे- धीरे तुम्हारा अहंकार विलीन हो जाएगा। एकाकी होना आत्यंतिक रूप से सचेतन और विचारपूर्ण कृत्य है, आत्मघात से भी अधिक विचारपूर्ण, क्योंकि अहंकार एकांत में नहीं रह पाता, किंतु यह आत्मघात में रह सकता है। अहंकारी लोग आत्मघात में अधिक उत्सुक होते हैं। आत्मघात सदा

किसी और से संबंधित होता है, यह कभी एकाकीपन का कृत्य नहीं होता। आत्मघात में अहंकार पीड़ित नहीं होगा। बल्कि यह और अधिक मुखर हो जाएगा। यह अधिक बलशाली होकर नये जन्म में प्रविष्ट हो जाएगा।

एकांत के द्वारा अहंकार बिखर जाता है। इसे संबंधित होने के लिए कोई नहीं मिलता तो यह रह नहीं पाता। इसलिए अगर तुम एकाकी होने के लिए, असंदिग्ध रूप से एकाकी होने के लिए तैयार हो-न भागो, न पीछे लौटो, बस एकाकीपन के तथ्य को जैसा यह है वैसा ही स्वीकार कर लो, तो यह एक महान अवसर बन जाता है। तब तुम एक बीज की भांति होते हो जिसमें बहुत संभावना निहित है। किंतु स्मरण रखना, पौधे के विकसित होने के लिए बीज को स्वयं को नष्ट करना पड़ता है। अहंकार एक बीज है, एक संभावना है। यदि यह बिखर जाता है, दिव्यता उत्पन्न होती है। दिव्यता न तो 'मैं' है, न 'तू' है, यह एक है। एकांत के माध्यम से तुम इस एकात्मकता पर आ जाते हो।

तुम इस एकात्मकता के लिए झूठे विकल्प गढ़ सकते हो। हिंदू लोग एक हो जाते है, ईसाई एक हो जाते हैं, मुसलमान एक हो जाते हैं, भारत एक है, चीन एक है। ये सब एकात्मकता के विकल्प मात्र हैं। एकात्मकता सिर्फ पूर्ण एकांत के द्वारा आती है। एक भीड़ स्वयं को एक कह सकती है, किंतु यह एकता सदैव किसी अन्य के विरोध में होती है। जब तक भीड़ तुम्हारे साथ होती है, तुम आराम में होते हो। अब तुम और अधिक उत्तरदायी नहीं होते। तुम अकेले एक मस्जिद में आग नहीं लगा सकोगे, तुम अकेले किसी मंदिर को नष्ट नहीं कर पाओगे, किंतु भीड़ का अंग होकर तुम यह कर सकते हो, क्योंकि अब तुम निजी रूप से उत्तरदायी नहीं हो। हर एक उत्तरदायी है, इसलिए कोई एक विशेष रूप से उत्तरदायी नहीं है। वहां पर कोई निजी चेतना नहीं होती, मात्र एक सामूहिक चेतना होती है। भीड़ में तुम्हारा पतन हो जाता है और तुम पशु तुल्य हो जाते हो। भीड़ एकात्मकता की अनुभूति का झूठा विकल्प है। कोई भी व्यक्ति जो इस परिस्थिति के प्रति बोधपूर्ण है, अपने मनुष्य होने के उत्तरदायित्व के प्रति सजग है, उस कठिन, श्रमसाध्य कृत्य के प्रति जागरूक है, जो मनुष्य होने के कारण उसे करना है, किसी झूठे विकल्प को नहीं चुनता है। वह तथ्यों के साथ उसी भांति जीता है जैसे कि वे हैं, वह किन्हीं कल्पनाओं की रचना नहीं करता। तुम्हारे धर्म और तुम्हारी राजनैतिक विचारधाराएं मात्र कपोल-कल्पनाएं हैं जो एकात्मकता की झूठी अनुभूति गढ़ती हैं।

एकात्मकता सिर्फ तब आती है जब तुम अहंकार-विहीन हो जाओ, और अहंकार सिर्फ तभी मिट सकता है जब तुम पूर्णत: एकाकी हो। जब तुम पूरी तरह से एकाकी होते हो, तुम नहीं होते। यही एक क्षण विस्फोट का क्षण है। तुम अनंत में विस्फोटित हो जाते हो। यही और सिर्फ यही विकास है। मैं इसे क्रांति कहता हूं क्योंकि यह अचेतन नहीं है। तुम अहंकार-शून्य हो सकते हो या नहीं हो सकते हो। यह तुम पर निर्भर है। एकाकी होना ही एकमात्र वास्तविक क्रांति है। बहुत साहस की जरूरत पड़ती है।

केवल एक बुद्ध एकाकी है, केवल एक जीसस या महावीर एकाकी है। ऐसा नहीं है कि उन्होंने अपने परिवार छोड़े, संसार छोड़ा। ऐसा दिखाई पड़ता है, पर ऐसा है नहीं। निषेधात्मक रूप से वे कुछ नहीं छोड़ रहे थे। कृत्य विधायक था, यह एकांत की ओर चले जाना था। वे त्याग नहीं रहे थे। वे पूर्णत: एकाकी होने की खोज में थे। सारी खोज विस्फोट के उस पल के लिए है, जब कोई एकाकी होता है। एकांत में आनंद है। और सिर्फ तभी संबोधि उपलब्ध होती है। हम एकाकी नहीं हो सकते, दूसरे भी एकाकी नहीं हो सकते, इसलिए हम समूहों, परिवारों, समाजों, देशों का निर्माण करते है। सारे राष्ट्र, सारे परिवार, सारे समूह कायरों से बने है, उन लोगों से बने हैं जिनमें एकाकी होने के लिए पर्याप्त साहस नहीं है।

वास्तविक साहस अकेले होने का साहस है। इसका अभिप्राय है, इस तथ्य का सचेतन साक्षात्कार कि तुम एकाकी हो और तुम अन्य कुछ हो भी नहीं सकते। या तो तुम अपने आपको धोखा दे सकते हो या इस तथ्य के

साथ रह सकते हो। तुम अपने आप को धोखा देने का सिलसिला कई जन्मों तक जारी रख सकते हो, पर तुम एक दुष्यक में चलते रहोगे। अगर तुम एकांत के इस तथ्य के साथ रह सको, केवल तब यह चक्र टूटता है और तुम केंद्र पर आ जाते हो। यह केंद्र दिव्यता का, समग्रता का, पवित्रता का केंद्र है।

मैं ऐसे किसी समय की कल्पना नहीं कर सकता जब प्रत्येक मनुष्य इसे अपने जन्मसिद्ध अधिकार के रूप में प्राप्त करने योग्य होगा। यह असंभव है।

चेतना व्यक्तिगत होती है। सिर्फ अचेतन ही सामूहिक होता है। मानव-जाति चेतना के उस सोपान पर आ चुकी है जहां कि वह वैयक्तिक हो गई है। सच तो यह है कि मनुष्य-जाति जैसा कुछ है ही नहीं, सिर्फ वैयक्तिक मनुष्य है। प्रत्येक मनुष्य को अपनी निजी वैयक्तिकता तथा इसके प्रति अपने उत्तरदायित्व का साक्षात करना पड़ेगा।

पहला काम जो हमें करना चाहिए, वह है एकाकीपन को आधार भूत तथ्य की भांति स्वीकार करना और इसके साथ रहना सीखना। हमें कोई कपोलकल्पनाएं नहीं गहनी हैं। अगर तुम कपोल-कल्पनाएं बना लेते हो तो तुम कभी सत्य को जान लेने में समर्थ नहीं हो सकोगे। कपोल-कल्पनाएं, प्रक्षेपित, गढ़े गए, बनाए गए सत्य है, जो तुम्हें जो है' उसे जानने से रोकते है। अपने एकाकीपन के तथ्य के साथ रहो। अगर तुम इस तथ्य के साथ रह सके, अगर तुम्हारे और इस तथ्य के बीच में कोई कपोल-कल्पना न रही, तो सत्य तुम पर उदघाटित हो जाएगा। प्रत्येक तथ्य, अगर उसमें गहनता से झांका जाए, सत्य का उदघाटन करता है।

इसलिए उत्तरदायित्व के इस तथ्य के साथ, इस तथ्य के साथ कि तुम एकाकी हो रहो। अगर तुम इस तथ्य के साथ रह सके तो विस्फोट घटित हो जाएगा। यह दुष्कर है, किंतु यही एकमात्र उपाय है। कठिनाई के माध्यम से, इस तथ्य की स्वीकृति के द्वारा, तुम विस्फोट के बिंदु पर पहुंचते हो। केवल तभी वहां आनंद है। अगर यह तुम्हें पूर्व-निर्मित दे दिया जाए, तो यह अपना महत्व खो देगा, क्योंकि तुमने इसे अर्जित नहीं किया है। तुम्हारे पास आनंद को अनुभव करने की क्षमता नहीं होती है। यह क्षमता सिर्फ अनुशासन से आती है।

अगर तुम अपने प्रति अपने उत्तरदायित्व के तथ्य के साथ रह सको, तो एक अनुशासन स्वत: ही तुम्हारे पास आ जाएगा। अपने प्रति पूर्ण उत्तरदायी होने पर तुम अनुशासित हो जाने के अतिरिक्त अपनी कोई और सहायता कर भी नहीं सकते। किंतु यह अनुशासन कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो कि तुम पर बाहर से थोप दी गई हो। यह भीतर से आता है। अपने प्रति अपने पूर्ण उत्तरदायित्व के कारण, तुम्हारे द्वारा उठाया गया प्रत्येक कदम अनुशासित होता है। तुम एक शब्द भी अनुत्तरदायी ढंग से नहीं बोल सकते हो। अगर तुम अपने स्वयं के एकाकीपन के प्रति बोधपूर्ण हो, तो तुम दूसरे लोगों की व्यथा के प्रति भी बोधपूर्ण होओगे। तब तुम कोई एक अनुत्तरदायी कृत्य भी करने के योग्य न रहोगे, क्योंकि तुम न केवल अपने लिए बल्कि दूसरों के लिए भी उत्तरदायित्व अनुभव करोगे। अगर तुम अपने एकाकीपन के तथ्य के साथ रह सको, तो तुम जानोगे कि प्रत्येक व्यक्ति अकेला है। तब पुत्र जानता है कि पिता अकेला है; पत्नी जानती है कि पति अकेला है; पति जानता है कि पत्नी अकेली है। एक बार तुम यह जान लो, तो यह असंभव है कि तुम करुणावान न हो जाओ।

तथ्यों के साथ रहना ही एक मात्र योग है, एकमात्र अनुशासन है। एक बार तुम मनुष्य की स्थिति के प्रति पूर्णत: सजग हो जाओ, तुम धार्मिक हो जाते हो। तुम अपने मालिक बन जाते हो। लेकिन इस तरह से आया हुआ आत्मसंयम तपस्वी का आत्मसंयम नहीं होता। यह जबर्दस्ती थोप। हुआ नहीं होता, यह कुरूप नहीं होता, यह आत्मसंयम सौदर्यपूर्ण होता है। तुम महसूस करते हो कि यही एकमात्र संभव कार्य है कि तुम इसे किसी और ढंग से कर भी नहीं सकते। तब वस्तुओं पर से तुम्हारी पकड़ छूट जाती है, तुम अपरिग्रही हो जाते हो।

परिग्रह के प्रति आकर्षण एकाकी नहीं हो पाने के कारण उत्पन्न आकर्षण है। कोई व्यक्ति एकाकी नहीं हो पाता; इसलिए वह साथ खोजता है। किंतु दूसरे लोगों का साथ भरोसे योग्य नहीं है, इसलिए इसके स्थान पर वह वस्तुओं का साथ खोजता है। पत्नी के साथ रहना कठिन है, एक कार के साथ रहना इतना कठिन नहीं है। इसलिए कब्जा कर लेने की प्रवृत्ति अंतत: वस्तुओं की ओर मुड़ जाती है।

तुम व्यक्तियों तक को वस्तुओं में बदलने का प्रयास कर सकते हो। तुम उन्हें उस प्रकार से बदल देने का प्रयास करते हो कि वे अपनी वैयक्तिकता, अपनी निजता खो दें। पत्नी एक वस्तु हो जाती है, व्यक्ति नहीं; पति एक वस्तु हो जाता है, व्यक्ति नहीं।

अगर तुम अपने एकाकीपन के प्रति सजग हो जाते हो, तब तुम दूसरों के एकाकीपन के प्रति भी सजग हो जाते हो। तब तुम्हें पता लग जाता है कि दूसरे पर मालकियत करने का प्रयास अतिक्रमण है। तुम कभी विधायक ढंग से त्याग नहीं करोगे। त्याग तुम्हारे एकाकीपन की नकारात्मक छाया हो जाता है तुम अपरिग्रही हो जाते हो। तब तुम प्रेमी हो सकते हो, लेकिन पति नहीं, पत्नी नहीं।

इस अपरिग्रह भाव के साथ करुणा और आत्मसंयम का आगमन होता। तुम पर निर्दोषता आ जाती है। जब तुम जीवन के तथ्यों से इनकार करते हो, तब तुम निर्दोष नहीं हो सकते; तुम चालाक हो जाते हो। तुम खुद को तथा दूसरों को धोखा देते हो। किंतु अगर तुम इतना साहस कर पाए कि जीवन के तथ्यों के साथ उसी रूप में रह लो जैसे वे हैं, तो तुम निर्दोष हो जाते हो। यह निर्दोषता विकसित की हुई नहीं होती। तुम यही हो-निर्दोष। मेरे लिए निर्दोष होना ही वह सब-कुछ है जिसे उपलब्ध किया जाना है। निर्दोष हो जाओ और दिव्यता सदा आनंदपूर्ण ढंग से तुम्हारी ओर सदा प्रवाहित होती रहती है। निर्दोषता, ग्रहण करने की पात्रता है, दिव्यता का अंश हो पाने की पात्रता है। निर्दोष हो जाओ और अतिथि वहां आ जाता है। आतिथेय हो जाओ।

इस निर्दोषता का अभ्यास नहीं किया जा सकता, क्योंकि अभ्यास सदा सोच- विचार से किया जाता है। यह हिसाब-किताब से होता है। पर निर्दोषता कभी हिसाब- किताब से नहीं आ सकती, यह असंभव है।

निर्दोषता धार्मिकता है। निर्दोष होना, सच्चे आत्म-बोध का चरम उत्कर्ष है। किंतु सच्ची निर्दोषता, सचेतन क्रांति से ही आती है। यह किसी सामूहिक, अचेतन विकास से संभव नहीं है। मनुष्य एकाकी है। वह चुनने के लिए स्वतंत्र है-स्वर्ग या नरक, जीवन अथवा मृत्यु, आत्म-बोध का आनंद या हमारे तथाकथित जीवन की पीड़ा।

साई ने कहीं पर कहा है 'मनुष्य स्वतंत्र होने के लिए बाध्य है। तुम स्वर्ग को चुन सकते हो या नरक को। स्वतंत्रता का अर्थ है किसी एक को चुनने की स्वतंत्रता। अगर तुम सिर्फ स्वर्ग ही चुन सको तो यह चुनाव नहीं है। यह स्वतंत्रता नहीं है। नरक के चुनाव के बिना स्वर्ग अपने आप में नरक हो जाएगा। चुनाव का अर्थ सदा होता है यह या वह। इसका अर्थ यह नहीं है कि तुम केवल शुभ को ही चुनने के लिए स्वतंत्र हो। तब वहां पर कोई स्वतंत्रता न होगी।

अगर तुम गलत का चुनाव कर लेते हो तो स्वतंत्रता अभिशाप बन जाती है; किंतु अगर तुम सही चुनाव करते हो तो यह आशीष बन जाती है। यह तुम पर निर्भर है कि तुम्हारा चुनाव तुम्हारी स्वतंत्रता को अभिशाप में बदलता है या आशीष में। चुनाव करना पूर्णत: तुम्हारा ही उत्तरदायित्व है।

अगर तुम तैयार हो, तो तुम्हारी भीतरी गहराई में से एक नये आयाम का आरंभ हो सकता है क्रांति का आयाम। विकास समाप्त हो चुका है। अब एक क्रांति की आवश्यकता है, जो तुम्हें उसके प्रति खोल दे जो उस पार का है। यह एक निजी व्यक्तिगत क्रांति है, एक अंतस-क्रांति।

आज इतना ही

दूसरा प्रवचन

ध्यान का रहस्य

पहला प्रश्न:

ओशो मैं एक वर्तुल में घूमता रहा हूं और कभी-कभी
लगता है कि मैंने वर्तुल पूरा कर लिया है। लेकिन दूसरे ढंग
से देखने पर लगता है कि मैं परिधि से चिपका हुआ हूं।
क्या आपके पास ऐसी कोई कार्य योजना या ध्यान की
कोई विधि या व्यक्ति को ध्यान के योग्य बना देने की कोई
तरकीब है जिसे आप आरंभ में बताएंगे?

ध्यान केवल एक विधि नहीं है; यह केवल कोई तकनीक नहीं है। तुम इसे सीख नहीं सकते। यह एक विकास है-तुम्हारे संपूर्ण जीवन का, तुम्हारी संपूर्ण जीवनचर्या से। ध्यान कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिसे, जैसे कि तुम हो, उसमें जोड़ा जा सके। इसको तुमसे जोड़ा नहीं जा सकता है; यह तुम्हारे पास एक मौलिक रूपांतरण, एक परिवर्तन के माध्यम से आ सकता है।

सामान्यत: ध्यान को एक तकनीक के रूप में समझा जाता है, जिसे किसी व्यक्ति के साथ जोड़ा जा सकता है। मेरे लिए ऐसा नहीं है। जैसे कि तुम हो, ध्यान को तुम्हारे साथ जोड़ा नहीं जा सकता है। ध्यान एक खिलावट है, यह एक विकास है। और विकास सदा पूर्ण से होता है, यह कुछ और जोड़ना नहीं है; प्रेम की भांति इसको तुम्हारे साथ जोड़ा नहीं जा सकता है। यह तुममें से तुम्हारी पूर्णता में से हुआ एक विकास है। इसलिए तुम ध्यान की ओर विकसित हो सकते हो।

इसलिए पहले व्यक्तित्व की इस समग्र खिलावट को ठीक से समझ लेना चाहिए। अन्यथा कोई व्यक्ति मन की तरकीबों के साथ खेल सकता है, और वे बहुत सारी है। कुछ समय के लिए तुम उनके द्वारा मूर्ख बनाए जाते रहोगे, लेकिन केवल इतना ही नहीं है कि तुम्हें मूर्ख बनाया जा रहा है। वास्तविक अर्थ में न केवल तुमको उनसे कुछ मिलेगा नहीं, बल्कि तुम्हारी हानि भी होगी। क्योंकि यह दृष्टिकोण- ध्यान की एक विधि के रूप में कल्पना करना- आधारभूत रूप से गलत है। और जब कोई व्यक्ति मन की तरकीबों के साथ खेलना आरंभ कर देता है तो मन की गुणवत्ता नष्ट होने लगती है।

मन जैसा यह है, यह ध्यानपूर्ण नहीं है। इसलिए ध्यान के घटित होने से पहले संपूर्ण मन का रूपांतरण होना चाहिए। तब फिर मन, जैसा कि यह अभी है, क्या है? यह किस भांति कार्य करता है?

यह ध्यान के विपरीत कार्य करता है।

पहली बात, मन सदा शब्दीकरण करता है। यह शाब्दिक है, और इस शब्दीकरण को विचार प्रक्रिया की भांति समझा जाता है। यह विचार प्रक्रिया नहीं है। तुम शब्दों को जान सकते हो, तुम भाषा को जान सकते हो, तुम विचार प्रक्रिया की संरचनात्मक धारणा को जान सकते हो, लेकिन यह विचार प्रक्रिया नहीं है। बल्कि इसके विपरीत यह विचार प्रक्रिया से पलायन है। तुम एक फूल देखते हो, और तुम इसका शब्दीकरण करते हो। तुम पास से गुजरते हुए किसी व्यक्ति को देखते हो और तुम उसका शब्दीकरण करते हो। प्रत्येक परिस्थिति का शब्दीकरण कर दिया जाता है। मन केवल शब्दीकरण की एक यांत्रिकता बन चुका है। यह प्रत्येक अस्तित्ववान

वस्तु को शब्दों में रूपांतरित कर सकता है-हर चीज को लगातार शब्दों में परिवर्तित किया जा रहा है। ये शब्द एक अवरोध निर्मित करते हैं, से शब्द कारागृह बन जाते हैं।

ये शब्द-वस्तुओं का शब्दों में, अस्तित्व का शब्दों में रूपांतरण का यह सतत प्रवाह एक रुकावट है, ध्यानपूर्ण मन के लिए एक बाधा है।

इसलिए ध्यान पूर्ण विकास की प्रथम आवश्यकता है, अपने सतत शब्दीकरण का बोध और इसको रोक सकने के योग्य हो जाना। वस्तुओं को बस देखो, शब्दीकरण मत करो। उनकी उपस्थिति के प्रति बोधपूर्ण रहो, किंतु उनको शब्दों में मत बदलो। वस्तुओं के साथ बिना भाषा के जीओ, व्यक्तियों के साथ बिना भाषा के जीओ। परिस्थितियों के साथ बिना भाषा के जीओ। यह असंभव नहीं है। यह स्वाभाविक है और संभव है। प्रत्येक परिस्थिति कृत्रिम है, बनाई गई परिस्थिति है और इसके लिए हम इस भांति यांत्रिक रूप से आदी हो चुके है कि हम कभी अनुवाद से उत्पन्न रूपांतरण के प्रति सजग नहीं होते।

सूर्योदय है। तुम कभी इस अंतराल के प्रति सजग नहीं होते। तुम इसे देखते हो, तुम इसको अनुभव करते हो, और तुम इसका शब्दीकरण कर देते हो। लेकिन अंतराल को कभी अनुभव नहीं किया जाता- अनुभूति और शब्दीकरण के बीच का अंतराल। उस अंतराल में, मध्य के उस समय में व्यक्ति को सजग हो जाना चाहिए। व्यक्ति को इस तथ्य के प्रति सजग हो जाना चाहिए कि सूर्योदय कोई शब्द भर नहीं है; यह एक सच्चाई, एक उपस्थिति, एक परिस्थिति है। मन अपने आप से ही इसको एक शब्द में बदल देता है। ये शब्द एकत्रित हो जाते है। वे एकत्रित होते चले जाते हैं और अस्तित्व के सत्तावान के और चेतना के मध्य, शब्दों के ये ढेर, स्मृतियों के, भाषागत स्मृतियो के ये ढेर-ये ध्यानपूर्ण विकास की ओर बाधाएं है।

ध्यान का अभिप्राय है शब्द-विहीन परिस्थिति में जीना, भाषारहित होकर परिस्थिति में जीना। कभी-कभी यह सहजस्कूर्त रूप से घटित हो जाता है। जब तुम किसी के साथ प्रेम में होते हो, तो भाषारहित क्षण दीर्घकालिक हो जाता है। जब तुम वास्तव में प्रेम में होते हो तो उपस्थिति अनुभव होती है, भाषा नहीं। इसलिए जब दो प्रेमी एक-दूसरे के प्रति गहन आत्मीयता से भरे हों तो वे मौन हो जाते हैं। ऐसा नहीं है कि वहां पर अभिव्यक्त करने के लिए कुछ भी नहीं है। इसके विपरीत इस समय बहुत कुछ उद्वेलित हो रहा है, जो अभिव्यक्त होना चाह रहा है। किंतु शब्द वहां नहीं होते, वे हो भी नहीं सकते। वे केवल तब आते हैं, जब प्रेम विदा हो चुका हो।

अगर दो प्रेमी मौन नहीं है और बातचीत कर रहे हों, तो यह एक संकेत है कि प्रेम मर चुका है। अब वे उस अंतराल को शब्दों से भर रहे है। जब प्रेम जीवित होता है, शब्द वहां नहीं होते, क्योंकि प्रेम की उपस्थिति इतनी उद्वेलित करने वाली, इतनी आर पार जाने वाली होती है कि अवरोध- भाषा और शब्दों का अवरोध पार कर लिया जाता है। और सामान्यत: ऐसा संकेत केवल प्रेम में ही घटित होता है कि अवरोध पार हो जाए।

यही कारण है कि प्रार्थना प्रेम का अगला कदम है और ध्यान शिखर है, प्रेम की पराकाष्ठा है र प्रेम किसी एक से-किसी व्यक्ति के साथ नहीं, वरन समग्र अस्तित्व के साथ। इसलिए मेरे लिए ध्यान उस समग्र अस्तित्व के प्रति, उस सभी के प्रति जो तुम्हें घेरे हुए है, प्रेम संबंध है। अगर तुम उसके साथ प्रेममय अवस्था में रह सको तो तुम ध्यान में हो।

और यह कोई मन की तरकीब नहीं है। यह कोई मन को स्थिर बना देना नहीं है; बल्कि मन की यांत्रिक व्यवस्था को समझ लेना है। यह उस यांत्रिक व्यवस्था में हस्तक्षेप करना नहीं है बल्कि यह मन की संपूर्ण यांत्रिक व्यवस्था की गहरी समझ है। जिस क्षण तुम शब्दीकरण की, अस्तित्व और वस्तुओं को शब्दों में बदल देने की

यांत्रिक आदत को समझ जाते हो, अंतराल दिखता है। यह सहज स्फूर्त आता है। यह समझ का अनुगमन करता है। यह समझ की छाया के समान है।

इसलिए पहले व्यक्ति को यह समझ लेना चाहिए कि कैसे वह ध्यान में नहीं है। वास्तविक समस्या यह नहीं है कि ध्यान में कैसे हों, वास्तविक समस्या यह जानना है कि हम ध्यान में क्यों नहीं है। वास्तविक समस्या यह नहीं है कि प्रेम कैसे किया जाए, बल्कि यह जान लेना है कि हम प्रेम में क्यों नहीं हैं। नकारात्मक है यह, ध्यान की असली प्रक्रिया निषेधात्मक है। यह सकारात्मक रूप से तुममें कुछ जोड़ देना नहीं है, बल्कि इसके विपरीत तुममें से कुछ घटा देना है, जो पहले से ही तुममें जोड़ दिया गया है।

समाज भाषा प्रदान करता है, समाज भाषा के बिना अस्त्वि में नहीं रह सकता है। मानव समाज भाषा से उपजा हुआ विकास है, पशुओं के समाज नहीं हैं क्योंकि उनके पास कोई भाषा नहीं है। भाषा से समाज निर्मित होता है। समाज को भाषा की आवश्यकता है; अस्तित्व को इसकी आवश्यकता नहीं है। अस्तित्व भाषा के बिना हो सकता है, समाज भाषा के बिना नहीं हो सकता। इसलिए मैं यह नहीं कह रहा हूं कि तुम्हें भाषा के बिना रहना चाहिए। तुमको भाषा का प्रयोग तो करना ही पड़ेगा। लेकिन यह यांत्रिक व्यवस्था ऐसी यांत्रिक व्यवस्था होनी चाहिए जिसका आरंभ और अंत किया जा सके।

जिस समय तुम एक सामाजिक व्यक्ति हो, तो इस यांत्रिक व्यवस्था को-भाषा की यांत्रिकी को सक्रिय बना रहना चाहिए। इसके बिना समाज में-तुम्हारा अस्तित्व नहीं बना रह सकता। किंतु जब तुम अस्तित्व के साथ होते हो तब उस यांत्रिक व्यवस्था को रोक देना चाहिए। और तुमको इसे रोक देने में समर्थ होना चाहिए, अन्यथा यह यांत्रिक व्यवस्था विक्षिप्त है।

अगर तुम इसको रोक न सको–और यह चलती रहे और चलती चली जाए, और तुम इसको रोक पाने में समर्थ न हो पाओ-तो इस यांत्रिक व्यवस्था ने तुम्हारे ऊपर आधिपत्य कर लिया है-तब तुम इस यांत्रिक व्यवस्था के, इस उपकरण के बस एक दास बन कर रह गए हो। मन का एक उपकरण की भांति उपयोग किया जाना चाहिए, मालिक के रूप में नहीं। यह मालिक बन गया है।

मन का मालिक होना गैर- ध्यानपूर्ण अवस्था है। तुम्हारा, चेतना का मालिक होना, ध्यानपूर्ण अवस्था है। इसलिए उस यांत्रिक व्यवस्था पर, मन पर स्वामित्व कर लेना ध्यान है।

मन का भाषा प्रदान करने वाला किया-कलाप सभी कुछ नहीं है और इसी पर समाप्त नही हो जाना है। तुम इसके पार हो, अस्तित्व इसके पार है। चेतना भाषा प्रदान करने वाली यांत्रिकता से परे है और अस्तित्व भाषा प्रदान करने वाली यांत्रिकता से परे है। और जब चेतना और अस्तित्व संवाद में हो तो उस स्थिति को मैं ध्यान कहता हूं-चेतना और अस्तित्व संवाद में हैं।

इसलिए भाषा को छोड़ देना चाहिए। जब मैं कहता हूं-छोडू देना चाहिए, तो मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि तुमको इसे दूर हटा देना चाहिए, तुमको इसका दमन कर देना चाहिए, तुमको इसे काट फेंकना चाहिए-यह मेरा अभिप्राय नहीं है। जो मेरा अभिप्राय है वह यह है कि तुमको समझ लेना चाहिए कि एक आदत जिसकी समाज में आवश्यकता पड़ती है, जिसकी सदैव आवश्यकता नहीं होती, वह चौबीस घंटे की आदत बन गई है। जब तुम चलते हो तो तुमको पैरों की गतिशीलता की आवश्यकता होती है। लेकिन अगर तुम बैठे हो तो उनको गतिशील नहीं रहना चाहिए। जिस समय तुम बैठे हुए हो और अगर उस समय भी तुम्हारे पैर गतिशील रहें तो तुम पागल हो, तब पैर विक्षिप्त हो चुके हैं। तुम्हें इस योग्य होना पड़ेगा कि उन्हें रोक सको। जब तुम किसी से बातचीत नहीं कर रहे हो तो भाषा को वहां नहीं होना चाहिए। यह बातचीत का यंत्र संवाद की एक विधि है।

जब तुम कुछ संवाद कर रहे हो तो भाषा का प्रयोग किया जाना चाहिए। लेकिन जब तुम किसी के साथ संवाद नहीं कर रहे हो तो भाषा को वहां नहीं होना चाहिए।

अगर तुम इसमें समर्थ हो और तुम समझ के माध्यम से इसमें समर्थ हो सकते हो-तब तुम ध्यान में विकसित हो सकते हो। मैं कहता हूं तुम विकसित हो सकते हो क्योंकि जीवंत प्रक्रियाओं को कभी मुर्दा जोड़ नहीं बनाया जा सकता है। वे सदा विकासमान प्रक्रियाएं है। इसलिए ध्यान एक प्रक्रिया है, कोई विधि नहीं। विधि सदा ही मृत होती है-यह जोड़ी जा सकती है। प्रक्रिया सदा जीवंत है। यह विकसित होती है और विस्तृत होती है।

इसलिए पहली बात भाषा की आवश्यकता है, अनिवार्य है यह, लेकिन तुमको सदैव इसी में नहीं बने रहना चाहिए। ऐसे क्षण होने चाहिए जब तुम अस्तित्व से लयबद्ध हो रहो, भाषा में सीमित न बने रहो, जब तुम बस अस्तित्व वान हो। यह ऐसा नहीं होगा कि तुम बिलकुल निष्क्रिय हो जाओगे, क्योंकि चेतना वहां होती है और यह अधिक प्रगाढ़ है और यह अधिक जीवंत है क्योंकि भाषा चेतना को मंद कर देती है।

भाषा पुनरुक्त होने के लिए बाध्य है। भाषा को पुनरुक्त होना ही है। अस्तित्व कभी पुनरुक्त नहीं होता है। इसलिए भाषा से ऊब आती है। और भाषा जितनी शक्तिशाली होती जाती है-मन जितना अधिक भाषा-उन्मुख होता जाता है-यह उतना ही ऊब जाता है, क्योंकि भाषा एक पुनरुक्ति है। अस्तित्व पुनरुक्ति नहीं है।

जब तुम किसी गुलाब को देखते हो तो यह पुनरुक्ति नहीं है। एक नया गुलाब है यह, बिलकुल नया। यह कभी नहीं था और यह कभी होगा भी नहीं। यह पहली और आखिरी बार है कि यह वहां पर है। लेकिन जब तुम कहते हो–यह एक गुलाब है तो यह शब्द 'गुलाब' एक पुनरुक्ति है। यह सदा से ही वहां था, यह सदा वहां बना रहेगा। तुमने नये को पुराने शब्द से मार डाला है।

अस्तित्व सदा युवा है, और भाषा सदा बूढ़ी है। और भाषा के द्वारा तुम अस्तित्व से बचते हो, वस्तुत: भाषा के माध्यम से तुम जीवन से पलायन करते हो, क्योंकि भाषा मृत है। और भाषा से तुम जितना अधिक सम्बद्ध होते जाओगे, जितना अधिक तुम इसके भीतर जाओगे, उतना ही तुम इसके द्वारा मृतप्राय कर दिए जाओगे। इसलिए यदि तुम्हें कोई ऐसा व्यक्ति खोजना हो, जो पूरी तरह से मरा हुआ है तो तुमको किसी पंडित को खोजना पड़ेगा। पंडित पूरी तरह से मरा हुआ है, क्योंकि वह भाषा और शब्द है, और कुछ भी नहीं है।

साई ने अपनी आत्मकथा को नाम दिया है 'शब्द।' यह लगभग प्रत्येक व्यक्ति की आत्म-कथा है। हम शब्दों में जीते है। अर्थात, हम जीते ही नहीं। और अंत में केवल संकलित किए गए शब्द ही मिलते हैं और कुछ नहीं। शब्द रुके हुए विचारों की भांति होते है। तुम कुछ देखते हो, तुम उसका चित्र खींचते हो, वह चित्र मृत है। वह परिस्थिति कभी मृत नहीं होती। तब तुम इन मृत चित्रों की एक एलबम बना सकते हो। अंत में, वह व्यक्ति जो ध्यान में नहीं जीया है, बस एक मुर्दा एलबम के समान है, केवल भाषा से बने हुए चित्र, स्मृतियां। कुछ भी जीया नहीं गया, प्रत्येक चीज का बस शब्दीकरण हो गया है।

ध्यान का अर्थ है–जीना, पूरी तरह से जीना और तुम समग्रता से केवल तभी जी सकते हो, जब भाषा का अवरोध पार कर लिया गया हो, जब तुम मौन हो। मौन होने से मेरा अभिप्राय अचेतन होना नहीं है। तुम मौन और अचेतन हो सकते हो, किंतु यह जीवंत मौन नहीं है। पुन: तुमने पलायन कर लिया है।

इसलिए मंत्र के माध्यम से तुम स्वयं को आत्म-सम्मोहित कर सकते हो। मात्र एक शब्द को दोहराते रह कर तुम मन में इतनी अधिक ऊब पैदा कर सकते हो कि यह सो जाता है। नींद के लिए ऊब हो जाना एक आवश्यक कदम है। तुम बस अचेतन में, नींद में खो जाते हो। इसलिए बहुत सारी-बल्कि ध्यान की सभी विधियां ऊब जाने के लिए विधियां है, या वे आत्म-सम्मोहक है। तुम राम-राम-राम दोहराते रह सकते हो। मन ऊब

अनुभव करेगा, नींद आने लगेगी। और अगर तुम मंत्र जाप करते जाओ और करते चले जाओ, तब मन सो जाएगा। तब भाषा वहां नहीं होगी, भाषा का अवरोध वहां नहीं होगा, किंतु तुम बेहोश होगे।

ध्यान का अभिप्राय है कि भाषा वहां नहीं होनी चाहिए, और तुम्हें होशपूर्ण रहना है। अन्यथा अस्तित्व के साथ, यह सब-कुछ जो है, उस सभी के साथ जो है, कोई संवाद नहीं होगा। क्या किया जा सकता है? कोई मंत्र सहायक नहीं होगा, किसी मंत्र-जाप से सहायता नहीं मिलेगी। वे ध्यान के उपकरण नहीं बन सकते है। वे केवल आत्म-सम्मोहन के उपकरण बन सकते हैं और आत्म-सम्मोहन ध्यान नहीं है। बल्कि यह उससे विपरीत अवस्था है। आत्म-सम्मोहित अवस्था में होना नीचे गिर जाना है। यह भाषा के पार जाना नहीं है, यह इससे नीचे गिरना है।

तब क्या किया जा सकता है? वस्तुत: तुम समझने के सिवा और कुछ कर ही नहीं सकते हो, क्योंकि तुम जो कुछ भी कर सकते हो वह तुमसे ही आएगा। और तुम संशयग्रस्त हो, और तुम ध्यान में नहीं हो, और तुम्हारा मन मौन नहीं है, इसलिए जो कुछ तुमसे आएगा, वह और संशय पैदा कर देगा। वह सभी कुछ जो किया जा सकता है वह है। समझ लेना।

यह समझना आरंभ करो कि मन ने तुम्हारा सारा कार्यभार कैसे सम्हाल रखा है, और उन क्षणों को होने दो, उन क्षणों को घटित होने दो जहां पर शब्द न हों। तुम शब्दों को दूर भी नहीं ढकेल सकते हो, क्योंकि शब्दों को दूर ढकेलने का प्रयास भी भाषा का रूप ले लेगा। अगर तुम शब्दों को हटाना चाहते हो तो तुम्हें उनको दूसरे शब्दों से हटाना होगा। और तब एक दुष्चक्र निर्मित हो जाता है। तुम शब्दों को शब्दों के द्वारा नहीं हटा सकते। असंभव है यह, क्योंकि हटाने के लिए शब्दों का प्रयोग करके तुम अब भी भाषा का उपयोग कर रहे हो और रुकावट को मजबूत कर रहे हो। इसलिए किसी शब्द का उपयोग नहीं किया जा सकता है, इसका अर्थ यह हुआ कि किसी मंत्र का उपयोग नहीं किया जा सकता। मन कैसे कार्य करता है, तुमको बस इसके प्रति सजग हो जाना है, क्योंकि सजगता कोई शब्द नहीं है। यह एक कृत्य है- अस्तित्वगत, मानसिक नहीं। एक अस्तित्वगत कृत्य, कोई अस्तित्वगत कृत्य ही सहायक होगा।

और वह पहला अस्तित्वगत कृत्य जिसका उपयोग किया जा सकता है, वह है सजगता। अपने मन की प्रक्रिया के प्रति होश पूर्ण हो जाओ, तुम्हारा मन कैसे कार्य करता है। जिस क्षण तुम अपने मन की क्रिया के प्रति होशपूर्ण हो जाते हो, तुम मन नहीं होते। मन की प्रक्रिया के प्रति इस होश का अभिप्राय ही यह है, कि तुम परे हो, पृथक हो, साक्षी हो। और तुम जितना होशपूर्ण होते जाओगे, उतना ही तुम अंतरालों को देखने में समर्थ होते जाओगे। अंतराल तो है, किंतु तुम इतने बेहोश हो कि न तो कभी उनका ज्ञान हो पाता है, न ही वे दिखाई पड़ते है। अंतराल सदा से वहां पर हैं। दो शब्दों के मध्य सदा अंतराल होता है अन्यथा दो शब्द दो नहीं हो सकते है, वे एक शब्द बन जाएंगे।

दो शब्दों के मध्य सदा अंतराल होता है, चाहे कितना ही छोटा हो, कितना ही अदृश्य हो, लेकिन अंतराल है। संगीत के दो स्वरों के मध्य एक मौन होता है, भले कितना ही छोटा हो, कितना ही अश्रव्य हो। अन्यथा दो स्वर दो नहीं हो सकते, बिना अंतराल के दो शब्द दो नहीं हो सकते, एक शब्द रहित मध्यांतर सदा वहां होता है। लेकिन अंतराल को, मध्यांतर को जानने के लिए व्यक्ति को वास्तविक रूप से सजग, होशपूर्ण होना पड़ता है।

तुम जितना अधिक होशपूर्ण होते हो, मन की गति उतनी ही धीमी होती है। यह सदा सापेक्ष है। तुम जितना कम होशपूर्ण होते हो, मन की गति उतनी ही तेज होती है; जैसे-जैसे तुम होशपूर्ण होते हो, मन की प्रक्रिया धीमी होती जाती है। सभी चीजों के साथ लेकिन क्योंकि तुम सजग हो चुके हो, मन धीमा मालूम होता

है, धीमा प्रतीत होता है; लेकिन वह वैसा ही है जैसा था। लेकिन तुम सतर्क हो, तुम देख रहे हो, तुम अधिक जागरूक हो चुके हो। अधिक जागरूकता का मतलब है–धीमा हो चुका मन। जब मन की गति धीमी हो जाती है, अंतराल बड़े हो जाते हैं; तुम उन्हें अनुभव कर सकते हो।

यह ठीक एक फिल्म की भांति होता है। यदि प्रोजेक्टर धीमी गति से चलता है तो तुम अंतरालों को देख लेते हो। वहां अनेक अंतराल है–अंतराल, अंतराल और बहुत सारे अंतराल। अगर मैं अपने हाथ को उठाऊं, तो बिना अंतरालों के इसका छायांकन नहीं किया जा सकता है। मैं इसे बिना किसी अंतराल के उठा सकता हूं लेकिन इसका छायांकन बिना अंतरालों के कभी नहीं किया जा सकता। मेरा हाथ उठा था, एक फुट ऊपर उठा था, इसका हजारों भागों में चित्र खींचना पड़ेगा और प्रत्येक भाग स्थिर, मुर्दा चित्र होगा। ये हजारों हिस्से, आशिक चित्र, आशिक हैं, मृत है। अगर तुम्हारी आंखों के सामने से उनको इतनी तीव्रता से गुजारा जाए कि तुम अंतरालों को न देख पाओ, तो तुम उठते हुए हाथ को देखते हो। तब तुम हाथ का उठना एक प्रक्रिया के रूप में देखते हो, क्योंकि अंतराल नहीं दिखाई पड़े है। अन्यथा फिल्म को कभी अंतरालों के बिना नहीं बनाया जा सकता है। अंतराल वहां होते है।

मन भी एक प्रोजेक्टर की भांति है, एक भाषायी प्रोजेक्टर। अंतराल वहां पर हैं। अपने मन के प्रति और सजग और होशपूर्ण हो जाओ और तुम अंतरालों को देख लोगे। यह बस गेस्टाल्ट चित्र की भांति है। एक चित्र को इस भांति बनाया जा सकता है कि उसे दो चीजों के रूप में देखा जा सके, लेकिन तुम दोनों चीजों को एक साथ नहीं देख सकते हो। यह एक बूढ़ी स्त्री का चित्र हो सकता है और साथ वही चित्र एक युवती का भी हो सकता है। चित्र में दोनों हैं, लेकिन यदि तुम एक को देख रहे हो, तो तुम दूसरे को नहीं देखोगे क्योंकि अवधान बदल जाता है। तुम एक पर केंद्रित हो गए हो, तब दूसरा नहीं दिखाई देता है। जब तुम दूसरे को देखते हो तो पहले वाला खो जाता है।

अब तुम जानते हो कि उन्हीं बिंदुओं, स्याही के उन्हीं बिंदुओं से दो चित्र बन रहे हैं। अब तुम्हें भलीभांति पता है, तुमने दोनों चित्रों को देखा है, लेकिन तुम दोनों चित्रों को एक साथ नहीं देख सकते हो। अगर तुम बूढ़ी स्त्री को देखते हो तो युवा स्त्री नहीं दिखती है। और तुमको एक चित्र से अपना अवधान हटा कर दूसरे चित्र पर लाने में कुछ कठिनाई भी होगी, क्योंकि अवधान केंद्रित हो जाता है। तुम्हें पता है–अब तुमने दूसरा चित्र भी देख लिया है–लेकिन तुमको अवधान को बदलने में कुछ कठिनाई होगी। जब अवधान बदल दिया जाता है तो युवा स्त्री दिखाई देगी, लेकिन बूढ़ी स्त्री खो जाएगी।

यही घटना मन के साथ भी घटित होती है। यह एक गेस्टाल्ट, देखने की विधि है। अगर तुम शब्दों को देखते हो, तो तुम अंतरालों को नहीं देख सकते। अगर तुम अंतरालों को देखो, तो तुम शब्दों को नहीं देख सकते। लेकिन अब तुम जानते हो कि वहां पर शब्द है और अंतराल हैं और प्रत्येक शब्द के बाद एक अंतराल आता है और प्रत्येक अंतराल के बाद एक शब्द आता है, लेकिन तुम उन दोनों को एक साथ उसी क्षण में नहीं देख सकते। अगर तुमने अंतराल पर अवधान केंद्रित किया है, शब्द खो जाएंगे और तुम ध्यान में प्रविष्ट हो जाओगे। शब्द वहां पर नहीं रहेंगे। अंतराल होगा।

ये शब्द और ये अंतराल, मन में ये दो चीजें होती हैं। मन दो चीजों में विभाजित होता है–अंतरालों में और शब्दों में-लेकिन प्रत्येक शब्द के बाद अंतराल आता है और प्रत्येक अंतराल के बाद एक शब्द आता है। यह विभाजन एक क्रमबद्ध श्रृंखला में होता है। मन दो ठोस कक्षों में विभाजित नहीं होता हैं–शब्दों और अंतरालों में। वे मिले-जुले है। वे एक श्रृंखला में है। दो शब्दों को एक अंतराल के द्वारा जोड़ दिया गया है। और दो अंतरालों को एक शब्द के द्वारा जोड़ दिया गया है।

केवल शब्दों पर केंद्रित मन, सिर्फ शब्दों पर केंद्रित चेतना गैर- ध्यानपूर्ण है। केवल अंतरालों पर केंद्रित चेतना ध्यानपूर्ण है। इसलिए ध्यान, अवधान का विशिष्ट दृष्टिकोण है-अंतरालों के प्रति चेतना, सजगता, अवधान। और तुम एक साथ दोनों के प्रति सजग नहीं हो सकते, असंभव है यह। इसलिए जब भी तुम सजग हो जाओ, शब्द खो जाएंगे। अगर तुम सावधानीपूर्वक देखते रहो, तुम्हें शब्द नहीं मिलेंगे, तुम मात्र एक अंतराल पाओगे।

अंतरालों को भी तुम न देख पाओगे क्योंकि तुम दो शब्दों के बीच के अंतर को महसूस कर सकते हो, किंतु दो अंतरालों के मध्य का अंतर तुम महसूस नहीं कर सकते। शब्द सदा बहुवचन है और अंतराल सदा एक वचन है. अंतराल। यही कारण है कि मैं अंतराल शब्द का उपयोग करता हूं। शब्द अनेक हो सकते हैं, लेकिन अनेक अंतराल नहीं हो सकते। वे एक हो जाते है। वे विलय होकर एक हो जाते हैं। इसलिए मेरे लिए ध्यान का अभिप्राय है? अंतराल पर अवधान। देखने का ढंग बदल देना पड़ता है और देखने का ढंग बदलता है...? देखने का ढंग बदल जाता है।

एक और बात समझ लेनी है। अगर तुम गेस्टाल्ट चित्र को देख रहे हो और तुम्हारा अवधान बूढ़ी स्त्री पर केंद्रित है; तब तुमको दूसरे चित्र के बारे में पता नहीं होता है। तुम एक चित्र के प्रति सजग हो गए हो और एक मात्र ढंग यही है। तुम एक चित्र के प्रति सजग हो जाते हो। तुम नहीं जानते कि इसके पीछे दूसरा चित्र छिपा हुआ है। तुम्हारी जानकारी में एक चित्र आ चुका है। अगर तुम बूढ़ी स्त्री पर ध्यान केंद्रित किए रहो–अगर तुम उसी पर मन केंद्रित और ध्यान केंद्रित किए रहो, अगर तुम उस पर अपना समग्र अवधान लगा दो–तो एक क्षण आएगा और अवधान परिवर्तित हो चुका होगा। बूढ़ी स्त्री जा चुकी होती है और अब तुम्हें दूसरा चित्र दिखाई पड़ता है। अब दूसरा चित्र वहां पर होता है।

ऐसा क्यों होता है? यह घटित होता है, क्योंकि मन लंबे समय तक केंद्रित नहीं रह सकता। इसे बदलना पड़ता है, इसको विषय बदलना पड़ता है। या तो इसको सो जाना पड़ेगा या इसको विषय बदलना पड़ेगा। यहां पर केवल दो संभावनाएं हैं। अगर तुम अवधान केंद्रित किए रहो, अपनी चेतना को बड़ी स्त्री के चित्र पर केंद्रित किए रहो, तो या तो तुम सो जाओगे.....?

यह महेश योगी की तरह का ध्यान है–तुम सो जाओगे। यह शांतिपूर्ण है, यह स्फूर्तिदायक है, यह फिर से ताजगी देता है। इससे तुम ताजगी से भर कर बाहर आते हो। यह शारीरिक स्वास्थ्य में सहायता कर सकता है, यह मानसिक साम्य में भी सहायता कर सकता है, किंतु यह ध्यान नहीं है।

यही कार्य आत्म-सम्मोहन द्वारा, सुझाव द्वारा किया जा सकता है–इमाइल कुए की विधियों से भी किया जा सकता है। इसको ध्यान की तरह समझ लेना बहुत खतरनाक है, यह ध्यान नहीं है। और अगर कोई इसको ध्यान के रूप में सोच लेता है तो वह कभी भी ध्यान के वास्तविक आयाम की खोज नहीं करेगा। इस प्रकार के अभ्यासों से और इस भांति के अभ्यासों के प्रचारकों से यही वास्तविक नुकसान हो रहा है। यह अपने आप को मनोवैज्ञानिक नशे में डुबा देना है।

मन एक स्थिर अवस्था में नहीं बना रह सकता है। यह एक जीवंत प्रक्रिया है। यह एक स्थिर दशा में नहीं बना रह सकता है। अगर तुम इसको ऐसा करने के लिए बाध्य कर दो, तो यह नींद में चला जाएगा और अपनी जीवंत प्रक्रिया को जारी रखने के लिए स्वप्न देखने लगेगा। यह तुम्हारे स्थिर, जबर्दस्ती थोपे गए केंद्रीकरण से पलायन करने के लिए नींद में चला जाता है। तब यह फिर से नींद में जीना जारी रख सकता है।

अगर तुम सजग हो। केवल बोधपूर्ण हो, शब्दों से रहित हो–तो आत्म-सम्मोहन कठिन हो जाता है। शब्दों के बिना आत्म-सम्मोहन कठिन है, क्योंकि शब्दों के बिना तुम मन को कोई भी सुझाव नहीं दे सकते हो।

भारतीय शब्द, मंत्र का अर्थ सुझाव है और कुछ नहीं। इसका अभिप्राय है सुझाव। अगर तुम शब्दों के बिना, उस बूढ़ी स्त्री और उसके चित्र के प्रति बस सजग हो, तब तुम देख लोगे कि तुम्हारा मन बदलता है, अवधान बदलता है और युवती दिखाई पड़ने लगती है।

मैं यह क्यों कह रहा हूं.....अगर तुम शब्दों के प्रति सजग हो जाते हो और उनको दूर हटाने के लिए किसी शब्द का उपयोग नहीं करते हो, उनको दूर हटाने के लिए किसी मंत्र का उपयोग नहीं करते हो, बस शब्दों के प्रति सजग हो जाते हो–स्वत: ही तुम्हारा मन अंतरालों पर केंद्रित हो जाएगा। यह लगातार शब्दों पर टिका हुआ नहीं रह सकता है। इसे अंतराल में जाकर विश्रांत होना पड़ेगा।

या तो तुम शब्दों से तादात्म्य करते हो, तब तुम एक शब्द से दूसरे शब्द पर छलांग लगाते रहोगे। तुम अंतराल से बच जाते हो और एक शब्द से दूसरे शब्द पर छलांग लगाते रहते हो, क्योंकि अगले शब्द में भी कुछ नयापन है। तुमने शब्द को बदल दिया है, पुराना शब्द वहां नहीं रहा है और नया शब्द आ गया है, इस प्रकार से मन बदलता चला जाता है, अवधान बदल जाता है।

या फिर तुमने शब्दों से तादात्म्य नहीं किया है, अगर तुम बस एक देखने वाले हो, बस शब्दों को एक श्रंखला में देख रहे हो, बस देख रहे हो, अकेले, ऊपर खड़े होकर बस शब्दों को देख रहे हो... वे एक कतार में चलते जा रहे है, ठीक उसी तरह जैसे सड़क पर लोग चला करते है और तुम बस इसको देख रहे हो सु चीजें बदल रही है, एक व्यक्ति चला गया है, दूसरा अभी आया नहीं है र वहां पर एक अंतराल है, सड़क खाली है।

अगर तुम बस देखते रहो, तो तुम अंतराल को जान लोगे। और एक बार तुम ने अंतराल को जान लिया, तो तुम छलांग लगाना भी जान जाओगे, क्योंकि यह अंतराल एक घाटी है। शब्द सतह है और अंतराल घाटी है। एक बार तुम अंतराल को जान लो–तुम इसमें हो, तुम इसमें छलांग लगा दोगे और यह परम शांतिदायक है, और यह परम सष्टा है। अंतराल में होना उत्क्रिाति है, अंतराल में होना रूपांतरण है। और एक बार तुम अंतराल के खजाने को जान लो, तुम इसको कभी न खोओगे।

उस क्षण भाषा की जरूरत नहीं रहती, तुम इसे छोड़ दोगे और यह सचेतन रूप से छोड़ देना है। तुम घाटी के प्रति चेतन हो, तुम मौन के प्रति, असीम मौन के प्रति चेतन हो। तुम इसी में हो। और दूसरी बात, जब तुम अंतराल में, मध्यांतर में, घाटी में होते हो तो तुम इसके साथ एक हो जाते हो। तुम इससे अलग नहीं रह सकते। तुम चेतन हो और एक हो, और ध्यान का यही रहस्य है। तुम इसके प्रति चेतन हो और इसके साथ एक भी हो। ऐसा नहीं है कि तुम अपने आप से भिन्न–किसी अन्य के प्रति चेतन हो। तुम घाटी के प्रति कभी भी किसी 'अन्य' की भांति चेतन नहीं होते, इस घाटी के प्रति तुम अपने आप' की भांति चेतन हो। और फिर भी तुम चेतन हो तुम अचेतन नहीं हो। तुम जानते हो, लेकिन जानने वाला अब जाना गया हो गया है। तुम अंतराल को देखते हो किंतु अब देखने वाला ही देखा जा रहा है।

अब जहां तक शब्दों और विचारों का संबंध है, तुम साक्षी हो, भिन्न हो और शब्द अलग है। किंतु जब वहां पर शब्द नहीं होते, तुम अंतराल होते हो और फिर भी चेतन हो कि तुम अंतराल हो। क्योंकि अब तुम्हारे और अंतराल के मध्य, चैतन्यता और अस्तित्व के मध्य कोई अवरोध नहीं होता। सिर्फ शब्द ही अवरोध है। अब तुम एक अस्तित्वगत अवस्था में होते हो। यही ध्यान है; अस्तित्व में होना; समग्रता पूर्वक इसमें होना, और फिर भी चैतन्य होना। यही विरोध है, यही विरोधाभास है। क्योंकि हमने कभी ऐसी अवस्था को नहीं जाना है जिसमें हम इसके प्रति चेतन हैं और इसके साथ एक हैं।

जब कभी हम किसी चीज के प्रति चेतन होते है, तो वह चीज 'अन्य' बन जाती है। यदि हम उसके साथ तादात्म्य बना लेते हैं, तो हम केवल एक चीज को ही जानते है। तब वह चीज अन्य नहीं है, लेकिन उस समय

हम उसके प्रति चेतन नहीं होते है। हम किसी चीज के साथ केवल तभी एक हो सकते हैं जब हम अचेतन हों। हमारा यही अनुभव रहा है। यही दिन-प्रतिदिन के जीवन का अनुभव है, सामान्य अनुभव है कि हम केवल तभी एक होते है जब हम अचेतन हों।

यही कारण है कि कामवासना में इतना अधिक आकर्षण है। एक क्षण के लिए तुम एक हो जाते हो, लेकिन उस क्षण में तुम अचेतन हो। और तुम उस अचेतनता की खोज करते हो। किंतु तुम जितना अधिक खोजते हो, उतना ही तुम चेतन हो जाते हो। तब कामवासना नितांत असंगत हो जाती है। एक क्षण आएगा. क्योंकि यदि तुम सतत रूप से इसका अभ्यास करते हो तो तुम अचेतन नहीं बने रह सकते हो। चेतनता इसके भीतर प्रविष्ट हो जाएगी। वह कृत्य यांत्रिक बन जाएगा क्योंकि तब तुम इसके साथ तादात्म्य नहीं कर सकते हो। तब तुम कामवासना का आनंद अनुभव नहीं कर सकते, क्योंकि यह आनंद अचेतन से आ रहा था। वासनायुक्त उत्तेजना में तुम अचेतन हो जाते थे।

एक क्षण के लिए तुम्हारी चेतनता खो जाती थी; तुम घाटी में थे, किंतु अचेतन। और जिस क्षण तुम इसमें प्रविष्ट होते हो, यह क्षण छोटा हो जाता है। जितना तुम इसकी खोज करते हो, उतना ही यह खो जाता है। और एक क्षण आता है जब तुम कामवासना में होते हो, किंतु अचेतन नहीं होते। घाटी खो जाती है, और सुख खो जाता है। तब यह कृत्य मूढ़तापूर्ण बन जाता है। तब यह कृत्य मात्र एक यांत्रिक निकास बन जाता है, इसकी कोई आध्यात्मिक पृष्ठभूमि नहीं होती।

हमने केवल अचेतन एकता को जाना है, हमने कभी सचेतन एकता को नहीं जाना और ध्यान सचेतन एकता है। यह कामुकता का दूसरा ध्रुव है। कामवासना अचेतन एकता का एक ध्रुव है और ध्यान सचेतन एकता का दूसरा ध्रुव है। कामवासना एकता का निम्नतम बिंदु है, और ध्यान उच्चतम एकता का चरम शिखर है। और अंतर चेतना का है। उनमें चेतना का अंतर है।

पश्चिमी मन अब ध्यान के बारे में सोच रहा है, क्योंकि कामवासना का आकर्षण खो चुका है। जब भी कोई समाज कामवासना के प्रति दमित नहीं रह जाता है, ध्यान अनुगमन करेगा। जब कोई समाज कामवासना के निषेध को छोड़ देता है– ध्यान अनुगमन करेगा–क्योंकि निषेध रहित कामवासना इसके आकर्षण और रोमांस को मार देगी; इसके आध्यात्मिक पहलू को मार देगी। तुम इतने अचेतन नहीं हो सकते हो। तुम अक्सर इतने अचेतन नहीं हो सकते। वरना उस अचेतनता में चेतना का एक आयाम बन जाएगा।

इसलिए कामवासना का दमन करने वाला समाज कामवासना में उत्सुक बना रह सकता है, लेकिन अ-दमित, दमन न करने वाला, निषेध रहित समाज सदा के लिए कामुकता में नहीं बना रह सकता है। उसे इसका अतिक्रमण करना ही पड़ेगा। इसलिए जब कभी कामवासना मुक्त, निषेध रहित हो जाती है, ध्यान अनुगमन करता है। और जब कोई समाज कामुक है, धर्म अनुगमन करेगा। कामवासना का दमन करने वाला समाज वास्तविक रूप से धार्मिक नहीं हो सकता है, क्योंकि ध्यान के कृत्य का विकल्प कामवासना द्वारा प्रस्तुत किया जा रहा है। इसलिए मेरे देखे काम-दमन से मुक्त समाज धार्मिक क्रांति की ओर उठाया गया एक कदम है। पश्चिमी मन पूछ रहा है–ध्यान क्या है–एक खोज है, एक तलाश है। और जैसे-जैसे समय गुजरता जाएगा, खोज और प्रगाढ़ होती जाएगी।

क्योंकि खोज है, इसलिए निस्संदेह इसका शोषण किया जा सकता है। और इसका पूरब के द्वारा शोषण किया जा रहा है। इसका शोषण किया जा सकता है। गुरुओं की आपूर्ति की जा सकती है, उनका निर्यात किया जा सकता है। और उनका निर्यात किया जा रहा है। किंतु उन गुरुओं के द्वारा केवल युक्तियां, केवल युक्तियां ही

सीखी जा सकती है। समझ जीवन के माध्यम से आती है, समझ जीवन-शैली के माध्यम से आती है। इसे दिया नहीं जा सकता, इसका हस्तांतरण नहीं किया जा सकता है।

मैं तुमको अपनी समझ नहीं दे सकता हूं। मैं इसके बारे में बात कर सकता हूं लेकिन मैं तुमको इसे दे नहीं सकता। तुमको इसे पाना होगा। तुम्हें जीवन में जाना पड़ेगा। तुमको गलतियां करनी पड़ेगी, तुमको असफल होना पड़ेगा, तुमको हताशा से होकर गुजरना पड़ेगा। और केवल असफलताओं, गलतियों, हताशाओ के माध्यम से, वास्तविक जीवन-शैली के साक्षात के माध्यम से तुम ध्यान' पर आ जाओगे। यही कारण है कि मैं कहता हूं यह एक विकास है। लेकिन कुछ समझा जा सकता है। यह समझ बुद्धि के तल से गहरी कभी नहीं जाएगी। दूसरे के माध्यम से यह बौद्धिक से अधिक कुछ भी नहीं हो सकती है।

यही कारण है कि कृष्णमूर्ति असंभव की मांग करते है। वे तुमसे कहेंगे मुझे बौद्धिक रूप से मत समझो र' लेकिन किसी दूसरे के माध्यम से बौद्धिक समझ के अतिरिक्त कुछ और नहीं आ सकता है। यही कारण है कि उनका प्रयास बेतुका हो चुका है। जो कुछ भी वे कह रहे है, वह ठीक वही है जो कहा जा सकता है, यह प्रमाणिक है। लेकिन जब वे श्रोताओं से बौद्धिक समझ से कुछ और अधिक की मांग करते है, तो यह असंभव हो जाता है। क्योंकि दूसरे के माध्यम से इससे अधिक कुछ और आ भी नहीं सकता है. इससे अधिक कुछ और कहा भी नहीं जा सकता। लेकिन मेरे देखे बौद्धिक समझ भी काम की हो सकती है।

जो कुछ मैं तुमसे बौद्धिक रूप से कहता हूं अगर तुम उसे समझ सको, तो तुम उसको भी समझ सकते हो जिसको तुमसे नहीं कहा गया है। अगर तुम उसको समझ सको जो मैं तुमसे कह रहा हूं तो तुम अंतरालों को जो मैं तुमसे नहीं कह रहा हूं जो मैं तुमसे कह भी नहीं सकता हूं उनको भी समझ सकते हो। और अगर तुम बौद्धिक रूप से समझ लो और पहली समझ तो बौद्धिक होनी ही है, क्योंकि बुद्धि द्वार है। यह कभी भी आध्यात्मिक नहीं हो सकती, क्योंकि आध्यात्मिकता तो अंतर-अनुभूति है।

इसलिए मैं तुमसे केवल बौद्धिक रूप से संवाद कर सकता हूं। लेकिन अगर तुम इसे समझ सके, तो वह जिसे नहीं कहा गया है उसको भी अनुभव किया जा सकता है। मैं शब्दों के बिना संवाद नहीं कर सकता, लेकिन जब मैं शब्दों का प्रयोग कर रहा हूं तो मैं 'मौन' का उपयोग भी कर रहा हूं। तुमको दोनों के प्रति बोधपूर्ण होना पड़ेगा। जो कुछ मैंने तुमसे कहा है वह उन अंतरालों की, उन दो शब्दों के बीच के अंतरालों की, जिनका मैंने प्रयोग किया है, तुलना में कम महत्वपूर्ण है। अगर केवल शब्दों को समझा जा रहा है, तब यह संवाद है। और अगर तुम अंतरालों' के प्रति भी सजग हो सको; तो यह सत्संग है। लेकिन यह सभी कुछ तुम पर निर्भर है।

कहीं से भी आरंभ कर दो क्योंकि व्यक्ति को कहीं से तो आरंभ करना पड़ता है। और प्रत्येक आरंभ झूठा आरंभ होने के लिए बाध्य है, लेकिन व्यक्ति को कहीं से आरंभ करना ही पड़ता है। और प्रत्येक आरंभ के द्वारा ही जो कि झूठा आरंभ होने के लिए बाध्य है, क्योंकि आरंभ में तुम अंत को नहीं जान सकते हो और अंत को जाने बिना तुम आरंभ को नहीं जान सकते हो। आरंभ अतीत है, और तुमको कहीं न कहीं से आरंभ करना पड़ता है। यह झूठा होने के लिए बाध्य है, लेकिन इसको झूठा ही रहने दो।

आरंभ कर दो, क्योंकि झूठे के माध्यम से, टटोलते रहने के द्वारा, द्वार मिल जाता है। हम अंधकार में है, हमें कहीं न कहीं से आरंभ करना ही पड़ता है। और कोई व्यक्ति जो बहुत होशियार है और जो सोचता है मैं केवल उसी समय आरंभ करूंगा, जब कि सही आरंभ होगा, तो वह कभी आरंभ नहीं करेगा। वह कभी अंधेरे में नहीं टटोलेगा, क्योंकि वह कहेगा जब दरवाजा खुला है और मुझे पता है कि यही दरवाजा है, केवल उसी समय मैं पहला कदम उठाऊंगा, वह कभी पहला कदम नहीं उठाएगा, और अगर पहला कदम नहीं उठाया गया है तो

अंतिम कदम तक कभी पहुंचा नहीं जा सकेगा। और मैं यह भी कहता हूं कि झूठा कदम भी एक कदम है, झूठा कदम भी सही कदम की दिशा में बढ़ाया गया एक कदम है, क्योंकि यह एक कदम है; यह एक आरंभ है।

इसलिए मैं यह भी कहता हूं कि झूठा आरंभ, गलत आरंभ भी सही आरंभ है, क्योंकि यह एक आरंभ है। तुम अंधकार में टटोलने से शुरू करते हो और टटोलते-टटोलते द्वार मिल जाता है।

इसीलिए मैं कहता हूं कि भाषा की प्रक्रिया के प्रति, शब्दों की प्रक्रिया के प्रति होशपूर्ण रहो और अंतरालों के प्रति, मध्यांतरो के प्रति सजगता की खोज में रहो। और कुछ पल ऐसे होंगे, जब तुम्हारी ओर से किसी सचेतन प्रयास के बिना, कुछ पल ऐसे होंगे और तुम अंतराल के प्रति सजग हो जाओगे। यही सम्मुख होना है, दिव्यता से सामना है, परम अस्तित्व से साक्षात है। जब कभी यह आमना-सामना हो, इससे जल्दी से भाग मत जाना। इसके साथ रहो। पहली बार में यह भय-जनक होगा, यह ऐसा होने के लिए बाध्य है।

जब भी अज्ञात से सामना होता है, भय उत्पन्न होता है क्योंकि हमारे लिए अज्ञात का अर्थ है मृत्यु। हम मृत्यु से भयभीत रहते है क्योंकि यह अज्ञात है–सर्वाधिक अज्ञात—यथा सबसे अधिक विख्यात अज्ञात अनुभूति। इसलिए जब कभी अंतराल होगा, तुम्हें मृत्यु की अनुभूति होगी, जैसे कि तुम्हारी मृत्यु होने वाली है। तब मर जाओ! बस उसी में रहो, और अंतराल में पूरी तरह से मर जाओ। और तुम फिर से जीवित हो उठोगे। पुनर्जीवन से मेरा यही अभिप्राय है, अंतराल में, मौन में मर कर जीवन पुर्नजावित हो जाता है। तुम जीवित लौट आते हो, और पहली बार वास्तव में जीवित होते हो।

इसलिए मेरे लिए ध्यान कोई विधि नहीं, बल्कि एक प्रक्रिया है; ध्यान कोई विधि नहीं है, बल्कि एक समझ है। इसको सिखाया नहीं जा सकता, इसका केवल संकेत दिया जा सकता है। तुम्हें इसके बारे में सूचित नहीं किया जा सकता क्योंकि कोई सूचना भीतर से नहीं दी जाती है। यह बाहर से दी जाती है। ध्यान तुम्हारी अपनी स्वयं की आंतरिक गहराइयों से आता है।

इसलिए खोजो, खोजी हो जाओ, और शिष्य मत बनो। क्योंकि केवल खोजी ही शिष्य है–किंतु तब वह किसी गुरु का शिष्य नहीं है, बल्कि वह समस्त जीवन का शिष्य है। तब शब्दों को ही मत सीखते रहो क्योंकि आध्यात्मिक सीख कभी शब्दों की नहीं हो सकती। अंतरालों को सीखते रहो–मौन के उन क्षणों को जो वहां है, सदा तुम्हें घेरे हुए है। भीड़-भाड़ में, बाजार में वहां वे है, वे वहां मौजूद है। मौन को खोजो, भीतर और बाहर अंतरालों को खोजो और एक दिन तुम पाओगे कि तुम ध्यान में हो। ध्यान तुम तक आ गया है। यह सदा आता है।

व्यक्ति को इसकी खोज में होना पड़ता है, क्योंकि सिर्फ तब, जब कि तुम खोज में हो, तुम इसके प्रति खुले हुए, इसका स्वागत करने के लिए तैयार होते हो। तुम इसके मेजबान हो और ध्यान अतिथि है। तुम इसे निमंत्रित कर सकते हो और इसकी प्रतीक्षा कर सकते हो। यह आता है। यह सदा से आता रहा है। यह बुद्ध के पास आता है, यह जीसस के पास आता है., यह प्रत्येक व्यक्ति के पास आता है, यह प्रत्येक उस व्यक्ति के पास आता है जो खुल जाने और खोजने के लिए तैयार है।

किंतु इसे कहीं और से मत सीखो; अन्यथा तुम धोखा खा जाओगे। और धोखे बहुत से हैं। और मन सदा किन्हीं सरलतर चीजों की तलाश में रहता है–कम से कम प्रतिरोध हो। मन सदा कम से कम प्रतिरोध की खोज में रहता है, और कम से कम प्रतिरोध की यह चाहत शोषण का कारण बन जाती है। फिर वहां अनेक गुरु हैं, और गुरु परंपराएं हैं, और सारी आध्यात्मिक खोज विषाक्त हो जाती है।

सर्वाधिक खतरनाक व्यक्ति वह है जो किसी की आध्यात्मिक मांग का शोषण करता है। अगर कोई तुम्हारे धन पर डाका डाले तो यह इतना खतरनाक नहीं है, क्योंकि किसी चीज का चुरा लिया जाना इतना खतरनाक

नहीं है; अगर कोई तुम्हें मार भी डाले तो भी वास्तव में यह इतनी गंभीर बात नहीं है। लेकिन अगर कोई तुम्हें इस प्रकार से धोखा दे और ध्यान की ओर दिव्यता की ओर, समाधि की ओर की प्यास को मिटा दे या स्थगित भी कर दे, तो यह पाप बहुत बड़ा और अक्षम्य है।

लेकिन ऐसा किया जा रहा है। इसलिए इसके प्रति सावधान रहो। ऐसा अच्छा रहेगा...? हर किसी से मत पूछो 'ध्यान क्या है? ध्यान क्या है? ध्यान कैसे किया जाए?' पूछो : बाधाएं क्या है? रुकावटें क्या है। हम ध्यान में क्यों नहीं हैं? विकास कहां रोक दिया गया है? कहा पर हम पंगु हो गए है। और किसी गुरु की खोज मत करो, क्योंकि गुरु लोग पंगु बना रहे है। वे पंगु बनाते है। और कोई भी व्यक्ति जो तुमको पूर्व–निर्मित सूत्र; बने-बनाए सूत्र दे देता है वह मित्र नहीं है वरन शत्रु है।

अंधकार में टटोलो। यही नियति है, यही परिस्थिति है, और कुछ किया भी नहीं जा सकता है। ऐसा ही है अंधकार में टटोलो और यह टटोलना ही वह समझ बनेगा जो मुक्त कर देती है। जीसस ने कहा है 'सत्य मुक्त करता है। सत्य स्वतंत्रता है।' समझ स्वतंत्रता है क्योंकि सत्य सदैव समझ के माध्यम से आता है। यह कुछ ऐसा नहीं है कि तुम इससे मिलोगे और तुम्हारा इससे आमना-सामना हो जाएगा। यह कुछ ऐसा है जिसमें तुम विकसित होगे। सत्य कोई ऐसी चीज नहीं है जिससे किसी काल और किसी देश में तुम्हारा मिलना हो जाएगा। सत्य कुछ ऐसा है जिसमें तुम विकसित होगे।

इसलिए समझ की खोज में रहो, क्योंकि समझ ही एकमात्र विकास है, और तुम जितना समझपूर्ण, जितना परिपक्व होते जाओगे, सत्य तुम्हारे उतने ही निकटतर होगा। और किसी अज्ञात, अनअपेक्षित क्षण में, क्योंकि मन उसकी अपेक्षा नहीं कर सकता है जो कि मन से परे हो, जिसकी पूर्व–घोषणा न हो सके, क्योंकि मन उसकी पूर्व घोषणा नहीं कर सकता जो मन का नहीं है-किसी अनअपेक्षित, अकल्पनीय पल में, जब समझ अपनी चरम अवस्था पर आती है, तुम खाई में होते हो। अब तुम नहीं बचे हो, और ध्यान है।

जब तुम नहीं होते हो तब तुम ध्यान में हो। दोनों का अस्तित्व एक साथ नहीं हो सकता है या तो तुम हो या ध्यान है। इस प्रकार ध्यान कभी तुमसे नहीं आता, यह सदा ही तुमसे परे है। जब तुम खाई में होते हो, ध्यान वहां होता है। तब अहंकार नहीं होता; तब तुम नहीं होते। तब अस्तित्व होता है। यही है, जो धर्मों का परमात्मा से, परम अस्तित्व से अभिप्राय है। यही है जिसको धर्मो ने परम लक्ष्य कहा है। और ध्यान ही परम गन्तव्य है। यह सभी धर्मो का, सभी खोजियों का और सभी अनुसंधानों का सार तत्व है। यह कहीं भी पूर्व–निर्मित नहीं मिलता है। और कोई भी जो ऐसा कहता हो, इसका दावा करता हो, तो उससे सावधान रहो।

टटोलते रहो, और असफलताओं से मत डरो। असफल हो जाओ, लेकिन उसी असफलता को दोहराओ मत।

यही है सभी कुछ, यही पर्याप्त है। गलतियां करना मानवीय है, क्षमा किया जाना दिव्य है, और उस व्यक्ति को जो सत्य की खोज में गलतियां करता रहता है, सदैव क्षमा कर दिया जाता है। यह अस्तित्व की परम गहराइयों में से किया गया वादा है, लेकिन व्यक्ति को इसकी ओर विकसित होना पड़ता है।

आज इतना ही

तीसरा प्रवचन

काम, प्रेम और प्रार्थना: दित्यता के तीन चरण

ओशो कृपया हमारे लिए काम-ऊर्जा के आध्यात्मिक महत्व की व्याख्या करें। काम का ऊर्ध्वगमन और आध्यात्मीकरण हम किस प्रकार से कर सकते हैं? क्या यह संभव है कि काम का संभोग का ध्यान की भांति चेतना के उच्चतर आयामों में जाने के लिए छलांग लगाने के एक तख्ते की भांति उपयोग किया जा सके?

काम-ऊर्जा जैसी कोई चीज नहीं होती है। ऊर्जा एक है और एक समान है। काम इसका एक निकास द्वार, इसके लिए एक दिशा, इस ऊर्जा के उपयोगों में से एक है। जीवन-ऊर्जा एक है; किंतु यह बहुत सी दिशाओं में प्रकट हो सकती है। काम उनमें से एक है। जब जीवन-ऊर्जा जैविक हो जाती है तो यह काम-ऊर्जा होती है।

काम जीवन-ऊर्जा का मात्र एक उपयोग है। इसलिए ऊर्ध्वगमन का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। यदि जीवन ऊर्जा किसी अन्य दिशा में प्रवाहित होती है, वहां काम नहीं होता। किंतु यह ऊर्ध्वगमन नहीं है; यह रूपांतरण है।

काम जीवन-ऊर्जा का प्राकृतिक जैविक प्रवाह है, और इसका निम्नतम उपयोग भी है। यह स्वाभाविक है, क्योंकि जीवन का अस्तित्व इसके बिना नहीं हो सकता, और निम्नतम है, क्योंकि यह आधार है, शिखर नहीं। जब काम सभी कुछ हो जाता है, तो सारा जीवन मात्र एक व्यर्थता बन जाता है। यह आधार बनाने और आधार बनाते रहने जैसा है, बिना उस मकान को कभी भी बनाए जिसके लिए आधार रखा गया है।

काम जीवन-ऊर्जा के उच्चतर रूपांतरण के लिए मात्र एक अवसर मात्र है। जब तक यह सामान्यत: ढंग से चलता है, ठीक है, किंतु जब काम सभी कुछ हो जाता है, जब यह जीवन-ऊर्जा का एकमात्र निकास बन जाता है, तब यह विध्वंसात्मक हो जाता है। यह बस साधन हो सकता है, साध्य नहीं। और साधनों का महत्व तभी तक है, जब साध्य प्राप्त कर लिया जाए। जब कोई व्यक्ति साधनों को गाली देता है, सारा प्रयोजन नष्ट हो जाता है। अगर कामवासना जीवन का केंद्र बन जाए, जैसा कि यह बन गया है, तब साधन, साध्यों में बदल जाते हैं। जीवन के अस्तित्व में रहने के लिए, सातत्य के लिए कामवासना जैविक आधार निर्मित करती है। यह एक साधन है, इसे साध्य नहीं बन जाना चाहिए।

जिस पल कामवासना साध्य बन जाती है, आध्यात्मिक आयाम खो जाता है। किंतु अगर काम ध्यानपूर्ण हो जाए, तो यह आध्यात्मिक आयाम की ओर उन्मुख हो जाता है। यह सीढ़ी का पत्थर, छलांग लगाने का तख्ता बन जाता है।

ऊर्ध्वगमन की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि ऊर्जा जैसी वह है, न तो कामुक है और न आध्यात्मिक। ऊर्जा तो सदैव तटस्थ है। अपने आप में यह अनाम है। जिस द्वार से होकर यह प्रवाहित होती है, उसी का नाम इसे मिल जाता है। यह नाम स्वयं ऊर्जा का नाम नहीं है, यह उस रूप का नाम है, जिसे ऊर्जा ग्रहण कर लेती है। जब तुम कहते हो, काम-ऊर्जा, इसका अभिप्राय है वह ऊर्जा जो काम के द्वार से जीव-शास्त्रीय निकास से प्रवाहित होती है। यही ऊर्जा, जब वह भगवत्ता में प्रवाहित होती है, आध्यात्मिक ऊर्जा है।

ऊर्जा अपने आप में तटस्थ है। जब इसकी जीव-शास्त्रीय अभिव्यक्ति होती है, यह कामवासना है। जब इसकी भावनात्मक अभिव्यक्ति होती है, तो यह प्रेम बन सकती है, यह घृणा बन सकती है, यह क्रोध बन सकती है। जब यह बौद्धिक रूप से अभिव्यक्त होती है, यह विज्ञानवादी बन सकती है, यह साहित्यिक बन सकती है।

जब यह शरीर के माध्यम से गति करती है, यह भौतिक हो जाती है। जब यह मन के माध्यम से गुजरती है, यह मानसिक हो जाती है। ये अंतर ऊर्जा के अंतर नहीं हैं, वरन उसके प्रयुक्त रूपों के हैं।

उसलिए काम-ऊर्जा का ऊर्ध्वगमन' कहना सही नहीं है। अगर काम का निकास द्वार उपयोग में न आए तो ऊर्जा दुबारा शुद्ध हो जाती है। ऊर्जा तो सदा शुद्ध है। जब यह दिव्यता के द्वार के माध्यम से प्रकट होती है, यह आध्यात्मिक बन जाती है, पर धारण किया गया रूप इसकी बस एक अभिव्यक्ति है।

ऊर्ध्वगमन शब्द के साथ बहुत सी गलत धारणाएं जुड़ी है। ऊर्ध्वगमन के सारे सिद्धांत दमन के सिद्धांत हैं। जब कभी तुम कहते हो, काम ऊर्जा का ऊर्ध्वगमन, तुम इसके प्रति शत्रुतापूर्ण हो चुके होते हो। इस शब्द में ही तुम्हारी निंदा छिपी है।

तुमने पूछा है कि काम के बारे में कोई क्या कर सकता है?

काम के प्रति सीधे ही कुछ भी किया जाना दमन है। केवल कुछ अप्रत्यक्ष विधियां है जिनमें तुम काम-ऊर्जा से कोई मतलब नहीं रखते, बल्कि इसके बजाय दिव्यता का द्वार खोलने का उपाय खोजते हो। जब 'दिव्यता' की ओर द्वार खुला होता है तो तुम्हारे भीतर जो भी ऊर्जाएं है, उस द्वार की ओर प्रवाहित होना शुरू कर देती हैं। काम को अवशोषित कर लिया जाता है। जब कोई उच्चतर आनंद संभव हो तो आनंद के निम्नतर रूप असंगत हो जाते है। तुम्हें न तो उनको दबाना है, न उनके विरोध में लड़ना है। वे बस विदा हो जाएंगी। काम का ऊर्ध्वगमन नहीं होता, उसका अतिक्रमण हो जाता है।

काम के साथ निषेधात्मक रूप से किया गया कोई भी कृत्य ऊर्जा का रूपांतरण नहीं करेगा। बल्कि इसके विपरीत यह तुम्हारे भीतर एक संघर्ष पैदा करेगा, जो विध्वंसक होगा। जब तुम किसी ऊर्जा से लड़ते हो, तो तुम अपने आप से लड़ रहे होते हो। यह लड़ाई कोई भी नहीं जीत सकता। एक क्षण को तुम्हें लगेगा कि तुम जीत गए, और अगले ही पल तुम अनुभव करोगे कि कामवासना जीत गई। यह लगातार चलता रहेगा। किसी समय बिलकुल भी काम अनुभव नहीं होगा और तुम महसूस करोगे कि तुमने इसे नियंत्रित कर लिया है, और अगले ही पल तुम काम का खिंचाव पुन: अनुभव करोगे और वह सब–कुछ जो तुम्हें अर्जित किया हुआ लग रहा था खो जाएगा। कोई भी अपनी खुद की ऊर्जा के खिलाफ लड़ कर जीत नहीं सकता।

अगर तुम्हारी ऊर्जाओं की किसी अन्य स्थान पर आवश्यकता है, कहीं अधिक आनंद देने वाले स्थान पर, तो काम मिट जाएगा। यह ऐसा नहीं है कि ऊर्जा का ऊर्ध्वगमन हो गया है, यह ऐसा नहीं है कि तुमने इसके साथ कुछ किया है। बल्कि तुम्हारे लिए और अधिक आनंद की ओर का एक नया रास्ता खुल गया है और अपने आप सहजस्कूर्त रूप से, ऊर्जा नये द्वार की ओर प्रवाहित होने लगती है।

अगर तुमने पत्थरों को पकड़ रखा हो और अचानक तुम्हारे सामने हीरे आ जाएं, तो तुम्हें पता ही न चलेगा कि तुमने पत्थरों को कब गिरा दिया। वे अपने आप ही गिर जाएंगे जैसे कि वे तुम्हारे पास कभी न थे। तुमको याद भी न आएगा कि तुमने उनको त्याग दिया है, कि तुमने उन्हें दूर फेंक दिया था। इसको तुम महसूस भी नहीं करोगे। यह ऐसा नहीं है कि किसी चीज का ऊर्ध्वगमन हो गया है। प्रसन्नता का एक विराटतर स्रोत खुल गया है और निम्नतर स्रोत अपने आप ही छोड़ दिए गए हैं।

यह इतना स्वचालित, इतना सहजस्फूर्त है कि कामवासना के विपरीत किसी सकारात्मक कृत्य की आवश्यकता ही नहीं पड़ती है। जब कभी तुम किसी ऊर्जा के विरुद्ध कुछ कर रहे हो तो यह नकारात्मक ही होता है। असली, विधायक कार्य तो कामवासना से संबंधित भी नहीं है, बल्कि उसका संबंध ध्यान से है। तुम्हें तो यह पता भी न चलेगा कि कामवासना कब विदा हो गई। यह तो बस नये द्वारा अवशोषित हो जाता है।

ऊर्ध्वगमन एक कुरूप शब्द है। यह अपने आप में शत्रुता का, संघर्ष का स्वर लिए हुए है। कामवासना को बस उतना ही महत्वपूर्ण समझा जाना चाहिए, जितनी यह है। यह जीवन के अस्तित्व में बने रहने का बस जीवशास्त्रीय आधार है। इसे कोई आध्यात्मिक या गैर–आध्यात्मिक अर्थ मत दो। बस इसके तथ्य को समझो।

जब तुम इसे जीवशास्त्रीय तथ्य के रूप में लेते हो, तब तुम इसकी जरा भी चिंता नहीं करते। तुम इसकी फिकर केवल तभी करते हो जब इसको कोई आध्यात्मिक अर्थ दे दिया गया हो। इसलिए इसे कोई अर्थ मत दो, इसके चारों ओर किसी दर्शनशास्त्र का निर्माण मत करो। बस तथ्यों को देखो। इसके पक्ष या विपक्ष में कुछ मत करो। जैसा यह है इस को वैसा ही रहने दो, इसे सामान्य रूप में स्वीकार कर लो। इसके प्रति कोई असामान्य दृष्टिकोण मत बनाओ।

जैसे कि तुम्हारे पास आंखें और हाथ है, ऐसे ही तुम्हारे पास कामवासना भी है। तुम अपनी आंखों के या अपने हाथों के विरोध में तो नहीं होते, इसलिए कामवासना के विरोध में भी मत हो जाओ। तब यह प्रश्न कि कामवासना के बारे में क्या किया जाए असंगत हो जाता है। कामवासना के पक्ष या विपक्ष में द्वैतवाद निर्मित करना अर्थहीन है। यह एक प्रामाणिक तथ्य है कि तुम कामवासना के माध्यम से अस्तित्व में आए हो, और तुम्हारे पास पुन: कामवासना के माध्यम से जन्म देने का पूर्व–निर्मित कार्यक्रम भी है। तुम एक बड़े सातत्य के हिस्से हो। तुम्हारे शरीर को मर जाना है, इसलिए इसके पास एक दूसरे शरीर को निर्मित करने का पूर्व-निर्धारित कार्यक्रम होता है, जो इसके स्थान पर बना रहे। मृत्यु निश्चित है। यही कारण है कि कामवासना इतनी प्रभावशाली है। तुम यहां सदा नहीं होगे, इसलिए तुम्हें एक नये शरीर, एक अनुकृति के द्वारा प्रतिस्थापित होना पड़ेगा। कामवासना इसलिए इतनी महत्वपूर्ण है क्योंकि सारी प्रकृति का जोर इसी पर है, अन्यथा मनुष्य का अस्तित्व सदा नहीं बना रह सकेगा। अगर यह स्वैच्छिक होता, तो धरती पर कोई भी नहीं बचता। कामवासना इतनी प्रभावशाली है, इस कदर विवश कर देने वाली है, इसकी मांग इतनी सघन है, क्योंकि सारी प्रकृति इसी के लिए है। इसके बिना जीवन का अस्तित्व नहीं रह सकता है।

धार्मिक खोजियों के लिए कामवासना इतनी महत्वपूर्ण इसी कारण से हो गई क्योंकि यह इतनी अनैच्छिक, विवश कर देने वाली और इतनी स्वाभाविक है। इसी कारण से यह इस बात को जानने की यह कसौटी बन गई कि किसी व्यक्ति की जीवन ऊर्जा अभी दिव्यता तक पहुंची या नहीं। हम सीधे ही यह नहीं जान सकते हैं कि कोई दिव्यता तक पहुंच चुका है या नहीं, हम सीधे ही यह नहीं जान सकते है कि किसी के पास हीरे हैं, लेकिन हम सीधे ही यह जान सकते हैं कि किसी ने पत्थरों को फेंक दिया है, क्योंकि पत्थरों से हमारी जान-पहचान है। हम सीधे ही यह जान सकते है कि किसी ने कामवासना का अतिक्रमण कर लिया है क्योंकि कामवासना को हम पहचानते हैं।

कामवासना इतनी विवश कर देने वाली, इतनी अनैच्छिक है, और इसमें इतना विराट बल है कि जब तक कोई दिव्यता को प्राप्त न कर ले, इसका अतिक्रमण संभव नहीं है। इसलिए यह जानने के लिए कि कोई व्यक्ति दिव्यता तक पहुंच गया है या नहीं, ब्रह्मचर्य इसकी कसौटी बन गया। तब ऐसे व्यक्ति के लिए काम वासना, जैसी कि यह सामान्यजनो में होती है, का अस्तित्व नहीं रहेगा।

इसका अर्थ यह नहीं है कि कामवासना को छोड़ कर कोई दिव्यता को प्राप्त कर लेगा। यह विपरीत बात एक भ्रांति है। वह व्यक्ति जिसे हीरे मिल गए है, उन पत्थरों को फेंक देता है, जिन्हें वह लिए हुए था। किंतु इसका विपरीत सच नहीं है। तुम पत्थरों को दूर फेंक सकते हो, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम्हें उनसे श्रेष्ठ कुछ मिल गया है। तब तुम बीच में होगे। तुम्हारे पास एक दमित मन होगा, अतिक्रमण किया हुआ मन नहीं। कामवासना तुम्हारे भीतर उबलती रहेगी और एक भीतरी नर्क निर्मित कर देगी। यह कामवासना के पार

जाना नहीं है। जब कामवासना दमित हो जाती है तो यह कुरूप, रुग्ण और विक्षिप्त हो जाती है। यह विकृत हो जाती है।

काम के प्रति तथाकथित धार्मिक दृष्टिकोण ने, एक विकृत कामुकता, एक ऐसी संस्कृति को जो पूरी तरह विक्षिप्त कामुकता है, निर्मित किया है। मैं इसके पक्ष में नहीं हूं। कामवासना जैव-वैज्ञानिक सच्चाई है, इसमें कुछ भी गलत नहीं है। इसलिए इससे संघर्ष मत करो, वरना यह विकृत हो जाएगी, और यह विकृत कामवासना कोई आगे बढ़ाया गया कदम नहीं है। यह सामान्य अवस्था से नीचे गिर जाना है, यह पागलपन की ओर बढ़ाया गया एक कदम है। जब दमन इतना सघन हो जाता है कि तुम इसे और अधिक जारी न रख सको, तब यह फूट पड़ता है-और इस विस्फोट में तुम खो जाओगे।

तुममें सभी मानवीय गुण है, तुममें सभी संभावनाएं है। एक सामान्य तथ्य की भांति कामवासना स्वस्थ है; किंतु जब यह असामान्य रूप से दमित हो जाती है, तब यह अस्वस्थ बन जाती है। तुम सामान्य अवस्था से तो बहुत सरलता पूर्वक दिव्यता की ओर जा सकते हो, लेकिन विक्षिप्त मन के साथ दिव्यता की ओर जाना कठिन और एक प्रकार से असंभव है। पहले तुम्हें स्वस्थ और सामान्य होना पड़ेगा। तब अंत में कामवासना के अतिक्रमण की संभावना पैदा हो सकती है।

तब क्या करना है? काम को जानो! इस में सचेतन रूप से प्रवेश करो। एक नये द्वार को खोलने का रहस्य यही है। अगर तुम अचेतन रूप से कामवासना में जाते हो, तो तुम जैविक विकास के हाथों में मात्र एक उपकरण हो; किंतु अगर तुम काम-कृत्य में सजग रह सको, तो वह सजगता एक गहरा ध्यान बन जाती है।

काम-कृत्य इतना अनैच्छिक और इतना बाध्यकारी है कि इसमें चेतन रह पाना कठिन है, किंतु असंभव नहीं है। और अगर तुम काम-कृत्य में चेतन रह सको, तब जीवन में कोई भी ऐसा कृत्य नहीं है जिसमें तुम चेतन न रह सको, क्योंकि कोई भी कृत्य उतना गहरा नहीं है जितना काम-कृत्य है।

अगर तुम काम-कृत्य में सजग हो सको, तो मृत्यु में भी तुम सजग रहोगे। काम-कृत्य की गहराई और मृत्यु की गहराई एक जैसी है, एक सी है। तुम उसी बिंदु पर आते हो। इसलिए अगर तुम काम-कृत्य में होशपूर्ण रह सको तो तुमने एक महान उपलब्धि कर ली है। यह अमूल्य है।

इसलिए कामवासना का ध्यान के कृत्य की भांति उपयोग करो। इससे संघर्ष मत करो, इसके विरुद्ध मत जाओ। तुम प्रकृति से लड़ नहीं सकते, तुम इसी का भाग और अंश हो। तुम्हें कामवासना के प्रति मित्रतापूर्ण, सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। यह तुम्हारे और प्रकृति के मध्य गहनतम संवाद है।

वस्तुत: काम-कृत्य वास्तविक रूप से पुरुष व स्त्री के मध्य संवाद नहीं है। यह पुरुष का, स्त्री के माध्यम से, प्रकृति से संवाद है र और स्त्री का पुरुष के माध्यम से प्रकृति से संवाद है। यह प्रकृति के साथ संवाद है। एक क्षण के लिए तुम ब्रह्मांडीय प्रवाह में होते हो, तुम एक दिव्य लयबद्धता में होते हो, तुम समग्र के साथ एक हो जाते हो। इस प्रकार से पुरुष को स्त्री के माध्यम से और स्त्री को पुरुष के माध्यम से परितृप्ति प्राप्त होती है।

पुरुष संपूर्ण नहीं है और स्त्री संपूर्ण नहीं है। वे एक संपूर्णता के दो हिस्से है। इसलिए जब कभी काम-कृत्य में वे एक हो जाते हैं, वे वस्तुओं के अंतर्तम स्वभाव के साथ, ताओ के साथ लयबद्धता में हो सकते हैं। यह लयबद्धता एक नये प्राणी के लिए जीवशास्त्रीय जन्म हो सकती है। अगर तुम बेहोश हो तो यही एकमात्र संभावना है। किंतु अगर तुम होश से भरे हो, तो यह कृत्य तुम्हारे लिए एक जन्म, आध्यात्मिक जन्म बन सकता है। इसके माध्यम से तुम द्विज बन जाओगे–ट्वाइस बार्न।

जिस क्षण तुम इसमें सचेतन रूप से भाग लेते हो, तुम इसके साक्षी हो जाते हो। और एक बार तुम काम-कृत्य में साक्षी हो सके तो तुम कामवासना का अतिक्रमण कर लोगे; क्योंकि साक्षित्व में तुम मुक्त हो जाते हो।

अब वहां कोई बाध्यता नहीं होगी। तुम एक अचेतन भागीदार नहीं होओगे। एक बार तुम कृत्य में साक्षी हो गए, तुमने इसका अतिक्रमण कर लिया। अब तुम जानते हो कि तुम मात्र शरीर ही नहीं हो। तुम्हारे भीतर के साजित्व की शक्ति ने उसके पार का कुछ जान लिया है।

यह 'पार' सिर्फ तभी जाना जा सकता है जब तुम गहनता से अपने भीतर हो। यह कोई सतही मामला नहीं है। जब तुम बाजार में मोलभाव कर रहे होते हो, तुम्हारी चेतना बहुत गहरी नहीं जा सकती, क्योंकि यह कृत्य अपने आप में बहुत सतही है। जहां तक मनुष्य का संबंध है, काम-कृत्य सामान्यत: एक मात्र कृत्य है, जिसके माध्यम से कोई अपनी भीतरी गहराइयों का साक्षी बन सकता है।

जितना अधिक तुम कामवासना के माध्यम से ध्यान में जाओगे, कामवासना का प्रभाव उतना ही कम होगा। इसमें से ध्यान का विकास होगा, और विकसित होते हुए इस ध्यान से एक नया द्वार खुल जाएगा और कामवासना विदा हो जाएगी। यह कोई ऊर्ध्वगमन नहीं होगा। यह ऐसे ही होगा जैसे कि वृक्ष से सूखी पत्तियां गिर रही हों। वृक्ष को तो कभी पता भी नहीं चलता कि पत्तियां गिर रहीं हैं। ठीक उसी प्रकार से तुम्हें कभी पता भी न चलेगा कि काम की यांत्रिक चाहत विदा हो रही है।

कामवासना में से ध्यान का सृजन करो, कामवासना को ध्यान का विषय बनाओ। इसे मंदिर की भांति समझो, और तुम इसका अतिक्रमण कर लोगे और रूपांतरित हो जाओगे। तब कामवासना वहां पर नहीं होगी, किंतु वहां कोई दमन, कोई ऊर्ध्वगमन भी नहीं होगा। कामवासना बस असंगत, अर्थहीन हो जाएगी। तुम इसके पार विकसित हो गए हो। अब तुम्हारे लिए इसका कोई अर्थ नहीं रह जाता है। यह एक विकसित होते हुए बच्चे की भांति है। अब खिलौने अर्थहीन हैं। उसने किसी चीज का ऊर्ध्वगमन नहीं किया है; उसने किसी चीज का दमन नहीं किया है। बस वह बड़ा हो गया है, वह वयस्क हो गया है। खिलौने अब अर्थहीन हैं। वे बचकाने हैं, और बच्चा अब बच्चा नहीं रहा है।

ठीक इसी प्रकार से जितना अधिक तुम ध्यान में उतरोगे, तुम्हारे लिए काम का आकर्षण उतना ही कम होने लगेगा। और धीरे-धीरे सहजस्फूर्त रूप से, बिना काम के ऊर्ध्वगमन का सचेतन प्रयास किए, ऊर्जा प्रवाहित होने के लिए एक नया स्रोत पा लेगी। वही ऊर्जा जो कामवासना के माध्यम से प्रवाहित हुई थी, अब ध्यान के माध्यम से प्रवाहित होने लगेगी। और जब यह ध्यान के माध्यम से प्रवाहित होती है, भगवत्ता का द्वार खोला जा रहा होता है।

एक और बात, तुमने दो शब्दों का प्रयोग किया है काम और प्रेम। आमतौर से हम इन दोनों शब्दों का प्रयोग इस तरह से करते है जैसे कि इनमें कोई भीतरी साहचर्य हो। उनमें ऐसा नहीं है। प्रेम सिर्फ तभी आता है जब कामवासना जा चुकी होती है। इससे पहले प्रेम बस एक प्रलोभन है, एक प्रेमप्रणयता, प्रेमक्रीड़ा है, और कुछ भी नहीं। यह तो बस काम-कृत्य के लिए आधार तैयार करना है। यह और कुछ नहीं वरन काम की भूमिका प्रस्तावना है। इसलिए जब दो व्यक्तियों के मध्य अधिक कामवासना होगी तो वहां कम प्रेम होगा, क्योंकि तब प्रस्तावना की जरूरत नहीं है।

अगर दो व्यक्ति प्रेम में है, और उनके बीच जरा भी काम नहीं है, तो वहां अधिक उमंगपूर्ण प्रेम होगा। किंतु जिस पल कामवासना भीतर आती है, प्रेम बाहर चला जाता है। काम इस कदर अप्रत्याशित होता है। अपने आप में यह इतना हिंसक है कि इसे प्रस्तावना की जरूरत होती है, इसे प्रेमप्रणयता, प्रेमक्रीड़ा चाहिए। प्रेम जैसा कि हम इसे जानते है कामवासना के नग्न तथ्य को आवरण पहनाना मात्र है। जिसे तुम प्रेम कहते हो, अगर उसके भीतर तुम गहराई से झांको तो तुम वहां कामवासना को खड़ा पाओगे, बाहर कूदने को तत्पर। यह सदा से वहां मौजूद होती है। प्रेम ऊपर की बातचीत है। नीचे से कामवासना तैयारी कर रही होती है।

यह तथाकथित प्रेम कामवासना से संबंधित है, किंतु केवल एक भूमिका की भांति। अगर कामवासना आती है, तब प्रेम खो जाएगा। यही कारण है कि विवाह उमंगपूर्ण प्रेम को मार देता है, और उसे पूरी तरह से मार डालता है। दोनों व्यक्ति एक-दूसरे से परिचित हो गए हैं और प्रेम क्रीड़ा, प्रेम अनावश्यक हो जाता है।

असली प्रेम कोई प्रस्तावना नहीं है। यह एक सुगंध है। यह कामवासना के पहले नहीं बल्कि उसके बाद है। यह भूमिका नहीं वरन उपसंहार है। अगर तुम कामवासना से होकर गुजर चुके हो, और दूसरे व्यक्ति के प्रति करुणा अनुभव करते हो, तब प्रेम का विकास होता है। और अगर तुम ध्यान करते हो तो तुम करुणापूर्ण होना अनुभव करोगे। अगर काम-कृत्य में तुम ध्यान करो, तब तुम्हारी कामवासना का साथी तुम्हारे मात्र शारीरिक आनंद के लिए उपकरण नहीं बनेगा। तुम्हें उस पुरुष या उस स्त्री के प्रति धन्यता का अनुभव होगा, क्योंकि तुम दोनों गहन ध्यान तक पहुंच गए।

जब तुम कामवासना में ध्यान करते हो तो तुम दोनों के मध्य एक नई मैत्री का उदय होगा, क्योंकि एक-दूसरे के माध्यम से, तुम्हारा प्रकृति के साथ संवाद हो गया है, एक दूसरे के माध्यम से तुमने सत्य की अज्ञात गहराइयों की एक झलक पा ली है। तुम एक-दूसरे के प्रति धन्यता और करुणा अनुभव करोगे, कष्ट के प्रति करुणा, खोज के प्रति करुणा अपने सहगामी के प्रति, हमराही के प्रति करुणा।

अगर कामवासना ध्यानपूर्ण हो जाए, केवल तभी वहां एक सुगंध होती है जो पीछे छूट जाती है एक अनुभूति, जो कामवासना से पहले का प्रेमप्रणयता, प्रेमक्रीड़ा नहीं होती बल्कि एक परिपक्वता, एक विकास, एक ध्यानपूर्ण संचेतना होती है। इसलिए अगर काम-कृत्य ध्यानपूर्ण हो जाता है, तो तुम प्रेम को अनुभव करोगे। प्रेम, धन्यता, मैत्री और करुणा का संगम है। अगर ये तीनों अनुभूतियों हैं तो तुम प्रेम में हो।

अगर यह प्रेम विकसित होता है तो यह कामवासना का अतिक्रमण कर लेगा। प्रेम कामवासना के माध्यम से विकसित होता है, लेकिन इसके पार चला जाता है। बिलकुल एक फूल की भांति यह जड़ों के माध्यम से आता है, किंतु उनके पार चला जाता है। और यह वापस नहीं लौटेगा, वहां कोई पीछे लौटना नहीं होता है। इसलिए अगर प्रेम विकसित होता है तो वहां पर कामवासना नहीं होगी। वस्तुत: यह इस बात को जानने का उपाय है कि प्रेम विकसित हो गया है। कामवासना अंडे के खोल की भांति है, एक खोल जिसके माध्यम से प्रेम को प्रकट हो जाना है। जिस पल यह प्रकट हो जाता है, खोल वहां और अधिक देर नहीं रहता है। यह तोड़ दिया जाएगा, हटा दिया जाएगा।

कामवासना प्रेम तक सिर्फ तभी पहुंच सकती है, जब ध्यान वहां हो, अन्यथा नहीं। अगर ध्यान वहां नहीं है, तो उसी कामवासना की पुनरावृत्ति होगी और तुम ऊब जाओगे। कामवासना और अधिक जड़तापूर्ण हो जाएगी और तुम एक-दूसरे के प्रति धन्यता अनुभव नहीं करोगे। बल्कि तुम धोखा खाया हुआ अनुभव करोगे, तुम उसके प्रति शत्रुतापूर्ण अनुभव करोगे। वह तुम पर मालकियत करता है। वह कामवासना के माध्यम से मालकियत करता है, क्योंकि यह तुम्हारे लिए आवश्यकता बन चुकी है। तुम गुलाम बन चुके हो, क्योंकि तुम कामवासना के बिना रह नहीं सकते। तुम उसके प्रति कभी मित्रतापूर्ण अनुभव नहीं कर सकते जिसके तुम गुलाम हो गए हो।

और दोनों को यही अनुभव होगा कि दूसरा मालिक है। मालकियत से इनकार किया जाएगा और संघर्ष होगा, लेकिन फिर भी कामवासना की पुनरावृत्ति होगी। यह रोजमर्रा का काम बन जाएगा। तुम अपने कामवासना के साथी के साथ संघर्ष करोगे, और तब चीजों को फिर से व्यवस्थित करोगे। फिर से तुम संघर्ष करोगे, फिर तुम लीपा-पोती करोगे। प्रेम अधिक से अधिक एक समायोजन भर है। तुम मैत्रीपूर्ण अनुभव नहीं कर सकते, वहां कोई करुणा नहीं है। इसके स्थान पर वहां कूरुरता और हिंसा होगी, तुम धोखा खाया हुआ

अनुभव करोगे। तुम गुलाम बन गए हो। कामवासना प्रेम में विकसित न हो सकेगी। यह बस कामवासना ही बनी रहेगी।

कामवासना से होकर गुजरो। इससे भयभीत मत होओ। क्योंकि भय कहीं नहीं ले जाता। अगर तुम्हें किसी बात से डरना है, तो बस भय से ही डरना है। कामवासना से मत डरो। और इससे संघर्ष भी मत करो, क्योंकि यह भी भय का ही एक रूप है, संघर्ष या पलायन-लड़ना या भाग जाना, ये भय के ही दो रास्ते हैं। इसलिए कामवासना से भागो मत, इसके साथ संघर्ष मत करो। इसको स्वीकार कर लो। इसे अपना समझो। इसमें गहरे उतरो, इसे पूरी तरह से जानो, इसे समझो, इसमें ध्यान करो और तुम इसके पार चले जाओगे। जिस पल तुम काम-कृत्य में ध्यान कर सके, एक नया द्वार खुल जाता है। तुम एक नये आयाम में आ जाते हो, एक नितांत अनजाना, एक बिलकुल ही अनसुना आयाम, और इसके माध्यम से एक महत्तर आनंद प्रवाहित होता है।

तुम किसी ऐसी आनंददायक अनुभूति को पा लोगे कि कामवासना अर्थहीन हो जाएगी और यह अपने आप ही शांत हो जाएगी। तुम्हारी ऊर्जा अब इस दिशा में और अधिक नहीं बहेगी। ऊर्जा सदा आनंद की ओर प्रवाहित होती है। क्योंकि कामवासना में आनंद का आभास होता है, ऊर्जा इस ओर बहती है र किंतु अगर तुम अधिक आनंद खोज लो, ऐसा आनंद जो कामवासना का अतिक्रमण करता है, जो कामवासना के पार चला जाता है, ऐसा आनंद जो अधिक तृप्ति दायक, अधिक गहरा और अधिक विराट है—तब ऊर्जा अपने आप ही कामवासना की ओर प्रवाहित होना बंद कर देगी।

जब कामवासना ध्यान हो जाती है तो वह प्रेम में खिल उठती है; और यह खिल उठना दिव्यता की ओर गति करना है। यही कारण है कि प्रेम दिव्य है। कामवासना शारीरिक है, प्रेम आध्यात्मिक है। और यदि प्रेम का पुष्प वहां हो तो प्रार्थना आएगी, यह अनुगमन करेगी। अब तुम दिव्यता से दूर नहीं हो। तुम घर के निकट हो।

अब प्रेम पर ध्यान करना आरंभ करो। यह दूसरा कदम है। जब वहां संवाद का पल हो, जब वहां प्रेम का क्षण हो, ध्यान आरंभ कर दो। इसमें गहरे उतरो, इसके प्रति होशपूर्ण हो जाओ। अब शरीरों का मिलन नहीं हो रहा है। कामवासना में शरीर मिल रहे थे, प्रेम में आत्माएं मिल रही हैं। अभी भी यह एक मिलन है, दो व्यक्तियों के बीच मिलन। अब प्रेम को उसी प्रकार से देखो, जैसे तुमने कामवासना को देखा था। संवाद को, आंतरिक मिलन को, भीतर के संभोग को देखो। तब तुम प्रेम के भी पार चले जाओगे, और तुम प्रार्थना पर आ जाओगे। यह प्रार्थना द्वार है। अभी भी यह मिलन है, लेकिन दो व्यक्तियों का नहीं। यह तुम्हारे और समग्र के मध्य संवाद है। अब दूसरा एक व्यक्ति की भांति नहीं रहा। यह अव्यक्ति की भांति दूसरा है–समग्र अस्तित्व और तुम।

लेकिन प्रार्थना अभी भी मिलन ही है, इसलिए अंतिम चरण में इसका भी अतिक्रमण होना है। प्रार्थना, पूजा करने वाला और पूजित होने वाला अलग-अलग हैं, भक्त और भगवान भिन्न हैं। अभी भी यह एक मिलन है। इसीलिए मीरा या थेरेसा अपनी प्रार्थना के अनुभव में काम संबंधों वाली शब्दावली का प्रयोग कर सकी।

प्रार्थनापूर्ण क्षणों में ध्यान करना चाहिए। दुबारा से इसके साक्षी हो जाओ। अपने और समग्र के मध्य संवाद को देखो। इसके लिए यथासंभव सूक्ष्मतम सजगता की आवश्यकता पड़ती है। अगर तुम अपने और समग्र के मध्य मिलन में सजग रह सके, तब तुम अपने आप का और समग्र का, दोनों का अतिक्रमण कर लेते हो। तब तुम समग्र होते हो। और इस समग्र में कोई द्वैत नहीं है, वहां बस एकता है।

इस एकता की खोज काम के माध्यम से, प्रेम के माध्यम से, प्रार्थना के माध्यम से की जाती है। यही वह एकता है, जिसकी अभीप्सा थी। कामवासना में भी, अभीप्सा इसी एकता के लिए है। आनंद आता है, क्योंकि क्षण भर के लिए तुम एक हो जाते हो। कामवासना गहराती है प्रेम में,–प्रेम गहराता है प्रार्थना में और प्रार्थना गहराती है संपूर्ण अतिक्रमण में, समग्र एकता में।

यह गहराना सदा ध्यान के माध्यम से घटित होता है। विधि सदा वही है। स्तर भिन्न है, आयाम भिन्न हैं, चरण भिन्न है, पर विधि वही है। कामवासना में खोदो और तुम्हें प्रेम मिलेगा। प्रेम में गहरे जाओ और तुम प्रार्थना पर आओगे। प्रार्थना में खोदो और तुम विस्फोटित होकर एक हो जाओगे। यही एकता संपूर्ण है, यही एकता आनंद है, यही एकता समाधि है।

इसलिए संघर्ष का भाव न रखना मूलभूत बात है। प्रत्येक तथ्य में दिव्यता उपस्थित है। यह आवृत हो सकती है यह वस्त्रों से ढंकी हुई हो सकती है, किंतु तुमको इसे अनावृत करना पड़ेगा, इसे उघाड़ना पड़ेगा। तुम्हें और भी सूक्ष्म आवरण मिलेगा। पुन: इसे अनावृत करो। जब तक कि तुम एकता का उसकी पूर्ण नग्न अवस्था में साक्षात न कर लो, तुम्हें संतुष्टि नहीं मिलेगी, तुम्हें तृप्ति की अनुभूति नहीं होगी।

जिस क्षण तुम अनावृत एक, उघाड़े गए एक पर पहुंचते हो, तुम इसके साथ एक हो जाते हो, क्योंकि जब तुम इस नग्न को जानते हो, तो यह कोई और नहीं वरन तुम ही होते हो। वस्तुत: प्रत्येक व्यक्ति दूसरों के माध्यम से अपने आप को खोज रहा है। व्यक्ति को उसका अपना घर, दूसरों के दरवाजों पर दस्तक देकर पाना पड़ता है।

जिस क्षण सच्चाई अनावृत होती है, तुम इसके साथ एक हो जाते हो, क्योंकि यह भेद केवल आवरणों का है। वस्त्र बाधा हैं, इसलिए तुम सच्चाई को तब तक अनावृत नहीं कर सकते जब तक कि तुम अपने आप को अनावृत न कर दो। यही कारण है कि ध्यान दुधारी तलवार है, यह सच्चाई को अनावृत करता है और साथ ही यह तुम्हें भी अनावृत कर देता है। सच्चाई नग्न हो जाती है और तुम भी नग्न हो जाते हो। और परम नग्नता के, परम शून्यता के पल में तुम एक हो जाते हो।

मैं कामवासना के विरोध में नहीं हूं। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि मैं कामवासना के पक्ष में हूं। इसका अभिप्राय यह है कि मैं इसमें भीतर गहरे जाने और इसके पार को उघाड़ने के पक्ष में हूं। यह पार सदा वहां है, किंतु सामान्य कामवासना छुओ और भाग जाओ वाला काम संबंध है, इसलिए कोई इसमें गहरा नहीं उतरता। अगर तुम गहरे उतर सको तो तुम दिव्यता के प्रति आभारी अनुभव करोगे कि कामवासना के माध्यम से एक द्वार खुल गया है। लेकिन अगर कामवासना केवल छूकर भाग जाना है, तो तुम कभी न जान पाओगे कि तुम किसी श्रेष्ठतर के निकट थे।

हम इतने चालाक है कि हमने झूठा प्रेम निर्मित कर लिया है जो कामवासना के बाद नहीं वरन इसके पहले आता है। यह उपजाई हुई नकली चीज है। यही कारण है कि जब कामवासना तृप्त हो जाती है तो हमें लगता है कि प्रेम खो गया है। प्रेम केवल एक भूमिका था, और अब भूमिका की जरूरत न रही। लेकिन असली प्रेम सदा कामवासना के पार है, यह कामवासना के पीछे छिपा है। इसमें गहरे उतर जाओ, इसमें धर्मनिष्ठा से ध्यान करो, और तुम मन की प्रेममयी दशा में खिल उठोगे।

मैं कामवासना के विरोध में नहीं हूं और मैं प्रेम के पक्ष में नहीं हूं। तुमको इसका भी अतिक्रमण करना पड़ेगा। इस पर ध्यान करो, इसके पार चले जाओ। ध्यान से मेरा अभिप्राय है, तुम्हें इससे पूर्ण होश से, जागरूकता पूर्वक गुजरना पड़ेगा। तुम्हें इससे अंधे की तरह से, अचेतन होकर नहीं गुजरना है। वहां अतिशय आनंद है, लेकिन तुम अंधों की तरह वहां से होकर गुजर सकते हो और इससे चूक सकते हो। इस अंधेपन को रूपांतरित किया जाना है, तुम्हें खुली आंख वाला बन जाना चाहिए। खुली आंखों के साथ कामवासना तुम्हें एकता के रास्ते पर ले जा सकती है।

बूंद सागर बन सकती है। यह प्रत्येक बूंद के हृदय की अभिलाषा है। प्रत्येक कृत्य में, प्रत्येक इच्छा में, तुम इसी अभिलाषा को पाओगे। इसको उघाड़ दो, इसका अनुगमन करो। यह एक महत साहसिक अभियान है। जिस प्रकार से हम अपनी जिंदगी आज जीते है, हम अचेतन है। किंतु इतना तो किया ही जा सकता है, कठिन है यह,

पर यह असंभव नहीं है। यह किसी जीसस, किसी बुद्ध, किसी महावीर के लिए संभव हो चुका है, और हरेक दूसरे के लिए संभव है।

जब तुम कामवासना में ऐसी त्वरा के साथ, ऐसी जागरूकता के साथ, ऐसी संवेदनशीलता के साथ उतर जाते हो तो तुम इसका अतिक्रमण कर लोगे। वहां पर किसी तरह का कोई ऊर्ध्वगमन नहीं होगा। जब तुम अतिक्रमण कर लेते हो, तो वहां पर कोई कामवासना, यहां तक कि ऊर्ध्वगमित हो चुकी कामवासना भी नहीं होगी। वहां पर प्रेम, प्रार्थना और एकता होगी।

प्रेम के ये तीन चरण हैं : भौतिक प्रेम, मानसिक प्रेम और आध्यात्मिक प्रेम। और जब इन तीनों का अतिक्रमण हो जाता है, तो वहां पर दिव्यता है। जब जीसस ने कहा : परमात्मा प्रेम है, तो यह उसकी निकटतम संभव परिभाषा है, क्योंकि परमात्मा की ओर जाने वाले पथ पर हम जिस अंतिम चीज को जानते हैं, वह है प्रेम। इसके पार अज्ञात है, और अज्ञात को परिभाषित नहीं किया जा सकता है। हम दिव्यता की ओर अपनी अंतिम अनुभूति, प्रेम के माध्यम से संकेत मात्र कर सकते है। प्रेम के उस बिंदु के पार वहां पर कोई अनुभव नहीं है, क्योंकि वहां पर अनुभव करने वाला नहीं है। बूंद सागर बन गई है। एक-एक कदम चलो, लेकिन मैत्रीभाव के साथ, बिना किसी तनाव के, बिना संघर्ष के। बस जागरूकता के साथ जाओ। जीवन की अंधेरी रात में जागरूकता ही एक मात्र प्रकाश है। इस प्रकाश के साथ, इसमें जाओ। प्रत्येक कोने को देखो और खोजो। हर स्थान पर दिव्यता है, इसलिए किसी चीज के विरोध में मत होओ।

लेकिन किसी वस्तु के साथ रहो भी मत। पार चले जाओ, क्योंकि श्रेष्ठतर आनंद तुम्हारी प्रतीक्षा में है। यात्रा जारी रहनी चाहिए। अगर तुम कामवासना के निकट हो तो कामवासना का उपयोग करो। अगर तुम प्रेम के निकट हो, तो प्रेम का उपयोग कर लो। दमन या ऊर्ध्वगमन की भाषा में मत सोचो, संघर्ष की भाषा में मत सोच विचार करो। दिव्यता किसी भी वस्तु के पीछे छिपी हो सकती है; इसलिए संघर्ष मत करो, किसी चीज से भागो मत। वस्तुत: यह हर चीज के पीछे है। इसलिए तुम जहां कहीं भी हो, निकटतम द्वार को चुन लो और तुम प्रगति कर लोगे। कहीं पर भी रुके मत रहो और तुम पहुंच जाओगे क्योंकि जीवन सब कहीं है।

जीसस ने कहा है प्रत्येक पत्थर के नीचे प्रभु है, किंतु तुम केवल पत्थरों को देखा करते हो। तुम्हें मन की इस पाषाणवत दशा से गुजरना पड़ेगा। जब तुम कामवासना को शत्रु की भांति देखते हो, तो यह पत्थर बन जाती है। तब यह अपारदर्शी हो जाती है, तुम इसके पार नहीं देख सकते हो। इसका उपयोग करो, इस पर ध्यान करो, और पत्थर कांच की भांति हो जाएगा। तुम इसके पार देख लोगे, और तुम कांच को भूल जाओगे। जो कांच के पीछे है वही याद रहेगा।

कोई भी वस्तु जो पारदर्शी हो जाती है, मिट जाएगी। इसलिए कामवासना को पत्थर मत बनाओ, इसे पारदर्शी बनाओ। और ध्यान के द्वारा यह पारदर्शी बन जाती है।

आज इतना ही

चौथा प्रवचन

कुंडलिनी योग : उदगम की ओर वापसी

पहला प्रश्न–ओशो कुंडलिनी क्या है? कुंडलिनी योग क्या है और कुंडलिनी योग पश्चिम की सहायता कैसे कर सकता है? और कुंडलिनी जागरण की आपकी विधियां परंपरागत नियंत्रित विधियों के स्थान पर अराजक क्यों हैं?

अस्तित्व ऊर्जा है ऊर्जा अनेक ढंगों और अनेक रूपों में गति है। जहां तक मनुष्य के अस्तित्व का प्रश्न है कुंडलिनी उनमें से एक है। कुंडलिनी मनुष्य के मनस और मनुष्य के शरीर की केंद्रीभूत ऊर्जा है।

ऊर्जा या तो अप्रकट रह सकती है या प्रकट। यह बीज में रह सकती है, या यह प्रकट रूप में अभिव्यक्त हो सकती है। प्रत्येक ऊर्जा या तो बीज में है या प्रकट रूप में है। कुंडलिनी का अभिप्राय है तुम्हारी समग्र क्षमता, तुम्हारी संपूर्ण संभावना। लेकिन यह बीज नहीं है यह संभावना है। यह साकार हो सकती है लेकिन यह साकार नहीं है। कुंडलिनी पर कार्य करने की विधियां तुम्हारी क्षमता को साकार करने की विधियां हैं।

इसलिए पहली बात, कुंडलिनी कोई अनोखी वस्तु नहीं है। यह तो बस मानवीय ऊर्जा ही है। किंतु आमतौर पर यह सक्रिय नहीं होती, या इसका केवल एक भाग एक बहुत छोटा हिस्सा ही कार्यरत होता है। और यह भाग भी लयबद्धता से कार्य नहीं कर रहाहै, यह संघर्ष में है। यही विषाद है यही संताप है। अगर तुम्हारी ऊर्जा लयबद्धता में कार्य कर सके तो तुम आनंद अनुभव करोगे, किंतु अगर यह संघर्ष में हो– अगर यह स्वयं अपने ही विरोध में हो–तब तुम संताप अनुभव करोगे। समस्त संताप का अर्थ है कि तुम्हारी ऊर्जा संघर्ष में है और सारी प्रसन्नता सारे आनंद का अर्थ है कि तुम्हारी ऊर्जा लयबद्धता में है।

समस्त ऊर्जा मात्र संभावना ही क्यों है, वास्तविक क्यों नहीं है? पहली बात जहां तक दिन प्रतिदिन के जीवन का प्रश्न है, इसकी जरूरत नहीं होती। पूरी क्षमता की आवश्यकता नहीं पड़ती, उसे कोई चुनौती नहीं मिलती, इसकी जरूरत नहीं पड़ती। केवल वह भाग जिसकी जरूरत होती है, चुनौती पाता है और सक्रिय हो जाता है। दिन प्रतिदिन का जीवन इसके लिए चुनौती नहीं है, इसलिए एक बहुत छोटा सा हिस्सा प्रकट हो पाता है। यह भाग भी लयबद्ध नहीं है। यह दोहरे ढंग से संघर्ष में है- एक संघर्ष इसके भीतर है, इसके अंदर ही द्वंद है। यह समग्र नहीं है, क्योंकि तुम्हारा दिन-प्रतिदिन का जीवन समग्र नहीं है।

तुम्हारी आवश्यकताओं में संघर्ष है। जरूरतों में संघर्ष है। तुम्हारा समाज एक चीज की माग करता है तुम्हारी मूल प्रवृत्तियां किसी उलटी चीज बिलकुल विपरीत की मांग करती हैं। सुबह एक चीज की मांग होती है दोपहर के बाद तुम इससे बिलकुल उलटी चीज चाहने लगते हो। तुम्हें अब वही चाहिए...दिन-प्रतिदिन की मांगों में संघर्ष है। समाज की जरूरतों और प्राकृतिक जरूरतों में संघर्ष है। समाज और उसकी जरूरतें, नैतिकता, धर्म और उनकी जरूरतें- वे कभी लयबद्ध समग्रता की खोज में नहीं हैं। वे आंशिक हैं। अपने आप में प्रत्येक बात अर्थपूर्ण है लेकिन मनुष्य की जैविक एकता के संदर्भ में ऐसा नहीं है।

तुम्हारी पत्नी को तुमसे कोई चीज चाहिए तुम्हारी मां को तुमसे इसकी उलटी चीज चाहिए। तब दिन प्रतिदिन का जीवन तुम्हारे लिए परस्पर विरोधी मांग बन जाता है। वह भाग वह छोटा सा भाग जो तुम्हारे भीतर मूर्तमान हो जाता है वह ऊर्जा वह क्षमता जो साकार हो जाती है- खंडित है अपने साथ संघर्ष में है।

संघर्ष और विरोधों का यह एक तल है। दूसरा तल है वह भाग जो प्रकट हो चुका है सदा उस भाग के साथ जो अभी तक प्रकट नहीं हो पाया है संघर्ष में रहेगा, वास्तविक सदा संभावित के साथ संघर्ष में संलग्न रहेगा, क्योंकि संभावित अपने आप को अभिव्यक्त करना चाहेगा, और वास्तविक इसका दमन करेगा।

मनोवैज्ञानिक शब्दों में कहें तो अचेतन सदा चेतन के साथ संघर्ष में रहेगा। चेतन इस पर मालकियत करने का प्रयास करेगा क्योंकि संभावित से और इसकी अभिव्यक्त होने की अभिलाषा से चेतन सदा खतरे में है क्योंकि चेतन सदा नियंत्रित है और संभावित नहीं है अचेतन नियंत्रण में नहीं है। तुम चेतन को व्यवस्थित कर सकते हो, किंतु अचेतन के विस्फोट के साथ तुम असुरक्षित हो जाओगे। तुम इसे सम्हालने योग्य नहीं रहोगे। यही भय है चेतन को यह भय है–छोटा भाग सदा बड़े भाग से जो अचेतन है और जिसको दबा दिया गया है भयभीत है। इसलिए एक और संघर्ष है– और बड़ा और जीवंत और गहरा संघर्ष–यह चेतन और अचेतन के बीच है उस ऊर्जा का जो प्रकट हो चुकी है उस ऊर्जा के साथ संघर्ष जो प्रकट होना चाहती है।

ये दो संघर्ष, इन दो संघर्षों के कारण ही तुम लयबद्ध नहीं हो। और अगर तुम जयबद्ध नहीं हो, तो तुम्हारी ऊर्जाएं तुम्हारी शत्रु बन जाएंगी। ऊर्जा को गति चाहिए और गति सदा अप्रकट से प्रकट की ओर बीज से वृक्ष की ओर होती है। यह सदा अंधकार से प्रकाश की ओर होती है।

ऊर्जा को गति चाहिए और गति केवल तभी संभव है जब कोई दमन न हो। अन्यथा गति लयबद्धता, विनष्ट हो जाती है और तुम्हारी ऊर्जाएं तुम्हारे विरोध में शत्रु हो जाती हैं। तब तुम अपने ही विरोध में बंटे हुए एक घर हो जाते हो तब तुम जैविक इकाई नहीं रहते तुम भीड़ बन जाते हो। तब तुम एक नहीं रहे, तब तुम अनेक हो जाते हो।

मनुष्य के अस्तित्व की यह अवस्था है। इसे ऐसा नहीं होना चाहिए, इसी के कारण इतनी कुरूपता है, और इतना संताप है। सारा आनंद जो संभव है और सारा सौंदर्य जिसकी संभावना है, केवल तभी आ सकते हैं, जब तुम्हारी जीवन ऊर्जा गति में हो और सरल गति में हो विश्रांत गति में हो अदमित अखंडित, समग्र हो, टुकड़ों में बंटी हुई न हो, अपने साथ संघर्ष में न हो, बल्कि एक और संयुक्त, परिपूरक, सहयोगी हो। अगर यह घटित हो जाता है तो यही है जिसे कुंडलिनी कहा जाता है।

अगर तुम्हारी ऊर्जाएं इस लयबद्ध जैविक एकता पर पहुंच जाएं तो योग की परिभाषिक शब्दावली में इसे कुंडलिनी कहा जाता है। यह बस एक तकनीकी शब्द भर है, तुम्हारी सारी ऊर्जाएं बिना किसी संघर्ष के एकता में, गति में लयबद्धता में हैं वे सहयोगी हैं परिपूरक हैं और जीवंत हैं। तब...तभी वहां पर रूपांतरण संभव है—अनूठा और अज्ञात।

जब ऊर्जाएं संघर्ष में होती हैं तो तुम उनसे बस छुटकारा पा लेते हो। जब तुम्हारी संघर्षरत ऊर्जाएं बाहर निकल जाती हैं, तब तुम आराम अनुभव करते हो। लेकिन जब भी तुम उनको बाहर फेंक देते हो, उनसे पीछा छुड़ा लेते हो, तुम्हें शांति मिलती है, तुमको आराम अनुभव होता है। केवल तब जब तुम्हारी ऊर्जाएं बाहर फेंक दी जाती हैं। और जब कभी तुम्हारी ऊर्जाएं बाहर फैंक दी जाती हैं तुम्हारा जीवन, तुम्हारी जीवंतता, तुम्हारी जीवन ऊर्जा अधोगामी या बहिर्गामी होती है–दोनों का अभिप्राय एक ही है।

अधोगामी गति बहिर्गामी गति है। और ऊर्ध्वगामी गति अंतर्गामी गति है। तुम्हारी ऊर्जाएं जितना अधिक ऊपर की ओर जाती हैं वे उतनी ही भीतर की ओर जाती हैं। तुम्हारी ऊर्जाएं जितना अधिक नीचे की ओर जाती हैं उतना ही वे बाहर की ओर जाती हैं। तुम अपनी ऊर्जाओं से केवल तभी छुटकारा पा सकते हो जब कि तुम उनको बाहर फेंक दो। यह बस तुम्हारे खुद के जीवन को बाहर फेंक देना है अपने आप को टुकड़ों में खंडों में किस्तों में फेंकने के समान है। यह आत्मघाती है।

लेकिन जब तक हमारी जीवन-ऊर्जाएं एक और लयबद्ध न हो जाएं और उनका प्रवाह अंतर्गामी न हो हम सभी आत्मघाती हैं। यह उसी प्रकार का है जैसे कि ऊर्ध्वगामी गति क्योंकि अंतर्गामी होना ही ऊर्ध्वगामी होना है जितना अधिक तुम भीतर जाते हो उतना ही अधिक तुम ऊपर जाते हो। ये दो आयाम नहीं है एक ही आयाम है—ऊपर और भीतर और दूसरी दिशा है–नीचे और बाहर। जब तक ऊर्जाएं समग्र नहीं होतीं तुम बस उनको बर्बाद कर रहे हो। लेकिन बर्बाद कर के बर्बादी के द्वारा तुम को राहत महसूस होती है।

निस्संदेह यह राहत क्षणिक ही होगी, क्योंकि तुम ऊर्जाओं के सतत स्रोत हो। वे फिर से आ जाएंगी। तुम एक प्रवाह हो, तुम जीवनी शक्तियों के प्रवाह हो। वे दोबारा आएंगी। वे तुम्हारे भीतर फिर से आ जाएंगी और तुम को उनसे दोबारा छुटकारा पाना पड़ेगा।

इसलिए जिसे हम सामान्यत: सुख के रूप में जानते हैं वह बस संघर्ष कर रही ऊर्जाओं को बाहर फेंक देना है। सुख का अभिप्राय है–तुम एक बोझ से मुक्त हो गए हो। इसलिए सुख सदा नकारात्मक होता है, यह कभी सकारात्मक नहीं होता। आनंद विधायक है। यह केवल तब आता है जब तुम्हारी ऊर्जाएं परितृप्त हों।

जब तुम्हारी ऊर्जाएं बाहर नहीं फेंकी जातीं हैं बल्कि उनमें भीतर की ओर खिलावट होती है, जब तुम अपनी ऊर्जाओं के साथ एक हो जाते हो और उनके साथ संघर्ष में नहीं होते, तब भीतर की ओर गति होती है। यह गति अंतहीन है क्योंकि अंदर की ओर कोई अंत नहीं है। यह गति जारी रहती है गहरी और गहरी और यह जितनी गहरी जाती है, उतनी अधिक आनंदपूर्ण और उतनी अधिक आह्वादपूर्ण होती जाती है।

इसलिए ऊर्जाओं की दो संभावनाएं हो सकती हैं। पहली है बस छुटकारा पा लेना, उन ऊर्जाओं को जो तुम पर बोझ बन गई थीं, जिनका तुम उपयोग नहीं कर सके थे, जिनके साथ तुम सृजनात्मक नहीं हो सकते थे जिनके साथ तुम एक और समग्र नहीं हो सकते थे इसलिए तुम्हें उनको खंडों में फेंकना पड़ेगा। मन की यह अवस्था कुंडलिनी विरोधी है। मनुष्यों की सामान्य दशा कुंडलिनी के प्रतिकूल है। यह ठीक ऐसा ही है कि शक्तियां केंद्र से परिधि की ओर जा रही हैं, यह गति परिधि उन्मुख है। कुंडलिनी का अर्थ इसका बिलकुल उलटा है। यह केंद्र उन्मुख है–शक्तियां परिधि से केंद्र की ओर आ रही हैं।

यह केंद्र कोई अंत नहीं है। केंद्र भी वैसा ही अनंत है, इतना जैसी कि परिधि है। अगर तुम अपनी ऊर्जाओं को बाहर की ओर फेंको तो वे और-और फैलती जाएंगी बाहर और बाहर, और इस विस्तार की कोई सीमा नहीं है। अगर ऊर्जाओं को भीतर की ओर गतिमान कर दिया जाए तो भी वहां कोई अंत नहीं है। लेकिन भीतर जाती हुई ऊर्जा की यह गति, यह केंद्राभिमुख गति आनंदपूर्ण है। बाहर की ओर गति दोनों है यह दोनों अनुभव देती है। क्षण भर के लिए यह प्रसन्नता देती है और स्थायी रूप से संताप। यह एक स्थायी संताप होगा। केवल कुछ अंतरालों में...और यह भी वास्तविक रूप से नहीं, बल्कि केवल तब जब तुम आशा करते हो, तुम अपेक्षा करते हो, तब प्रसन्नता का अंतराल। असली परिणाम तो सदा संताप ही है।

प्रसन्नता के क्षण बस अपेक्षा में आशा में, प्रतीक्षा में चाहत में स्वप्न में होते हैं। और जब तुम अपने बोझ से वास्तव में मुक्त हो गए हो तो मन की यह अवस्था पूरी तरह से नकारात्मक है। वहां प्रसन्नता जैसी कोई बात नहीं है बल्कि यह बस संताप की क्षणिक अनुपस्थिति है। यह अनुपस्थिति प्रसन्नता अल। प्रतीत होती है।

अन्य ऊर्जाएं बाहर की ओर प्रवाहित हो रही होंगी क्योंकि गति सदैव बनी रहती है। तुम्हारी दिशा परिधि की ओर है तो अन्य ऊर्जाएं वहां आ रही होंगी। और तुम अपना खुद का शत्रु पैदा कर रहे हो। तुम लगातार नई ऊर्जाएं पैदा कर रहे हो। जीवन का अर्थ यही है जीवन-शक्ति उत्पन्न करते रहने की क्षमता। जिस पल यह क्षमता चली जाती है तुम मृत हो। इसलिए तुम एक सतत दुविधा हो तुम एक सतत रचनात्मक शक्ति हो। लेकिन यह एक विरोधाभास है तुम ऊर्जा को उत्पन्न किए चले जाते हो और तुम यह नहीं जानते कि इसके

साथ क्या करना है। जब यह निर्मित हो जाती है तुम इसे बाहर फेंक देते हो और जब यह निर्मित नहीं होती तुम पीड़ित अनुभव करते हो तुम बीमार अनुभव करते हो।

जिस पल जीवन-शक्ति निर्मित नहीं होती तुम बीमार अनुभव करते हो, लेकिन जब यह निर्मित होती है, तो पुन: तुम बीमार अनुभव करते हो। पहली बीमारी कमजोरी से आती है और दूसरी बीमारी आती है...उस ऊर्जा से जो तुम पर एक बोझ बन गई है। तुम इस योग्य नहीं थे कि इसे लयबद्ध कर सको इसे सृजनात्मक बना सको इसे आनंददायी बना सको। तुमने इसे निर्मित किया है और अब तुम यह नहीं जानते कि इसका क्या किया जाए, इसलिए तुम इसे बाहर फेंक देते हो बस इससे पीछा छुड़ा लेते हो। और तुम ही इसे निर्मित कर रहे हो। यह असंगत है लेकिन यही वह असंगतता है जिसे हम आम तौर से मानव अस्तित्व समझते हैं लगातार ऊर्जा निर्मित करते रहना और यह लगातार बोझ बनती जाती है। और तब तुम्हें इससे छुटकारा पा लेना पड़ता है।

यही कारण है कि कामवासना इतनी अधिक अर्थपूर्ण, इतनी महत्वपूर्ण हो गई है–क्योंकि यह तुम्हारे लिए ऊर्जा से छुटकारा दिलाने वाला सबसे बड़ा साधन सबसे बड़ा निकास द्वार है। अगर समाज समृद्ध हो जाता है तो तुम्हारे पास ऐसे और अधिक स्रोत हो जाते हैं जिनके माध्यम से ऊर्जा उत्पन्न की जा सकती है। तब तुम और अधिक कामुक हो जाते हो, क्योंकि तब तुम्हें और अधिक ऊर्जा से छुटकारा पाना पड़ता है; इसे लगातार निर्मित करते रहना और फेंकते रहना!

इसलिए अगर कोई व्यक्ति पर्याप्त बुद्धिमान पर्याप्त संवेदनशील है, तो वह इसकी सारी ऊब इसकी असंगता, इसकी सारी अर्थहीनता अनुभव कर लेगा। तब व्यक्ति को जीवन की प्रयोजनहीनता अनुभव में आएगी। क्या तुम ऊर्जा को उत्पन्न करके उसे बाहर फेंक देने वाले बस एक उपकरण हो? तब जीवन का अर्थ क्या है? फिर जीवित रहने की जरूरत ही क्या है? केवल एक उपकरण हो जाना जिसमें ऊर्जा निर्मित होती है एक यांत्रिक उपाय जिसमें ऊर्जा निर्मित की जाती है और बाहर फेंक दी जाती है? इसलिए कोई व्यक्ति जितना संवेदनशील होगा उतना ही वह इस बात को अनुभव करेगा–जीवन, जैसा कि यह है, जैसा कि इसे जीया जाता है, जैसा कि हम इसे जानते हैं, इसकी पूर्णत: अर्थहीनता।

कुंडलिनी का अभिप्राय है इस अर्थहीन स्थिति को अर्थपूर्ण स्थिति में परिवर्तित कर देना। कुंडलिनी का विज्ञान सबसे सूक्ष्म विज्ञानों में से एक है। क्योंकि जहां तक भौतिक विज्ञानों का संबंध है, उनका संबंध भी ऊर्जा से है, लेकिन पौद्गलिक ऊर्जा से मनस ऊर्जा से नहीं। योग का संबंध मनस ऊर्जा से है, जैसी यह है इसी से है। यह पराभौतिक का उसका, जो भौतिक विज्ञान से परे है–मनस ऊर्जा का विज्ञान है।

यह मनस ऊर्जा सृजनात्मक हो सकती है या विध्वंसात्मक हो सकती है। अगर इसका उपयोग न किया जाए तो यह विध्वंसात्मक हो जाती है। अगर इसका उपयोग कर लिया जाए तो यह सृजनात्मक हो जाती है। इसका उपयोग किया जा सकता है और इसे सृजनात्मक बनाया जा सकता है। इसको सृजनात्मक बनाने का उपाय है पहले यह समझ लेना है कि तुम्हें केवल खंड को नहीं जानना है। एक भाग को जान लिया गया है और तुम्हारी संभावना का शेष बचा हुआ वृहत्तर भाग अनजाना रह गया है–तो यह वह स्थिति नहीं है जो सृजनात्मक हो सके।

समग्र को जान लेना चाहिए। तुम्हारी समग्र संभावना को साकार कर लेना चाहिए। इस शेष संभावना को साकार कर लेने के लिए इसे वास्तविक बना देने के लिए इस को जाग्रत कर देने के लिए विधियां हैं। यह सो रही है ठीक वैसे ही जैसे कोई सर्प सो रहा हो। इसीलिए इसका नाम कुंडलिनी. सर्प की शक्ति सोता हुआ सर्प रखा गया है।

अगर तुमने कभी सांप को सोते हुए देखा हो, यह ठीक वैसा होता है जैसे कि मरा हुआ हो। इसमें जरा भी हलचल नहीं होती और यह कुंडलित होता है। तुम कल्पना भी नहीं कर सकते कि कोई सांप खड़ा हो सकता है लेकिन सांप खड़ा हो सकता है। यह अपनी पूंछ पर सीधा लंबवत खड़ा हो सकता है। सांप किसी ऊर्जा-पुंज की भांति खड़ा होता है। यही कारण है कि प्रतीकात्मक रूप से इसका उपयोग किया जाता रहा है। सर्प-शक्ति का प्रतीकात्मक रूप से प्रयोग किया जाता है। तुम्हारी जीवन-ऊर्जा कुंडलित और सुप्त है। किंतु यह खड़ी हो सकती है। और अगर यह अपनी संपूर्ण क्षमता को साकार कर सके जाग सके तो तुम रूपांतरित हो जाओगे।

जीवन और मृत्यु केवल ऊर्जा की दो अवस्थाएं हैं। जीवन का अर्थ है कार्य करती हुई ऊर्जा और मृत्यु का अर्थ है, निष्किय ऊर्जा। जीवन का अर्थ है जागी हुई ऊर्जा और मृत्यु का अर्थ है कि ऊर्जा फिर से सो गई है। इसलिए कुंडलिनी योग के अनुसार सामान्यत: तुम केवल आशिक रूप से जीवित हो। तुम्हारी ऊर्जाओं का एक भाग है जो जीवन में प्रकट हो चुका है। और यह बहुत छोटा भाग ही जीवित है। शेष भाग ऐसा है जैसे कि वह नहीं है।

लेकिन इसको जगाया जा सकता है। और ऐसी बहुत सी विधियां हैं जिनके माध्यम से कुंडलिनी योग संभावना को वास्तविक करने का प्रयास करता है। उदाहरण के लिए प्राणायाम यह उस सोई हुई ऊर्जा पर चोट करके उसे जगाने की विधियों में से एक है। श्वास के द्वारा चोट करना संभव है क्योंकि श्वसन-किया तुम्हारी जीवन-ऊर्जा—तुम्हारे प्राण तुम्हारी जीवंतता का मूलस्रोत–और तुम्हारे वास्तविक अस्तित्व के मध्य एक सेतु है। संभावना और यथार्थ के मध्य श्वास एक सेतु है।

जिस पल तुम अपनी श्वसन-प्रक्रिया बदलते हो तुम्हारा संपूर्ण ऊर्जा-तंत्र बदल जाता है। जब तुम सोए हो तो तुम्हारी श्वास-प्रक्रिया बदल जाती है। जब तुम जागे होते हो तो तुम्हारी श्वास-प्रक्रिया बदल जाती है। जब तुम क्रोधित होते हो तुम्हारी श्वास-प्रक्रिया और ढंग की होती है जब तुम प्रेम में होते हो तुम्हारी श्वास-प्रक्रिया और ढंग की होती है, जब तुम कामवासना के आवेग में होते हो, तुम्हारी श्वास-प्रक्रिया बिलकुल बदल जाती है क्योंकि मन की प्रत्येक भाव-दशा में तुम्हें जीवन-शक्ति की विभिन्न मात्राओं की आवश्यकता पड़ती है, इसलिए तुम्हारी श्वास-प्रक्रिया बदल जाती है।

जब तुम क्रोधित होते हो तो तुम्हें परिधि पर अधिक ऊर्जा की जरूरत पड़ती है। केंद्र से परिधि की ओर तुम्हें अधिक ऊर्जा की आवश्यकता होती है। अगर तुम खतरे में हो, या तुम्हें आक्रमण करना हो या तुम्हें अपने को बचाना हो–सीमाओं पर और अधिक ऊर्जा की आवश्यकता है तब केंद्र से ऊर्जा उस ओर दौड़ पड़ेगी।

यही कारण है कि क्रोध में तुम कांपने लगते हो। तुम्हारी आखें लाल हो जाती हैं। तुम्हारा रक्तचाप बढ़ जाएगा और तुम्हारी श्वास-प्रक्रिया वैसी हो जाएगी...जैसी श्वास-प्रक्रिया से ऊर्जा को केंद्र से परिधि की ओर जाने में मदद मिले। जब तुम कामावेग में होते हो तो तुम्हें ऊर्जा की जरूरत पड़ती है, परिधि की ओर अधिक ऊर्जा की जरूरत पड़ती है। यही कारण है कि कामकृत्य के बाद तुम थका हुआ अनुभव करते हो क्योंकि तुमने अपने शरीर से ऊर्जा की एक बड़ी मात्रा–एक असाधारण मात्रा बाहर फेंक दी है।

क्रोध के बाद भी तुम थकान का अनुभव करोगे। किंतु प्रेम के क्षण के बाद तुम कभी थकान का अनुभव नहीं करोगे, तुम्हें ताजगी अनुभव होगी। प्रार्थनापूर्ण होने के बाद तुम ताजगी का अनुभव करोगे। क्यों? यह विपरीत अनुभव क्यों घटित हुआ? जब तुम प्रेमपूर्ण क्षण में होते हो तो परिधि पर ऊर्जा की कोई आवश्यकता नहीं होती क्योंकि अब वहां पर आक्रमण या बचाव का प्रश्न ही नहीं है। वहां कोई असुरक्षा नहीं है वहां कोई खतरा नहीं है। तुम आराम से हो विश्रांत हो इसलिए ऊर्जा भीतर की ओर प्रवाहित होती है। जब ऊर्जा भीतर की ओर प्रवाहित होती है, तो तुम ताजगी अनुभव करते हो।

गहरी नींद के बाद तुम्हें ताजगी अनुभव होती है, क्योंकि ऊर्जा भीतर की ओर प्रवाहित होती है। जब कभी भी ऊर्जा भीतर की ओर प्रवाहित होती है, तुम्हें जीवंतता अनुभव होती है तुम्हें परितृप्ति अनुभव होती है। तुम्हें एक अच्छापन अनुभव होता है।

और ध्यान देने योग्य एक दूसरी बात जब कभी भी ऊर्जा भीतर की ओर जा रही होती है तुम्हारी श्वास एक अलग प्रकार की गुणवत्ता ग्रहण कर लेगी। यह विश्रांत, शिथिल लयबद्ध, तालबद्ध होगी। और कुछ ऐसे क्षण होंगे जब तुम इसको जरा भी अनुभव न कर पाओगे। कुछ ऐसे क्षण होंगे जब तुम्हें लगेगा जैसे कि यह रुक गई है। यह अति सूक्ष्म हो जाती है, क्योंकि ऊर्जा की आवश्यकता नहीं है इसलिए संपर्क तोड़ दिया गया है। अब ऊर्जा के बहिर्मुखी प्रवाह की आवश्यकता नहीं रही, इसका वह प्रवाह रोक दिया गया है।

समाधि में परमानंद में व्यक्ति को पूरी तरह से रुकेपन की अनुभूति होती है। भीतर की श्वास भीतर ठहर गई है, बाहर की श्वास बाहर ठहरी हुई है–और वहां पर एक अंतराल है। सभी कुछ ठहर गया है। ऊर्जा के किसी बहिर्मुखी प्रवाह की जरूरत नहीं होती, इसलिए श्वास अनावश्यक हो जाती है।

प्राणायाम के द्वारा इस ऊर्जा को जो प्रसुप्त है व्यवस्थित रूप से जगाया जाता है। योगासनों के द्वारा भी कुंडलिनी की संभावना को साकार किया जा सकता है क्योंकि तुम्हारे शरीर की मुद्राएं भी संबंधित हैं। ऊर्जा के स्रोत से तुम्हारा शरीर हर जगह से जुड़ा हुआ है। तुम खड़े होकर सो नहीं सकते– तुम्हें यह कठिन प्रतीत होगा– लेकिन यदि तुम थके हुए हो और बहुत दिनों से सो नहीं पाए हो तो तुम खड़े होकर भी सो सकते हो। लेकिन शीर्षासन की अवस्था में उलटे खड़े होकर तुम नहीं सो सकते। शरीर की यह मुद्रा नींद की विरोधी है, क्योंकि रक्त का प्रवाह मस्तिष्क की ओर हो जाता है। यही कारण है कि नींद के लिए व्यक्ति तकियों का उपयोग करता है और कोई व्यक्ति जितना सभ्य और शिक्षित हो जाएगा उतने ही अधिक तकियों की जरूरत उसको पड़ेगी।

असभ्य आदिवासी लोगों को तकियों की जरूरत नहीं पड़ेगी–क्यों? क्योंकि अगर रक्त का प्रवाह तुम्हारे मस्तिष्क की ओर बना रहे और तुम्हारे मस्तिष्क को सक्रिय रहने की यांत्रिक आदत है और अगर रक्त की आपूइrत जारी रहती है तो यह कार्य करता चला जाएगा। तुम सो नहीं पाओगे। इसलिए तुम मुद्रा को बदल लेते हो। तकिया लगाना तुम्हारी मुद्रा को बदल लेना है। अब तुम्हारा सिर तुम्हारे शरीर के तल के समानांतर नहीं है, और सिर की ओर रक्त का प्रवाह कम हो जाएगा और उसकी सक्रियता समाप्त हो जाएगी।

तुम्हारे शरीर की प्रत्येक मुद्रा ऊर्जा के मूल-स्रोत पर अलग-अलग ढंग से प्रभाव डालती है, इसलिए योग आसनों का उपयोग करता है। उदाहरण के लिए, सिद्धासन, वह मुद्रा जिसे बुद्ध उपयोग करते हैं, पद्मासन है। यह मुद्रा उन मुद्राओं में से है जिनमें ऊर्जा की अल्प मात्रा की आवश्यकता होती है, जीवित रहने के लिए जरूरी थोड़ी सी मात्रा। शरीर की किसी भी और मुद्रा में अधिक ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है। बुद्ध की मुद्रा सबसे कम ऊर्जा उपयोग करने वाली मुद्रा है। अगर तुम सीधे खड़े हो तो तुम अधिक ऊर्जा का उपयोग करते हो। अगर तुम बैठे हुए हो और तुम्हारी पीठ सीधी नहीं है तो तुम अधिक ऊर्जा का उपयोग करते हो क्योंकि गुरुत्व बल का खिंचाव होता है। लेकिन रीढ़ सीधी करके बैठना संतुलित बैठना है तुम पृथ्वी के साथ एक हो जाते हो। वहां पर कोई गुरुत्वीय खिंचाव नहीं होता। और अगर तुम्हारे हाथ और पैर इस स्थिति में हों कि एक वर्तुल निर्मित हो जाए तो जीवन-ऊर्जा जीवन-विद्युत एक वर्तुल में प्रवाहित होगी।

इसलिए बुद्ध की मुद्रा वृत्तीय मुद्रा है। ऊर्जा वृत्तीय हो जाती है यह बाहर नहीं फेंकी जाती है। ऊर्जा सदा हाथों या पैरों की अंगुलियों के माध्यम से बाहर निकलती है। गोल आकारों से ऊर्जा बाहर नहीं निकल सकती है। गोल आकार ऊर्जा के निकास-द्वार नहीं बन सकते हैं। यही कारण है कि स्त्रियों में बीमारी के प्रति अधिक प्रतिरोध-शक्ति होती है, वे थकावट के प्रति अधिक समर्थ हैं और हर प्रकार से वे पुरुषों से अधिक शक्तिशाली हैं।

वे अधिक समय तक जीवित रहती हैं और इसके कारणों में से एक है उनका गोल आकार शरीर का गोल होना–बाहर की ओर कम ऊर्जा बहती है।

जहां तक कामकृत्य का संबंध है तो स्त्रियां कामकृत्य के बाद अपने यौनांग की आकृति के कारण इतना नहीं थकेंगी। यह गोलाकार और गृहणशील है। पुरुष अपने यौनांग की आकृति के कारण अधिक थक जाएगा। अधिक ऊर्जा बाहर फेंक दी गई है—न केवल जीवशास्त्रीय ऊर्जा बल्कि मनस ऊर्जा भी फेंकी गई है।

इसलिए अगर तुम बुद्ध की मुद्रा को देखो तो तुम हैरान हो जाओगे। ऊर्जा के सभी निकास द्वार जुड़े हुए हैं। दोनों पैर आड़े हैं, दोनों हाथ एक पर एक रखे हुए हैं, और हाथ पैरों को छू रहे हैं और पैर कामुकता के केंद्र, काम-केंद्र को स्पर्श करते हैं। बुद्ध की मुद्रा में ऊर्जा के सभी निकास द्वार जुड़ गए हैं–कोई ऊर्जा बाहर की ओर नहीं जा सकती है। और यह मुद्रा सीधी है इसलिए वहां पर कोई गुरुत्वाकर्षण का खिंचाव नहीं है।

और इस मुद्रा में व्यक्ति शरीर को पूरी तरह से भूल सकता है। तुम शरीर को पूरी तरह से केवल उसी समय भूल सकते हो जब कि जीवन-ऊर्जा बाहर की ओर प्रवाहित नहीं हो रही है वरना तुम इसे भूल नहीं सकते। इसलिए व्यक्ति इस मुद्रा में ऊर्जा का वर्तुल बन जाता है और व्यक्ति जीवन को भूल सकता है, व्यक्ति शरीर को पूरी तरह से भूल सकता है। आंखें बंद हैं या आधी बंद हैं क्योंकि आंखें भी मनस ऊर्जा का एक बड़ा निकास द्वार हैं। वे बंद हैं या आधी बंद हैं दोनों ही अवस्थाओं में परिणाम वही होता है आंख की पुतलियों की गति रुकी हुई है। अगर आंख की पुतलियां गतिशील हैं तो ऊर्जा बाहर फेंकी जा रही है।

स्वप्नों में भी तुम आंखों की गतियों के द्वारा काफी ऊर्जा बाहर फेंकते हो। कोई व्यक्ति स्वप्न देख रहा है या नहीं बाहर से ही इस बात को जानने का एकमात्र उपाय है, उसकी आंख की पुतलियों की गति। अगर तुम उसकी आंखों पर अपनी अंगुलियां रख कर देखो और अगर वे गतिशील हैं तो वह स्वप्न देख रहा है। उसको जगा दो और तुम्हें पता लग जाएगा कि वह स्वप्न देख रहा था। अगर आंख की पुतलियां गतिशील नहीं हैं तो वह गहरी निद्रा सुषुप्ति में है। तब सारी ऊर्जाएं भीतर की ओर जा रही हैं कुछ भी बाहर की ओर नहीं जा रहा है। तब सारी प्रक्रिया अंतर्मुखी है।

आसन प्राणायाम और ऐसी बहुत सी दूसरी विधियां हैं जिनके द्वारा ऊर्जाएं भीतर की ओर प्रवाहित कराई जा सकती हैं। जब वे भीतर की ओर प्रवाहित होती हैं तो वे एक हो जाती हैं क्योंकि केंद्र पर वे अनेक नहीं हो सकती हैं। केवल परिधि पर वे अनेक हो सकती हैं। केंद्र पर वे एक और समग्र होने के लिए बाध्य हैं। परिधि पर वे अनेक होंगी। जितनी अधिक ऊर्जा भीतर की ओर जाती है उतनी ही लयबद्धता हो जाती है। आपसी संघर्ष मिट जाते हैं। और केंद्र पर कोई द्वंद्व नहीं होता है। वहां पर समग्रता की जीवंत एकता है। यही कारण है कि आनंद की अनुभूति होती है।

एक और बात ये आसन और प्राणायाम शारीरिक सहायताएं हैं। और वे महत्वपूर्ण हैं और वे अर्थपूर्ण हैं–लेकिन वे मात्र शारीरिक सहायताएं हैं। अगर तुम्हारा मन संघर्ष में है तो वे अधिक सहायता नहीं कर पाएंगे। तुम्हारा शरीर और मन वास्तव में दो चीजें नहीं हैं। तुम्हारा शरीर और मन एक ही चीज के दो ध्रुव हैं। तुम्हारा शरीर और मन ऐसा अलग-अलग नहीं है, शरीर-मन ऐसा इकट्ठा। तुम साइकोसोमैटिक मनोदैहिक या सोमैटिकसाइको, दैहिकमनस हो।

हमारी भाषा दोषपूर्ण है। हम शरीर का प्रयोग किसी भिन्न चीज के रूप में करते हैं और मन का प्रयोग किसी और चीज के रूप में और हम कभी-कभी शरीर को जो 'मन नहीं है' और मन को जो 'शरीर नहीं है' के रूप में परिभाषित करते हैं। संसार में फैले हुए द्वैतवादी दर्शनशास्त्र के कारण यह गलती संसार की सभी भाषाओं में दिखाई देती है। शरीर स्थूल है और मन सूक्ष्म, किंतु ऊर्जा एक ही है।

इसलिए व्यक्ति को दोनों ध्रुवों की ओर से कार्य करना होगा। शरीर की ओर से तुम्हारे लिए हठयोग है. आसन, प्राणायाम आदि क्रियाएं। वे संभावना के साकार हो पाने में सहायता करते हैं। और मन की ओर से तुम्हें राजयोग, और अन्य योगों का उपयोग करना होगा जो मूलत: तुम्हारी मानसिक वृत्तियों से संबंधित हैं।

उदाहरण के लिए, क्रोध की अवस्था में अगर तुम अपनी श्वास को नियंत्रित कर सको तो क्रोध मिट जाएगा। अगर तुम लयबद्धता से श्वास लेते रहो, क्रोध तुम पर हावी नहीं हो सकता है। अगर तुम लयबद्धता से श्वास लेते रहे तो कामवासना तुम पर हावी नहीं हो सकती। यह वहां पर होगी परंतु इसका दमन कर दिया जाएगा, क्योंकि यह केवल भौतिक भाग है। यह मूर्तमान नहीं होगा, इसे कोई नहीं जानेगा तुम स्वयं भी इसे नहीं जान सकोगे। श्वास के माध्यम से यह इतनी दमित हो सकती है। लयबद्ध श्वास के द्वारा तुम क्रोध को इतना अधिक दमित कर सकते हो कि तुम स्वयं भी न जान पाओगे कि यह वहां पर है। लेकिन यह वहां होगा, क्योंकि तुमने इसको अपने अस्तित्व, अपने शरीर के सिर्फ एक भाग के द्वारा नियंत्रित किया है। दूसरा भाग वहीं मौजूद है, अनछुआ।

इसलिए व्यक्ति को दोनों के साथ कार्य करना पड़ता है। शरीर को यौगिक विधि-विज्ञान द्वारा प्रशिक्षित किया जाना चाहिए और मन को सजगता से। और अगर तुम योग का अभ्यास करो तो तुम्हें और सजगता की आवश्यकता होगी क्योंकि चीजें और अधिक सूक्ष्म हो जाएंगी।

अगर तुम क्रोधित हो सामान्यत: तुम इसके प्रति सजग हो सकते हो, क्योंकि यह बहुत कठिन नहीं है क्रोध बहुत स्थूल है। लेकिन अगर तुम प्राणायाम का अभ्यास करते हो तो तुम्हें क्रोध के प्रति सजग होने के लिए अधिक बोध और तीव्र संवेदनशीलता की आवश्यकता होगी क्योंकि अब क्रोध अधिक सूक्ष्म हो जाएगा। क्योंकि एक भाग शरीर जो कि इसे स्थूल बना सकता था इसके साथ सहयोग नहीं कर रहा है इसलिए यह बिना किसी भौतिक अभिव्यक्ति के बस मन का एक ढंग होगा। यह अति सूक्ष्म हो जाएगा।

इसलिए वे लोग जो सजगता का अभ्यास कर रहे हैं अगर वे साथ ही साथ यौगिक विधि-विज्ञान का भी अभ्यास करते हैं तो वे जानेंगे कि सजगता के गहरे आयाम हैं। अन्यथा वे केवल स्थूल के प्रति सजग हो जाएंगे। अगर तुम स्थूल को बदल सको और सूक्ष्म को न बदल पाओ तो तुम दुविधा में एक गहन ऊहापोह में पड़ जाओगे क्योंकि अब संघर्ष अपने आप को एक नये ढंग से प्रकट कर देगा। यह संघर्ष अपने आप को तुम्हारे मन और शरीर के बीच में प्रकट करेगा।

इसलिए योग सहायक है, लेकिन यह सब-कुछ नहीं है यह केवल एक भाग है। दूसरा भाग है मानसिक दृष्टिकोण जिसे बुद्ध ने 'माइंडफुलनेस' सम्यक स्मृति कहा है। योग का अभ्यास करो जिससे शरीर तुम्हारे प्रति शत्रुतापूर्ण न रहे शरीर तुम्हारा विरोधी न रहे, शरीर लयबद्ध हो जाए और तुम्हारा साथ दे। शरीर अंतर उन्मुख गति के साथ सहयोगपूर्ण रहे। तब स्मृति का अभ्यास करो। दोनों को साथ-साथ किया जाना चाहिए। श्वास के प्रति होशपूर्ण हो जाओ। योग में तुम्हें श्वास की प्रक्रिया को बदलना पड़ता है और सजगता में तुम्हें श्वास के प्रति जैसी वह है, होशपूर्ण हो जाना पड़ता है–बस श्वास-प्रक्रिया के प्रति सजगता। अगर तुम श्वास-प्रक्रिया के प्रति सजग हो सको तो तुम अपनी विचार-प्रक्रिया के प्रति भी सजग हो सकते हो, अन्यथा नहीं।

वे लोग जो सीधे ही अपनी विचार-प्रक्रिया के प्रति सजग होने का प्रयास करते हैं, वे उसमें सफल नहीं हो पाएंगे। यह बहुत दूभर होगा, क्योंकि श्वास-प्रक्रिया मन का द्वार है। तुम्हें यह जान कर हैरानी होगी कि अगर तुम अपनी श्वास को एक क्षण के लिए रोक सको, तो तुम्हें दिखेगा कि उसक्षण तुम्हारे विचार भी रुक गए हैं। यहां श्वास-प्रक्रिया रुकी और वहां विचारों की श्रृंखला टूटी। श्वास को रोक दो और विचार रुक जाते हैं विचार-

प्रक्रिया को तेजी से जारी रखो और तुम देखोगे कि श्वास तुरंत ही अराजक पूर्ण हो गई। श्वास-प्रक्रिया तुम्हारी विचार-प्रक्रिया को प्रतिबिंबित करेगी।

पहले श्वास के प्रति होशपूर्ण रहो। बुद्ध कहते हैं 'अनापानसतीयोग' भीतर आती और बाहर जाती श्वास के प्रति सजगता का योग। और वे कहते हैं 'यहां से शुरु करो।' और यही सही शुरुआत है। व्यक्ति को श्वसन-प्रक्रिया से आरंभ करना चाहिए और विचार-प्रक्रिया से कभी नहीं क्योंकि व्यक्ति को स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ना चाहिए। पहले शरीर से आरंभ करो उसके बाद श्वास के प्रति सजगता। जब तुम श्वास के प्रति सजग हो जाते हो और जब तुम श्वास की सूक्ष्म गतियों का अनुभव करते हो, केवल तभी तुम विचार के सूक्ष्म पहलुओं को अनुभव कर पाने में समर्थ हो सकोगे।

विचार-प्रक्रिया के प्रति होश मन की गुणवत्ता को बदल देगा; आसन और प्राणायाम शरीर की गुणवत्ता को बदल देंगे। और वे दोनों लयबद्ध हो जाएंगे और तब एक क्षण आता है जब तुम्हारा शरीर और मन एक हो जाते हैं कोई संघर्ष नहीं है–जरा सा भी संघर्ष नहीं है–जब वे एक हैं तब वे एकाकार होकर गति करते हैं। वे पूरी तरह से एकात्म हुए, लयबद्ध हुए। तब, उस क्षण में तुम न तो शरीर होते हो और न ही मन। एकात्मता के उस क्षण में पहली बार तुम अपने आपको 'स्व' की भांति जानते हो। तुम अतिक्रमण कर जाते हो।

तुम केवल तभी अतिक्रमण कर सकते हो जब कोई संघर्ष न हो; अन्यथा कोई अतिक्रमण न हो सकेगा। इस क्षण, शरीर और मन के इस लयबद्ध क्षण में जब वे दोनों बिना किसी संघर्ष के एक हैं, और ऊर्जा भीतर या ऊपर की ओर आ रही है–तुम दोनों का अतिक्रमण कर लेते हो। तब तुम दोनों नहीं होते। अब तुम कुछ ऐसी चीज हो जो 'वस्तु' है ही नहीं। एक अर्थ में तुम ना–कुछ हो, एक अर्थ में 'कुछ भी नहीं।' अब तुम बस चेतना हो–किसी के प्रति चेतन नहीं, बल्कि केवल चेतना, किसी के प्रति सजगता नहीं बल्कि केवल सजगता।

किसी चीज के प्रति सजग हुए बिना सजगता का यह बोध किसी वस्तु के प्रति चेतन हुए बिना चेतना का यह बोध विस्फोट का क्षण है। तुम्हारी संभावना वास्तविक हो जाती है। तुम एक नये आयाम में परम में विस्फोटित हो जाते हो। यही परम तो सभी धर्मों का गंतव्य है।

और बहुत सारे रास्ते हैं। कोई कुंडलिनी की बात कर सकता है या नहीं भी कर सकता है इससे कोई अंतर नहीं पड़ता है। 'कुंडलिनी' मात्र एक शब्द है। तुम किसी अन्य शब्द का भी प्रयोग कर सकते हो। तुम इसको कोई भी नाम दे सकते हो, इससे जरा भी भेद नहीं पड़ेगा। किंतु कुंडलिनी शब्द से जो इंगित होता है वह तो किसी न किसी भांति वहां पर होगा ही ऊर्जा के अंतर्गामी प्रवाह के रूप में।

यह अंतर्गामी प्रवाह ही एक मात्र क्रांति है, या एक मात्र स्वतंत्रता है। अन्यथा तो तुम और-और नरकों का निर्माण करते चले जाओगे, क्योंकि तुम जितना अधिक बहिर्गामी होते जाओगे उतना ही अधिक तुम अपने आप से दूर होते चले जाओगे। और तुम अपने आप से जितना अधिक दूर होते हो, तुम उतना ही अधिक बीमार और रुग्ण होते हो–क्योंकि सारे जीवन का मूल-स्रोत अनेक उपायों के द्वारा तुमसे असंबद्ध कर दिया गया है। तुम अपने आप के प्रति अजनबी बन जाते हो और तुम यह नहीं जानते कि घर वापस कैसे लौटना है। यह वापस लौटना ही योग का विज्ञान है। और जहां तक मनुष्य के रूपांतरण का संबंध है कुंडलिनी योग सूक्ष्मतम परम विज्ञान है।

और तुमने यह भी पूछा है 'परंपरागत विधियां व्यवस्थित हैं और आपकी विधि अराजक है–ऐसा क्यों है?'

परंपरागत विधियां व्यवस्थित हैं क्योंकि उस समय का व्यक्ति उस समय लोग और वे लोग जिनके लिए उन विधियों को विकसित किया गया था–भिन्न थे।

आधुनिक मनुष्य एक बहुत नवीन घटना है, और किसी भी परंपरागत विधि का, जिस रूप में वह है ठीक उसी रूप में उपयोग नहीं किया जा सकता है, क्योंकि आधुनिक मनुष्य कभी अस्तित्व में था ही नहीं। आधुनिक मनुष्य एक नई घटना है। इसलिए एक प्रकार से तो सारी परंपरागत विधियां असंगत हो चुकी हैं। उनका सार-तत्व असंगत नहीं हुआ है, लेकिन उनका रूप असंगत हो चुका है क्योंकि यह मनुष्य नया है।

उदाहरण के लिए, शरीर काफी बदल चुका है। यह अब उतना प्राकृतिक नहीं रहा जितना यह सदा से था। आज के मनुष्य का शरीर बहुत अप्राकृतिक चीज है। जब पतंजलि ने अपना योग विकसित किया था तब शरीर एक प्राकृतिक घटना था। अब यह प्राकृतिक घटना नहीं है। यह आत्यंतिक रूप से भिन्न है। यह इतना विषाक्त है कि कोई परंपरागत विधि सहायक नहीं हो सकती है।

हठयोगियों के लिए औषधियों को लेने की अनुमति नहीं थी बिलकुल ही नहीं थी, क्योंकि औषधि लेने से हुए रासायनिक परिवर्तन न सिर्फ विधियों को दुष्कर बनाएंगे वरन हानिकारक भी बना देंगे। इसलिए औषधियों का प्रयोग करने की अनुमति नहीं थी, या उनके लिए विशिष्ट औषधियों का विकास किया गया था। अब सारा वातावरण कृत्रिम है वायु प्रदूषित है जल प्रदूषित है समाज में जीने की परिस्थितियां कृत्रिम हैं। कुछ भी प्राकृतिक नहीं है। तुम्हारा जन्म इसी कृत्रिमता में हुआ है तुम इसी में विकसित हुए हो, इसलिए परंपरागत विधियां हानिकारक सिद्ध होंगी। वे जैसी हैं उन्हें वैसा ही उपयोग नहीं किया जा सकता। उनको आधुनिक परिस्थिति के अनुसार परिवर्तित करना ही पड़ेगा।

एक और बात मन की गुणवत्ता मूलत: बदल चुकी है। पतंजलि के दिनों में, पुराने समय में मनुष्य के व्यक्तित्व का केंद्र मस्तिष्क नहीं था, यह हृदय था। और उससे भी पहले यह हृदय भी नहीं था। यह और नीचे था, नाभि के पास। पतंजलि-पूर्व के समय में पतंजलि से पेहले यह नाभि था–मनुष्य के व्यक्तित्व का केंद्र। इसलिए हठयोग ने उन विधियों का विकास किया जो उस व्यक्ति के लिए अर्थपूर्ण, महत्वपूर्ण थीं, जिसके व्यक्तित्व का केंद्र नाभि था। फिर व्यक्तित्व का केंद्र हृदय हो गया। जब केंद्र हृदय होता है तब केवल भक्ति-योग का उपयोग किया जा सकता है, वरना नहीं। इसलिए मध्य-काल में भक्ति-योग विकसित हुआ- इसके पहले नहीं, क्योंकि केंद्र बदल गया था। और विधि को उन लोगों के अनुसार बदल देना पड़ता है, जिनके लिए इसे प्रयुक्त किया जाना है।

अब भक्ति-योग भी अर्थपूर्ण नहीं रहा है। मुख्य केंद्र अब नाभि से और अधिक दूर हो गया है। अब यह केंद्र मस्तिष्क है। यही कारण है कि कृष्णमूर्ति जैसे लोगों की शिक्षाएं आकर्षित करती हैं क्योंकि केंद्र मस्तिष्क है। अन्यथा उनमें कोई आकर्षण न होता उनमें जरा भी आकर्षण नहीं होता। अब किसी विधि की जरूरत नहीं है, किसी भी उपाय की जरूरत नहीं है, केवल समझ की आवश्यकता है। लेकिन जब हम कहते हैं, 'समझ,' तो यह बौद्धिक बन जाती है और कुछ भी नहीं। यह केवल शाब्दिक समझ है। इससे कोई परिवर्तन नहीं होता, इससे कोई रूपांतरण नहीं होता। फिर से यह जानकारी का संग्रह बन जाता है। फिर से यह स्मृति बन जाता है।

इसीलिए मैं व्यवस्थित विधियों का उपयोग नहीं करता हूं बल्कि अराजक विधियां प्रयोग करता हूं। इस केंद्र को मस्तिष्क से नीचे धकेलने के लिए अराजक विधियां बहुत सहायक होती हैं। किसी भी व्यवस्थित विधि के द्वारा इस केंद्र को मस्तिष्क से नीचे नहीं धकेला जा सकता है क्योंकि व्यवस्थित करना ही मस्तिष्क का कार्य है। तुम हर चीज को मस्तिष्क के माध्यम से व्यवस्थित करते हो। इसलिए अगर तुम व्यवस्थित विधियों का उपयोग करोगे तो मस्तिष्क और अधिक शक्तिशाली हो जाएगा। यह ऊर्जा को अपने में समा लेगा।

इसलिए मैं अराजक विधियों का उपयोग करता हूं क्योंकि अराजक विधियों के माध्यम से मस्तिष्क को शून्य कर दिया जाता है। इसके पास करने के लिए कुछ भी नहीं होता। न तो किसी व्यवस्था का निर्माण करना

है और न ही किसी गणितीय सूत्र का उपयोग करना है। यह विधि इतनी अराजकपर्णू है कि केंद्र मस्तिष्क से हट कर स्वत: हृदय की ओर धकेल दिया जाता है–और यह एक बड़ा कदम है–केंद्र को मस्तिष्क से हृदय की ओर धकेल देना। इसलिए अगर तुम मेरी ध्यान-विधि को पूरी ताकत से अव्यवस्थित रूप से, अराजकता पूर्वक करो तो तुम्हारा केंद्र नीचे धकेल दिया जाता है। तुम हृदय पर आ जाते हो।

जब तुम हृदय पर आ जाते हो तो मैं रेचन का उपयोग करता हूं- क्योंकि तुम्हारा हृदय तुम्हारे मस्तिष्क के कारण बहुत दमित है। तुम्हारे मस्तिष्क ने तुम्हारे भीतर का इतना अधिक क्षेत्र घेर रखा है यह तुम्हारे ऊपर इतना अधिक हावी है कि इसने सभी कुछ पर मालकियत कर ली है। हृदय के लिए कोई भी स्थान नहीं बचा है इसलिए हृदय की अभीप्साए दमित हो गई हैं। तुम कभी हृदयपूर्वक नहीं हंसे हो, तुम कभी हृदयपूर्वक नहीं रोए हो, तुमने हृदयपूर्वक कभी कोई कार्य नहीं किया है। मस्तिष्क सदा ही चीजों को व्यवस्थित करने, उन्हें गणितीय बना देने के लिए आ जाता है। मस्तिष्क हिसाब लगाता है, निष्कर्ष निकालता है और हावी हो जाता है। हृदय दमित हो जाता है।

इसलिए पहली बात अराजक विधियों का उपयोग केंद्र को, चेतना के केंद्र को, मस्तिष्क से हृदय की ओर धकेलने के लिए किया जाता है। तब हृदय को भार-मुक्त करने के लिए दमित भावनाओं को निकाल फेंकने के लिए, इसे हलका करने के लिए रेचन की जरूरत पड़ती है। अगर हृदय हलका और निभार हो जाता है तब चेतना के केंद्र को और नीचे खिसका दिया जाता है यह नाभि पर आ जाता है। और केवल तब जब यह नाभि पर आ जाता है तब मैं तुमसे खोज करने के लिए कहूंगा मैं कौन हूं? वरना यह अर्थहीन है। रमण महर्षि की विधि बहुत सफल नहीं हो सकती है क्योंकि वे सीधे ही पूछ लिया करते थे मैं कौन हूं? तब मस्तिष्क पूछता है मैं कौन हूं? बुद्धि पूछती है मैं कौन हूं? और बुद्धि बहुत चालाक है, यह पूछती है और यह उत्तर दे देती है। यह पूछती है मैं कौन हूं? फिर वहां उत्तर आता है जो स्मृति में पहले से ही था मैं आत्मा हूं मैं ब्रह्म हूं-। मस्तिष्क उत्तर दे देता है। यह दोनों कार्य करता है। यह दोनों ओर से खेल खेलता है–और यह असंगत है, यह सहायता नहीं बन सकता है।

रमण इस विधि के द्वारा उपलब्ध कर सके क्योंकि उनकी चेतना का केंद्र नाभि पर था और यह कभी भी मस्तिष्क नहीं था। वे मस्तिष्क वाले व्यक्ति नहीं थे। एक अर्थ में वे प्राचीनतम व्यक्तियों में से एक थे- पुरातनों में से एक। वे इस शताब्दी के नहीं थे। वे हमारे लिए समकालीन नहीं थे। उनका केंद्र नाभि थी, लेकिन वे...अगर वे दूसरों से कहते कि पूछो मैं कौन हूं? तो यह अर्थहीन हो जाता है क्योंकि केंद्र भिन्न है। वे लोग मस्तिष्क के माध्यम से पूछेंगे और स्वयं को मस्तिष्क के माध्यम से उत्तर दे देंगे।

केवल उस समय जब तुम्हारी चेतना नाभि पर हो और तुम पूछो मैं कौन हूं? तो मस्तिष्क कभी उसका उत्तर नहीं दे पाएगा। यह हृदय को पार नहीं कर सकता है। यह नाभि तक नहीं आ सकता है, इसके पास ऐसा कोई रास्ता नहीं है। इसलिए अगर चेतना नाभि पर हो और तुम पूछो? मैं कौन हूं? तब वहां पर प्रश्न होगा और कोई उत्तर नहीं होगा। तब यह प्रश्न गहराई में जाएगा और गहरे और गहरे प्रविष्ट होता जाएगा और एक क्षण आता है, जब प्रश्न स्वत: ही गिर जाता है। यह नहीं बचता। जब प्रश्न नहीं बचता है, तो उत्तर है। प्रश्न और उत्तर दोनों साथ-साथ नहीं होते हैं। अगर वे दोनों साथ-साथ हों–कि यह रहा सवाल और यह रहा जवाब- तो यह मस्तिष्क का कार्य है। अगर प्रश्न मिट चुका है अब नहीं बचा है और उत्तर आता है तो यह नाभि का कार्य है।

अब यह बिलकुल अलग बात है। यह उत्तर स्रोत से आया है- जीवंतता के स्रोत से–और नाभि जीवंतता का स्रोत है। यह स्रोत है। यह मूल-स्रोत है जिससे प्रत्येक चीज आती है : शरीर, मन और सभी कुछ।

इसलिए मैं इस अराजक विधि का उपयोग बहुत विचार कर के अर्थपूर्ण ढंग से करता हूं। अब व्यवस्थित विधि-विज्ञान सहायता नहीं करेगा, क्योंकि मस्तिष्क इस को अपने स्वयं के उपकरण के रूप में परिवर्तित कर लेगा। अब केवल भजन-कीर्तन से सहायता नहीं मिलेगी क्योंकि हृदय इतना बोझिल हो चुका है कि यह सम्यक कीर्तन में खिल नहीं सकता, यह खिल ही नहीं सकता है। कीर्तन इसके लिए बस एक पलायन हो सकता है, प्रार्थना भी एक पलायन बन सकती है। यह प्रार्थना में नहीं खिल सकता है, हृदय प्रार्थना में नहीं खिल सकता है, क्योंकि यह बहुत बोझिल है। यह इतना अधिक दमित है कि प्रमाणिक प्रार्थना की भाव-दशा अब असंभव हो चुकी है। मैंने कोई भी ऐसा नहीं देखा जो प्रामाणिक प्रार्थना में गहरा जा सकता हो, क्योंकि प्रेम स्वयं भी असंभव हो चुका है।

चेतना को स्रोत तक जड़ों तक नीचे धकेलना पड़ेगा। केवल तब ही रूपांतरण की संभावना है। इसलिए मैं चेतना को मस्तिष्क से नीचे धकेलने के लिए अराजक विधियों का उपयोग करता हूं। और तुम जब कभी भी अराजकता में होते हो, तो मस्तिष्क कार्य करना बंद कर देता है। यह कार्य कर ही नहीं सकता है।

जब भी तुम अराजकता में होते हो, मस्तिष्क रुक जाता है। तुम कार चला रहे हो और अचानक कोई तुम्हारे सामने आ जाता है। तुम इतनी तेजी से ब्रेक लगाते हो कि यह मस्तिष्क का कार्य हो ही नहीं सकता। ऐसा नहीं हो सकता है क्योंकि मस्तिष्क समय लेता है। यह सोच-विचार करता है क्या करना है और क्या नहीं करना है। इसलिए जब भी दुर्घटना की संभावना होती है और तुम ब्रेक लगाते हो तुम्हें अपनी नाभि के निकट संवेदना महसूस होती है मस्तिष्क के निकट कभी संवेदना नहीं होती। तुम्हें ऐसा लगता है कि तुम्हारे पेट में कुछ गड़बड़ी है क्योंकि सारी चेतना इस अचानक आई दुर्घटना के कारण नाभि पर धकेल दी गई है। अगर पहले से ही इसकी गणना कर ली गई होती और इसका पूर्व अनुमान हो गया होता तो यह सब न होता तब इसकी जरूरत ही न पड़ती। मन सम्हाल लेता, मस्तिष्क सब ठीक कर लेता। जब कभी भी तुम अनजानी परिस्थिति में दुर्घटना में होते हो तुम्हारे साथ कुछ अज्ञात घटित होता है तब तुम देखोगे कि चेतना नाभि पर आ जाती है।

अगर तुम किसी झेन साधु से पूछो. 'आप कहां से सोचते हैं?' तो वह अपना हाथ पेट पर रख देगा। पश्चिमी लोग जब पहली बार जापानी साधुओं के संपर्क में आए तो वे इसे समझ नहीं सके 'क्या छूता है! पेट से तुम कैसे सोच सकते हो? पेट से कोई भी नहीं सोच सकता है।' लेकिन झेन उत्तर अर्थपूर्ण है। चेतना शरीर के किसी भी केंद्र का उपयोग कर सकती है, और मूल-स्रोत के सर्वाधिक निकट और सर्वाधिक प्राथमिक केंद्र नाभि है। और वह मस्तिष्क से सर्वाधिक दूर भी है इसलिए अगर जीवन-ऊर्जा बाहर की ओर जा रही है तो अंतिम रूप से चेतना का केंद्र मस्तिष्क हो जाएगा। अगर जीवन ऊर्जा भीतर की ओर जाती है तो अंतत: नाभि चेतना का केंद्र बन जाएगी।

यही कारण है कि मैं चेतना को इसकी जड़ों तक धकेलने के लिए रेचक तकनीक के साथ अराजक विधि का उपयोग करता हूं क्योंकि रूपांतरण केवल जड़ों के द्वारा ही संभव है। अन्यथा तुम केवल शब्दीकरण करोगे और शब्दीकरण करते चले जाओगे और वहां पर कोई रूपांतरण कोई परिवर्तन नहीं होगा। अगर तुम यह जान भी लो कि सही बात क्या है तुम रूपांतरित नहीं हो जाओगे क्योंकि सही बातों को जान लेना ही पर्याप्त नहीं है। व्यक्ति को जड़ों तक जाना पड़ता है और व्यक्ति को जड़ों को रूपांतरित और परिवर्तित करना पड़ता है, अन्यथा तुम नहीं बदलोगे।

और कभी-कभी कोई व्यक्ति और अधिक कठिनाई में पड़ जाता है जब उसे सही बात पता होती है और वह कुछ कर नहीं पाता है। उसके भीतर एक नया अधैर्य, एक नया तनाव उठ खड़ा होता है–वह दोगुना तनावग्रस्त हो जाता है। वह समझता है और वह कर नहीं सकता। समझ तभी अर्थपूर्ण हो सकती है, जब तुम

नाभि से समझो। अन्यथा यह कभी अर्थपूर्ण नहीं होती। अगर तुम मस्तिष्क से समझो, तो यह रूपांतरण नहीं कर सकती है।

वह परम वह मौलिक वह आतरिक मस्तिष्कीय कार्य के माध्यम से नहीं जाना जा सकता है क्योंकि परम के साथ तुम अपनी जड़ों के माध्यम से, जहां से तुम आए हो उनके माध्यम से संबंधित हो। तुम्हारी सारी समस्या यही है कि तुम नाभि से दूर चले गए हो। तुम नाभि के माध्यम से आए हो और तुम्हारी मृत्यु इसी के माध्यम से होगी। तुम उस द्वार से आए थे और तुम उसी द्वार से होकर गुजरोगे। व्यक्ति को उसी द्वार पर आना पड़ता है। और जब तुम जड़ों पर आ जाते हो तो परिवर्तन होने में जरा भी कठिनाई नहीं होती। परिवर्तन सरल है। लेकिन जड़ों पर लौटना कठिन और दुष्कर है।

कुंडलिनी जीवन-ऊर्जा और इसके अंतर्गामी प्रवाह से और यह शरीर और मन की उन विधियों से संबंधित है जो उन दोनों को उस बिंदु, संश्लेषण के उस क्षण पर ले आए, जहां से अतिक्रमण संभव हो जाता है। तब शरीर भिन्न होता है मन भिन्न होता है, दृष्टिकोण भिन्न होता है। जीवन-शैली भिन्न होती है।

यह उसी तरह से है जैसे कि कोई चीज बैलगाड़ी की भांति उपयोगी है लेकिन अब बैलगाड़ी की आवश्यकता नहीं है। तुम अब कार चला रहे हो, लेकिन वह बैलगाड़ी–उसको चलाने की तरकीबें उसके उपकरण–वे सभी तुम याद रखे हुए हो। अब बैलगाड़ी विदा हो चुकी है लेकिन स्मृति का सातत्य बना हुआ है। तुम अपनी कार में बैलगाड़ी का कोई भी सामान प्रयोग नहीं कर सकते हो। इसका यह अभिप्राय नहीं है कि वह सामान बैलगाड़ी में उपयोगी नहीं था, उसका उपयोग बैलगाड़ी में हुआ था और वहां पर वह सहायक भी था– यह गलत नहीं था। लेकिन यह सामान कार के साथ असंगत है।

इसलिए एक कठिनाई है परंपरागत विधियां हैं उनमें एक आकर्षण है क्योंकि वे इतनी प्राचीन और पुरातन हैं- उनके साथ परंपरा है अनेक लोगों को उनके माध्यम से ज्ञान उपलब्ध हुआ है। इसका श्रेय उनको मिलता है। तुम परंपरागत विधियों से इनकार कर सकते हो लेकिन तुम बुद्ध के बुद्धत्व से इनकार नहीं कर सकते। तुम पतंजलि और उनकी स्वतंत्रता से इनकार नहीं कर सकते तुम कृष्ण और उनके ज्ञान से इनकार नहीं कर सकते। परंपरागत विधियां हमारे लिए असंगत हो गई हैं, लेकिन वे बुद्ध के लिए या महावीर के लिए या कृष्ण के लिए असंगत नहीं थीं। वे अर्थपूर्ण थीं उनका प्रयोग किया गया था, वे सहायक थीं। अब बुद्ध को और उनके बुद्धत्व को नकारा नहीं जा सकता है लेकिन विधि अब अर्थहीन है। उस विधि में आकर्षण है क्योंकि बुद्ध से इनकार नहीं किया जा सकता है- अगर बुद्ध को इस विधि के माध्यम से उपलब्ध हो गया, तो हमें क्यों नहीं मिलेगा? हमें भी मिल सकता था, लेकिन एक अलग परिस्थिति में– पूर्णत: भिन्न अवस्था में।

मन का सारा क्षेत्र, विचारों का सारा परिवेश बदल चुका है। इसलिए परंपरावादी, पुरातनपंथी कहेगा बुद्ध को इस विधि या उस विधि से बोध प्राप्त हो गया था तो हमें क्यों नहीं मिल सकता है? यह विधि सही है। यह भ्रांति विधि में नहीं है बुद्ध में नहीं है बल्कि इस परंपरावादी मन में है। यह मन इस बात को नहीं देख रहा है कि सारी परिस्थिति बदल चुकी है और प्रत्येक विधि किसी विशेष परिस्थिति किसी विशेष मन और किसी विशेष व्यक्ति को रास आती है।

दूसरा अनुभव–वह जो कृष्णमूर्ति का है। वे विधियों से इनकार कर देंगे। और विधियों को इनकार करने के लिए वे बुद्ध और बुद्धत्व से भी इनकार कर देंगे। यह उसी सिक्के का दूसरा पहलू है। यदि तुम बुद्ध के बुद्धत्व से इनकार न करो तो तुम विधि से इनकार नहीं कर सकते हो। यह परंपरावादी दृष्टिकोण है। अगर तुम विधि से इनकार करते हो तो तुम्हें बुद्ध के बुद्धत्व से भी इनकार करना पड़ता है। यह गलत है–उतना ही गलत है जितना कि पहला दृष्टिकोण।

अतियां हमेशा गलत होती हैं। तुम किसी झूठी बात को, उसके विषय में एक अतिवादी दृष्टि अपना कर नष्ट नहीं कर सकते क्योंकि विपरीत अति अब भी झूठ ही होगी। यह सदा मध्यम अवस्था है जहां पर सत्य होता है। यह न तो परंपरावादी है...और अगर यह परंपरावादी नहीं है तो यह क्रांतिकारी भी नहीं हो सकता है। यह सदा दो अतियों का मध्य–बिंदु है जहां सत्य हुआ करता है बिलकुल ठीक मध्य का बिंदु ही सदा अतिक्रमण का बिंदु होता है।

इसलिए मेरे लिए विधियां बदल जाएंगी। यहां तक कि अविधि भी एक विधि है। यह भी किसी के लिए उपयोगी हो सकती है। यह संभव है कि किसी व्यक्ति के लिए सिर्फ अविधि ही विधि हो। किसी विशेष परिस्थिति में विधि जैसी कि यह है हानिकारक हो जाएगी, लेकिन ऐसा किसी खास व्यक्ति के संदर्भ में ही होता है, यह कोई सर्वमान्य नियम नहीं है। और जब कभी सत्यों का सामान्यीकरण किया जाता है तो वे झूठे हो जाते हैं। प्रत्येक व्यक्ति एक विशेष व्यक्ति है और कोई व्यक्ति किसी और जैसा नहीं है। इसलिए जब कभी भी किसी चीज का प्रयोग किया जाना है या कोई बात कही जानी है तो वह सदा किसी व्यक्ति विशेष से उसकी परिस्थिति से उसके मन से और उसी से संबंधित होती है किसी अन्य से नहीं।

यह भी आजकल एक कठिनाई बन गई है क्योंकि पुराने दिनों में यह एक से एक का संबंध था– आध्यात्मिक खोज में सदा एक से एक का संबंध था। यह शिक्षक और शिष्य के मध्य एक व्यक्तिगत संबंध और व्यक्तिगत संवाद था।

आजकल ऐसा नहीं है। यह सदा अव्यक्तिगत है। व्यक्ति को भीड़ से बोलना पड़ता है इसलिए उसे सामान्यीकरण करना पड़ता है। और सामान्यीकरण किया हुआ सत्य झूठ हो जाता है। यह सदा किसी विशेष व्यक्ति के लिए अर्थपूर्ण होता है। और मैं इस कठिनाई का सामना रोज करता हूं। अगर तुम मेरे पास आते हो और अगर तुम मुझसे कुछ पूछते हो, तो मैं तुम्हीं को उत्तर देता हूं और किसी को नहीं। किसी और समय पर कोई दूसरा मुझसे कुछ पूछता है और मैं उसी को उत्तर देता हूं किसी और को नहीं। और ये दो उत्तर विरोधाभासी भी हो सकते हैं। क्योंकि ये दो व्यक्ति जिन्होंने पूछा था, विरोधाभासी भी हो सकते हैं।

इसलिए अगर मुझे तुम्हारी सहायता करनी है तो मुझे विशिष्ट होना पड़ता है। और अगर मुझे विशिष्ट होना है तो मुझे विपरीत बातें बोलनी पड़ेगी। केवल वही व्यक्ति जो सर्व-सामान्य से बोल रहा हो एक सी बात कह सकता है लेकिन तब सत्य झूठ हो जाता है। प्रत्येक कथन के सत्य होने के लिए इसका किसी व्यक्ति विशेष को संबोधित होना जरूरी है यह व्यक्ति से संबंधित है।

जैसा कि मैं इस परिस्थिति को देखता हूं आधुनिक मनुष्य काफी कुछ बदल चुका है। उसको नये की जरूरत है नई विधियां, नई तकनीकें। निस्संदेह सत्य सदा शाश्वत है–यह न कभी नया है न कभी पुराना–लेकिन सत्य अनुभूति है साध्य है। साधन सदा किसी विशेष व्यक्ति विशेष मन विशेष अभिरुचि के संदर्भ में संगत या असंगत होते हैं। अराजक विधियां आधुनिक मनुष्य की सहायता करेंगी क्योंकि आधुनिक मन स्वयं में ही अराजक हुआ जा रहा है। वह–वह उपद्रव आधुनिक मनुष्य की विद्रोह की वह भावना–यह वस्तुत: शरीर के अन्य केंद्रों का उसके होने के उसके बीइंग के अन्य केंद्रों का विद्रोह है जिनका अत्यधिक दमन कर दिया गया है। आधुनिक मनुष्य का विद्रोह मस्तिष्क के विरुद्ध हृदय और नाभि का विद्रोह है। अगर तुम इसे योग के संदर्भ में समझो तो आधुनिक विद्रोह मस्तिष्क के विरोध में है।

मस्तिष्क ने मनुष्य की आत्मा के समस्त क्षेत्र पर कब्जा कर लिया है। इसने एकाधिकार कर रखा है। अब इसे और अधिक सहन नहीं किया जा सकता है। यही कारण है कि विश्वविद्यालय विद्रोह के केंद्र बन चुके हैं। यह आकस्मिक नहीं है। आने वाले दिनों में विश्वविद्यालय विद्रोह के केंद्र बन जाएंगे क्योंकि वे मस्तिष्क के केंद्र हैं।

विश्वविद्यालयों को नष्ट कर दिया जाए, यह भी संभव है–तथा यह और-और संभव होता जा रहा है–क्योंकि वे मस्तिष्क के केंद्र हैं। समाज में विश्वविद्यालय मस्तिष्क है तुम्हारे शरीर में मस्तिष्क विश्वविद्यालय है। वे एक-दूसरे से संबंधित हैं।

अगर पूरे समाज को एक जैविक इकाई एक पूरा शरीर माना जाए तो विश्वविद्यालय सिर हैं मस्तिष्क हैं। आधुनिक मन अराजकता की ओर उन्मुख रहने के लिए बाध्य है और अराजक विधियां सहायक होंगी। वे दो प्रकार से सहायक होंगी। एक वे चेतना के केंद्र को रूपांतरित कर देंगी। और दो वे तुम्हारे भीतर से विद्रोह को बाहर निकाल देंगी। अगर मेरी विधि का प्रयोग किया जाता है तो वह व्यक्ति कभी विद्रोही नहीं होगा, क्योंकि विद्रोह का कारण परितृप्त हो जाता है। वह विश्वविद्यालय को नष्ट नहीं करेगा क्योंकि चेतना का केंद्र भीतर चला गया है। अब उसे कोई दुर्भावना महसूस नहीं होगी। वह विश्रांति में है।

इसलिए मेरे लिए ध्यान न केवल व्यक्ति के लिए मुक्ति है–व्यक्ति का रूपांतरण है–बल्कि इसका बड़ा महत्व है। यह सारे समाज के जैसी कि मनुष्य-जाति इस समय है उसके रूपांतरण के लिए आधारभूत कार्य कर सकता है। मनुष्य को या तो आत्मघात कर लेना पडेगा या उसे स्वयं को रूपांतरित करना पडेगा।

आज इतना ही।

पांचवां प्रवचन

गुहा के खेल विकास में अवरोध

ओशो क्या शरीर और मन पदार्थ और चेतना भौतिक और आध्यात्मिकता के बीच कोई विभाजन है? आध्यात्मिक चेतना को उपलब्ध करने के लिए कोई शरीर और मन का अतिक्रमण कैसे कर सकता है?

पहली बात तो यह समझ लेनी है कि शरीर और मन के बीच का विभाजन आत्यंतिक रूप से झूठ है। अगर तुम इस विभाजन से आरंभ करते हो तो कहीं नहीं पहुंचोगे; क्योंकि झूठा आरंभ कहीं नहीं ले जाता है। इससे कुछ नहीं आ सकता है क्योंकि प्रत्येक कदम के विकसित होने का अपना गणित है। दूसरा कदम पहले से आएगा, और तीसरा दूसरे से, और ऐसा ही होता चला जाएगा। यह एक तार्किक श्रृंखला है। इसलिए जिस पल तुम पहला कदम उठाते हो तुमने एक प्रकार से सब-कुछ चुन लिया है।

पहला कदम अंतिम से अधिक महत्वपूर्ण है आरंभ अंत की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण है। क्योंकि अंत तो बस एक परिणाम है, एक विकास है। लेकिन हम सदा अंत के बारे में उत्सुक होते हैं आरंभ के बारे में कभी नहीं। हम सदा साध्य में रुचि रखते हैं, साधन में कभी नहीं। अंत हमारे लिए इतना महत्वपूर्ण हो गया है कि हम बीज के, प्रारंभ के पथ से ही चूक जाते हैं। तब हम सपने देखते रह सकते हैं लेकिन हम वास्तविक पर कभी नहीं पहुंचेंगे।

किसी खोजी के लिए विभाजित व्यक्ति की यह धारणा, दोहरे अस्तित्व की यह धारणा–शरीर और मन का द्वैत भौतिक और आध्यात्मिक का द्वैत–एक झूठा कदम है। अस्तित्व अविभाजित है सारे विभाजन बस मानसिक हैं। मन के देखने का वह तरीका, जिससे वह वस्तुओं को देखता है द्वैत निर्मित करता है। यह मन का कारागृह है जो बांट देता है।

मन और कुछ कर भी नहीं सकता। दो विरोधाभासों के एक होने का दो विपरीत ध्रुवीयताओं के एक होने का अनुमान लगाना भी मन के लिए कठिन है। मन के लिए यह एक अनिवार्यता है बाध्यता है कि वह तर्क संगत रहे। वह यह कल्पना ही नहीं कर सकता कि प्रकाश और अंधकार कैसे एक हो सकते हैं? यह बात तो अतर्क्य है विरोधाभासी है।

मन को विरोध निर्मित करने पड़ते हैं ईश्वर और शैतान, जीवन और मृत्यु, प्रेम और घृणा। तुम प्रेम और घृणा की एक ही ऊर्जा के रूप में कल्पना भी कैसे कर सकते हो? मन के लिए यह कठिन है। इसलिए मन बांट देता है। तब यह कठिनाई नहीं रहती है। घृणा प्रेम के विपरीत है और प्रेम घृणा का विलोम है। अब तुम तर्क संगत हो सकते हो और मन आराम में हो सकता है। इसलिए विभाजन मन की सुविधा के लिए है–यह सत्य नहीं है वास्तविकता नहीं है।

अपने आप को दो में बांट लेना सुविधाजनक रहता है शरीर और तुम। लेकिन जिस पल तुमने बांटा, तुमने एक गलत कदम उठा लिया। जब तक कि तुम वापस न लौट आओ और पहले कदम को न बदलो, तुम अनेक जन्मों में भटकते रह सकते हो, और इससे कुछ भी नहीं होगा क्योंकि एक झूठा कदम और झूठे कदमों की ओर ले जाता है।

इसलिए सही आरंभ से शुरू करो। स्मरण रखो कि तुम और तुम्हारा शरीर दो नहीं हैं। इन का दो होना बस एक सुविधादायक अवधारणा है। जहां तक अस्तित्व का संबंध है एक होना पर्याप्त है।

अपने आप को दो में बांटना एक धोखा है। वस्तुत: तुम सदा अनुभव करते हो कि तुम एक हो लेकिन अगर एक बार तुमने इस बारे में सोचना शुरू कर दिया तो समस्या उठती है। अगर तुम्हारे शरीर में चोट लग जाए तो उस क्षण में तुम कभी यह अनुभव नहीं करते कि तुम दो हो। तुम्हें महसूस होता है कि तुम शरीर के साथ एक हो। सिर्फ बाद में जब तुम इसके बारे में सोचना आरंभ करते हो, तब तुम बांटते हो।

वर्तमान के क्षण में कोई विभाजन नहीं है। उदाहरण के लिए अगर कोई तुम्हारे सीने पर छुरा रख दे ठीक उसी क्षण में वहां पर कोई विभाजन नहीं होता। तुम ऐसा नहीं सोचते हो कि वह तुम्हारे शरीर को मारने जा रहा है तुम सोचते हो कि वह तुम्हें मारने जा रहा है। सिर्फ बाद में जब यह घटना स्मृति का हिस्सा बन चुकी होती है तुम बांट सकते हो। अब तुम चीजों को देख सकते हो उनके बारे में सोच सकते हो। तुम कह सकते हो कि वह आदमी तुम्हारे शरीर को मारने जा रहा था। किंतु उस क्षण में तुम यह नहीं कह सकते थे।

जब भी तुम अनुभव करो तुम्हें एकता अनुभव होती है। जब भी तुम सोचते हो, तुम बांटना शुरू कर देते हो। तब शत्रुता निर्मित होती है। अगर तुम शरीर नहीं हो तो एक खास तरह का संघर्ष विकसित होता है। प्रश्न उठता है, कौन मालिक है? शरीर या मैं? तब अहंकार आहत अनुभव करने लगता है। तुम शरीर का दमन करने लगते हो। और जब तुम शरीर का दमन करते हो तो तुम अपने आप का दमन कर रहे हो। जब तुम शरीर के साथ संघर्ष करते हो, तो तुम अपने आप से संघर्ष कर रहे हो। इस तरह से बहुत सा संशय निर्मित हो जाता है। यह आत्मघाती बन जाता है।

अगर तुम प्रयास भी करो तो भी तुम अपने शरीर को वास्तविक रूप से दबा नहीं सकते। मैं अपने बाए हाथ को अपने दाएं हाथ से कैसे दबा सकता हूं। वे दो की भांति दिखते हैं, पर दोनों में एक ही ऊर्जा बहती है। अगर वास्तव में वे दो हों तब दमन संभव हो सकता था–और केवल दमन ही नहीं बल्कि पर्णू विनाश भी संभव होता–किंतु अगर दोनों में एक ही ऊर्जा बह रही है तो मैं अपने बाएं हाथ का दमन कैसे कर सकता हूं। यह बस एक बनाया हुआ विश्वास है। मैं अपने दाएं हाथ को बायां हाथ नीचे गिराने दे सकता हूं और मैं ऐसा दिखावा कर सकता हूं कि मेरा दायां हाथ जीत गया है, पर अगले क्षण ही मैं अपने बाएं हाथ को ऊपर उठा सकता हूं और वहां उसे रोकने वाला कोई न होगा। यही वह खेल है जो हम खेला करते हैं। यह चलता रहता है। किसी समय तुम कामवासना को नीचे धकेल देते हो और किसी समय कामवासना तुम्हें नीचे धकेल देती है। यह एक दुष्चक्र बन जाता है। तुम कभी कामवासना का दमन नहीं कर सकते हो। तुम इसका रूपांतरण कर सकते हो, किंतु तुम इसका दमन कभी नहीं कर सकते।

तुम और तुम्हारे शरीर के बीच विभाजन से आरंभ करना दमन की ओर ले जाता है। इसलिए अगर तुम रूपांतरण चाहते हो, तो तुम्हें विभाजन से आरंभ नहीं करना चाहिए। रूपांतरण सिर्फ पूर्ण को पूर्ण की भांति समझने से ही आ सकता है। पूर्ण को विभाजित खंडों में समझने की गलतफहमी से दमन पैदा होता है। अगर मैं जानता हूं कि दोनों हाथ मेरे हैं, तो एक को दबाने का प्रयास असंगत है। तब यह संघर्ष अर्थहीन हो जाता है क्योंकि कौन किसको दबाएगा कौन किससे लड़ेगा? अगर तुम अपने शरीर के साथ विश्रांति अनुभव कर सको तब तुम पहला कदम उठा सकते हो जो ठीक कदम होगा। तब विभाजन दमन नहीं आएगा।

अगर तुम स्वयं को अपने शरीर से अलग करते हो तो बहुत सी बातें अपने आप ही उसके पीछे से आएंगी। जितना अधिक तुम शरीर को दबाओगे उतना ही अधिक तुम हताश होओगे क्योंकि दमन असंभव है। क्षणिक युद्धविराम हो सकता है, किंतु फिर तुम पराजित हो जाओगे। और तुम जितना अधिक हताश होओगे उतना ही विभाजन बढ़ेगा, तुम और तुम्हारे शरीर के बीच की खाई और अधिक चौड़ी हो जाएगी। तुम इसके प्रति और अधिक शत्रु भाव अनुभव करने लगोगे। तुम्हें ऐसा लगने लगेगा कि शरीर बहुत शक्तिशाली है और यही कारण है

कि तुम इसका दमन कर पाने में समर्थ नहीं हो पा रहे हो। तब तुम सोचते हो 'अब मुझे और अधिक ताकत से लड़ना होगा।'

यही कारण है कि मैं कहता हूं कि हर बात का अपना तर्क है। अगर तुम गलत प्रस्तावना से शुरू करो तो तुम आगे और आगे, अंत तक चलते रह सकते हो, लेकिन पहुंचते कहीं नहीं हो। प्रत्येक संघर्ष तुम्हें दूसरे संघर्ष में ले जाता है। मन को लगता है, 'शरीर सबल है और मैं निर्बल हूं। मुझे इसका और अधिक दमन करना होगा।' या उसे लगता है कि मुझे अब अपने शरीर को कमजोर कर लेना चाहिए। सारी तपस्याएं शरीर को कमजोर बनाने के प्रयास मात्र हैं। किंतु तुम शरीर को जितना कमजोर बनाते हो तुम भी उतने ही कमजोर हो जाते हो। तुम और तुम्हारे शरीर के बीच वही तुलनात्मक शक्ति बनी रहती है।

जिस क्षण में तुम कमजोर होते हो तुम और अधिक हताश अनुभव करने लगते हो। क्योंकि अब तुम्हें आसानी से हराया जा सकता है। और तुम इसके बारे में कुछ कर भी नहीं सकते। तुम जितने और कमजोर होगे शरीर के खिंचाव से ऊपर उठने की संभावना उतनी ही कम होती चली जाएगी और तुम्हें इससे और अधिक लड़ना पड़ेगा।

इसलिए पहली बात है विभाजन के रूप में न सोचना। यह विभाजन भौतिक और आध्यात्मिक शारीरिक और मानसिक चेतना और पदार्थ केवल भाषा की भ्रांति है। यह सब मुड़ता भाषा के कारण उत्पन्न हुई है।

उदाहरण के लिए, अगर तुम कुछ कहो तो मुझे 'हां' या 'न' कहना पड़ेगा। हमारी भाषा में तटस्थ भाव के लिए कोई शब्द नहीं है। 'हां' हमेशा पूर्ण है 'न' भी पूर्ण है। किसी भाषा में कोई तटस्थ शब्द नहीं है। इसलिए डि बोनो ने एक नया शब्द गढ़ा 'पो।' वह कहता है 'पो' को एक निष्पक्ष शब्द के रूप में प्रयुक्त होना चाहिए। इसका अर्थ है' 'मैंने तुम्हारा दृष्टिकोण सुन लिया है। मैं न तो 'हां' कहता हूं और न ही 'न।'

'पो' का प्रयोग करो और सारी संभावना बदल जाती है। 'पो' एक कृत्रिम शब्द है जिसे डि बोनो ने हाइपोथीसिस या पॉसिबिलिटी या पोख्री से लिया है। यह एक निष्पक्ष शब्द है जिस में कोई मूल्य निर्धारण नहीं है न निंदा है, न प्रशंसा न वचनबद्धता न पक्ष है न विपक्ष है। अगर कोई तुम्हारा अपमान कर रहा है बस कहो 'पो'। तब अपने भीतर का अंतर महसूस करो। एक अकेले शब्द से इतना अंतर निर्मित हो सकता है। जब तुम कहते हो 'पो' तुम कह रहे हो 'मैंने तुम्हारी बात सुन ली है। अब मुझे पता है कि तुम्हारामेरे प्रति क्या रुख है। तुम सही हो भी सकते हो तुम गलत भी हो सकते हो। मैं कोई मूल्यांकन नहीं कर रहा हूं।'

भाषा विभाजन निर्मित करती है। महान विचारक भी भाषा के रूप में ऐसी चीजें निर्मित करते चले जाते हैं, जो होती ही नहीं हैं। अगर तुम उनसे पूछो ' मन क्या है?' वे कहेंगे 'यह पदार्थ नहीं है।' अगर तुम उनसे पूछो 'पदार्थ क्या है? वे कहेंगे' यह मन नहीं है।' न तो पदार्थ को जाना गया है, न ही मन को। वे पदार्थ को मन से परिभाषित करते हैं और मन को पदार्थ से। मूल अर्थ अशात रहता है। यह अर्थहीन है किंतु यह, हमारे यह कहने की तुलना में 'मुझे नहीं पता इसके बारे में कोई जानकारी नहीं है' अधिक सुविधाजनक है।

जब हम कहते हैं 'मन पदार्थ नहीं है हम विश्रांति अनुभव करते हैं–जैसे कि कुछ परिभाषित कर लिया गया हो। लेकिन कुछ भी परिभाषित नहीं हुआ है। मन और पदार्थ दोनों अज्ञात हैं परंतु यह कहना कि 'मैं नहीं जानता' अहंकार को छोटा करने वाला होगा। जिस घड़ी हम बांटते हैं हम महसूस करते हैं कि हम उन चीजों के भी मालिक हो गए हैं जिनके बारे में हम कुछ भी नहीं जानते।

निन्यानबे प्रतिशत दर्शनशास्त्र भाषा से निर्मित हुआ है। अलग-अलग भाषाओं ने दर्शनशास्त्रों के अनेक रूप निर्मित किए हैं इसलिए अगर तुम भाषा को बदल दो तो दर्शनशास्त्र बदल जाएगा। यही कारण है कि दर्शनशास्त्र का अनुवाद नहीं किया जा सकता है। विज्ञान का अनुवाद सदैव हो सकता है लेकिन दर्शनशास्त्र का

नहीं। और काव्य तो और भी अनुवाद योग्य नहीं है, क्योंकि यह भाषा की विशेष प्रकार की ताजगी पर निर्भर होता है। जिस पल तुम भाषा बदलते हो, काव्य की सुगंध खो जाती है स्वाद खो जाता है। यह स्वाद शब्दों के एक विशेष आयोजन से शब्दों के एक विशेष अनुप्रयोग से संबंधित है। इसका अनुवाद नहीं किया जा सकता है।

इसलिए स्मरण रखने योग्य पहली बात है, विभाजन से शुरू न करना। सिर्फ तभी तुम सही तरह से शुरू करते हो। मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि तुम, मैं एक हूं की धारणा से शुरू करो। मेरा यह अभिप्राय नहीं है। तब तुम फिर से एक धारणा से शुरू करते हो। बस अनभिज्ञता से, विनम्र अनभिज्ञता से इस आधार से कि मैं नहीं जानता, शुरू करो।

तुम यह कह सकते हो कि शरीर और मन अलग हैं या तुम इससे उलटी बात को पकड़ सकते हो और कह सकते हो, 'मैं एक हूं। शरीर और मन एक हैं।' किंतु यह कथन भी यह मान लेना ही है कि विभाजन है। तुम कहते हो 'एक' किंतु तुम अनुभव कर रहे हो 'दो।' दो के अनुभव के विरुद्ध तुम एकता का आग्रह करते हो। यह आग्रह फिर से एक सूक्ष्म दमन है।

तो अद्वैत से शुरू मत करो, नॉन-डयूअल, अद्वैत दर्शन से शुरू मत करो। अस्तित्व के साथ शुरू करो, धारणाओं के साथ नहीं। एक गहन धारणा विहीन चेतना के साथ शुरू करो। सम्यक आरंभ से मेरा यही अभिप्राय है। अस्तित्ववान के अनुभव से आरंभ करो। मत कही, 'एक' या 'दो' मत कहो 'यह' या 'वह'। जो है उसको अनुभव करना शुरू करो। और 'जो है' का यह अनुभव सिर्फ तब हो सकता है, जब मन वहां न हो, धारणाएं वहां न हों, दर्शनशास्त्र और मत वहां न हों–वस्तुत: जब भाषा वहां न हो। जब भाषा अनुपस्थित होती है, तुम अस्तित्व में होते हो। जब भाषा उपस्थित होती है, तुम मन में होते हो अलग भाषा के साथ तुम्हारे पास अलग मन होगा। बहुत सी भाषाएं हैं। न केवल भाषाशास्त्रीय रूप से, बल्कि धार्मिक रूप से राजनैतिक रूप से भी। कोई कम्युनिस्ट जो मेरे बगल में बैठा है किसी तरह मेरे साथ नहीं होगा। वह अलग भाषा में जीता है।

मेरी दूसरी ओर कोई दूसरा व्यक्ति भी बैठा हो सकता है जो कर्म में भरोसा रखता हो। कम्युनिस्ट और वह दूसरा व्यक्ति मिल नहीं सकते हैं। कोई संवाद संभव नहीं है क्योंकि वे एक-दूसरे की भाषा को जरा भी नहीं जानते हैं। वे समान शब्दों का प्रयोग करते रह सकते हैं किंतु फिर भी वे नहीं नहीं जानते कि दूसरा व्यक्ति क्या कह रहा है। वे अलग संसारों में रहते हैं।

भाषा के साथ प्रत्येक व्यक्ति अपने निजी संसार में रहता है। बिना भाषा के तुम समान वाणी के अस्तित्व के हो जाते हो। ध्यान से मेरा यही अभिप्राय है निजी भाषा निर्मित संसारों को छोड़ कर निःशब्द अस्तित्व में प्रवेश करना।

वे लोग जो शरीर और मन को विभाजित करते हैं, सदा कामवासना के विरोध में होते हैं। कारण यह है आमतौर से कामवासना ही एकमात्र निःशब्द प्राकृतिक अनुभव है जिसे हम जानते हैं। इसमें भाषा की कोई जरूरत नहीं पड़ती है। अगर कामवासना में तुम भाषा का प्रयोग करो, तो तुम इसमें गहरे नहीं जा सकते हो। इसलिए वे सभी लोग जो तुमसे कहते हैं तुम शरीर नहीं हो कामवासना के विरोध में होंगे क्योंकि कामकृत्य में तुम आत्यंतिक रूप से अविभाजित होते हो।

शब्दों के संसार में मत जीओ। अस्तित्व में गहरे उतर जाओ। किसी भी चीज का उपयोग करो, पर बार-बार लौट कर निःशब्द के तल पर, चेतना के तल पर आ जाओ। वृक्षों के साथ पक्षियों के साथ आकाश के सूर्य के बादलों के वर्षा के साथ–हर कहीं निःशब्द अस्तित्व के साथ रहो। और जितना अधिक तुम ऐसा करोगे, जितनी गहराई में तुम इसमें जाओगे, उतनी ही अधिक तुम ऐसी एकता का अनुभव करोगे जो 'दो' के विरोध में नहीं है, एक ऐसी एकता जो बस दो का जुड़ना नहीं है बल्कि मुख्य भूमि के साथ एक ऐसे द्वीप की एकता है जो सागर

तल के नीचे से होकर उसे मुख्य भूमि से जोड़े हुए है। वे दो सदा से एक रहे हैं। तुम उन्हें दो की भांति देखते हो क्योंकि तुम सिर्फ सतह पर देखते हो। भाषा सतह है। सभी प्रकार की भाषाएं–धार्मिक राजनैतिक–सतह पर हैं। जब तुम शब्दरहित अस्तित्व के साथ रहते हो तुम एक सूक्ष्म एकता पर पहुंचते हो जो गणितीय एकता नहीं है बल्कि अस्तित्वगत एकता है।

इसलिए इन शाब्दिक खेलों में कि शरीर और मन विभाजित हैं शरीर और मन एक हैं; खेलने का प्रयास मत करो। उन्हें छोड़ दो। वे दिलचस्प हैं लेकिन व्यर्थ हैं। वे कहीं नहीं ले जाते। अगर तुम उनमें कोई सत्य भी पा लो तो वे मात्र शाब्दिक सत्य हैं। तुम उनसे क्या सीखने जा रहे हो? हजारों वर्षों से तुम्हारा मन यह खेल खेलता आया है लेकिन यह बचकाना है कोई भी शाब्दिक खेल बचकाना है। तुम उसे कितनी ही गंभीरता से खेलो इससे कोई अंतर नहीं पड़ता है। तुम बहुत सी बातों को बहुत से अर्थों को अपनी स्थिति के समर्थन में पा सकते हो लेकिन यह बस एक खेल है। जहां तक रोजमर्रा के काम का संबंध है भाषा उपयोगी है, किंतु तुम इससे गहनतर क्षेत्रों में नहीं उतर सकते हो क्योंकि ये क्षेत्र शब्दों से परे हैं।

भाषा बस एक खेल है। अगर तुम शाब्दिक और अशाब्दिक के बीच कोई साहचर्य पा लो तो कुछ ऐसा नहीं है कि तुमने कोई महत्वपूर्ण सुराग पा लिया है। तुम बहुत से साहचर्य पा सकते हो जो महत्वपूर्ण दिखते हैं किंतु वे वास्तविक अर्थों में अर्थपूर्ण नहीं हैं। वे वहां हैं क्योंकि तुम्हारे मन ने अचेतन रूप में उन्हें निर्मित कर लिया है।

प्रत्येक स्थान पर मनुष्य का मन मूलभूत रूप से समान है इसलिए प्रत्येक वह बात जो मानवीय मन से विकसित हुई है समानता लिए हुए होती है। उदाहरण के लिए 'मां' के लिए हर भाषा के शब्द समानता लिए हुए हैं। इसलिए नहीं कि इसमें कोई अर्थवत्ता है, बल्कि इसलिए कि 'मां' वह ध्वनि है जो प्रत्येक बच्चे के द्वारा सर्वाधिक आसानी से बोली जाती है। एक बार ध्वनि सुन ली जाए तो तुम उससे बहुत से शब्द निर्मित कर सकते हो, लेकिन कोई भी ध्वनि तो बस एक आवाज है। बच्चा तो बस एक ध्वनि कर रहा है 'मां' पर तुम इसको एक शब्द की तरह सुनते हो।

कभी-कभी कोई समानता भी पाई जा सकती है, जो मात्र सांयोगिक हो। 'गॉड' शब्द 'डॉग' का उलटा है। यह बस एक संयोग है। लेकिन हमें यह अर्थपूर्ण लगता है, क्योंकि हमारे लिए डॉग, कुत्ता होने में कुछ नीचापन है। तब हम कहते हैं कि गॉड इसका उलटा है, यह हमारी व्याख्या है, ऐसा भी हो सकता है कि हमने गॉड के विपरीत 'डॉग' शब्द निर्मित किया हो और यह नाम कुत्तों को दे दिया हो। वे किसी भी तरह से आपस में संबंधित नहीं हैं, लेकिन अगर तुम उनके मध्य संबंध निर्मित कर सको तो यह तुम्हें अर्थपूर्ण प्रतीत होता है।

तुम किसी भी बात से समानताएं निर्मित करते रह सकते हो। तुम अनंत समानताओं के साथ शब्दों का महासागर बना सकते हो। उदाहरण के लिए, शब्द 'मंकी।' तुम इस शब्द के साथ खेल कर कुछ साहचर्य पा सकते हो, किंतु डार्विन से पूर्व ऐसा असंभव रहा होता। क्योंकि अब हम जानते हैं कि मनुष्य बंदर से आता है, हम शब्दों के खेल खेल सकते हैं। हम कह सकते हैं मन–की, मनुष्य की चाबी। दूसरे लोगों ने इन दो शब्दों को अलग तरह से जोड़ा है। उन्होंने कहा है 'बंदर और मनुष्य अपने मन के कारण संबंधित हैं। मनुष्य के पास बंदर जैसा मन है।

इसलिए तुम साहचर्य निर्मित कर सकते हो और उनका मजा ले सकते हो। तुम इसे एक अच्छे खेल की भांति महसूस कर सकते हो लेकिन यह मात्र एक खेल है। इस बात को याद रखना चाहिए। अन्यथा तुम, क्या वास्तविक है और क्या बस एक खेल है के भेद को स्पष्ट करने वाले रास्ते से भटक जाओगे और विक्षिप्त हो जाओगे।

शब्दों के भीतर तुम जितने गहरे उतरोगे उतने ही शब्द साहचर्य तुम पा लोगे। और फिर बस उन्हें घुमाने-फिराने से तुम एक पूरा दर्शनशास्त्र बना सकते हो। बहुत से लोग ऐसा करते हैं। रामदास ने भी यह खूब किया है। वे मंकी शब्द के साथ इसी तरह खेले हैं, इसी तरह से उन्होंने डॉग और गॉड की तुलना की है। यह सब ठीक है, इसमें कोई भी गलती नहीं है। मैं जो कह रहा हूं वह यह है. अगर तुम एक खेल खेल रहे हो और उसका मजा ले रहे हो तब उसका मजा लो–किंतु उसके द्वारा मूर्ख मत बनो। और तुम्हें मूर्ख बनाया जा सकता है। यह खेल इतना अधिक प्रभावशाली हो सकता है कि तुम इसे खेलना जारी रखे चले जाओगे और बहुत सी ऊर्जा व्यर्थ चली जाएगी।

लोग सोचते हैं कि क्योंकि भाषाओं में बहुत सी समानताएं हैं, कि कोई मौलिक भाषा अवश्य ही होनी चाहिए जिससे ये सारी भाषाएं आई हैं। किंतु ये समानताएं किसी सार्वभौम भाषा के कारण नहीं हैं, वे मानवीय मन की समानता के कारण हैं। सारे संसार में वे लोग जो हताश हैं, एक सी ध्वनि करते हैं, वे लोग जो प्रेम में हैं एक सी ध्वनि करते हैं। मनुष्यों में आधारभूत समानता के कारण हमारे शब्दों में भी एक निश्चित समानता निर्मित हो जाती है। किंतु इसको गंभीरता से मत लेना, क्योंकि तब तुम अपने आप को इसमें खो दोगे। अगर तुम कुछ अर्थपूर्ण स्रोत पा भी जाओ, तो भी यह अर्थहीन है, असंगत है। आध्यात्मिक खोजी के लिए यह लक्ष्य से हट जाना है।

और हमारे मन इस प्रकार के हैं कि जब हम कुछ खोजने जाते हैं तो हम पूर्व–निर्धारित धारणा से आरंभ करते हैं। अगर मुझे लगता है कि मुसलमान बुरे हैं, तो मैं उनबातों की खोज करने लगूंगा जो मेरी धारणा के पक्ष में हैं और अंत में मैं स्वयं को सही सिद्ध कर लेता हू। जब कभी मैं किसी मुसलमान से मिलूंगा, तब मैं त्रुटियां खोजना शुरू कर दूंगा और कोई कह नहीं सकेगा कि मैं गलत हूं क्योंकि मेरे पास प्रमाण हैं।

उसी व्यक्ति के पास कोई विपरीत धारणा लेकर आ सकता है। उसके लिए अगर मुसलमान का अर्थ एक भला आदमी हो, तो उसी मुसलमान में वह भलेपन का प्रमाण खोज सकता है। भलापन और बुरापन विपरीत नहीं हैं वे एक साथ होते हैं। मनुष्य के पास दोनों में से एक होने की संभावना है, इसलिए तुम उसमें जो भी गुण खोज रहे हो वे तुम्हें मिल जाएंगे। कुछ परिस्थितियों में वह भला होगा, और कुछ परिस्थितियों में वह बुरा होगा। जब तुम उसके बारे में निर्णय लेते हो, तो यह परिस्थिति के बजाय तुम्हारी परिभाषाओं पर अधिक निर्भर होगा। यह इस पर निर्भर है कि तुम किस तरह से देखते हो इस तरह से या उस तरह से।

उदाहरण के लिए, अगर तुम सोचते हो कि धूम्रपान बुरा है तो यह बुरा हो जाता है। अगर तुम किसी खास तरह के व्यवहार को बुरा मानते हो, तो यह बुरा हो जाता है। लेकिन वास्तव में न कुछ भला है न कुछ बुरा है। कोई किसी अलग भाव से उसी चीज को भली बात की भांति सोचेगा। वह सोचेगा कि अगर कोई मित्रों के बीच में लेट जाता है और सो जाता है, तो यह अच्छी बात है कि वह इसे कर पाने की स्वतंत्रता अनुभव करता है। अत: यह तुम्हारे भाव पर निर्भर है।

मैं ए. एस. नील द्वारा उसके विद्यालय समरहिल में किए गए कुछ प्रयोगों के बारे में पढ़ रहा था। उसने एक नये प्रकार के विद्यालय का परीक्षण किया, जहां पूर्ण स्वतंत्रता थी। वह प्रधानाध्यापक था, वहां पर कोई अनुशासन नहीं था। एक बार एक अध्यापक बीमार पड़ गया इसलिए उसने विद्यार्थियों से कहा कि उस रात कोई शोरगुल न मचाएं जिससे वह अध्यापक परेशान न हो।

किंतु रात में लड़कों ने बीमार के ठीक बगल वाले कमरे में ही लड़ना शुरू कर दिया। नील सीढ़ियों से ऊपर चढ़ा। जब बच्चों ने किसी के आने की आवाज सुनी तो वे चुप हो गए और पढ़ने लगे। नील ने कमरे की खिड़की से झांका। एक लड़के ने जो बिस्तर पर सोने का बहाना कर रहा था, ऊपर देखा और खिड़की में नील

को देखा। उसने अन्य छात्रों से कहा, 'यह कोई और नहीं बल्कि नील सर हैं। आओ अब रुकने की कोई जरूरत नहीं है। यह तो बस नील सर हैं।' इसलिए उन्होंने दुबारा लड़ना शुरू कर दिया। और नील वहां प्रधानाध्यापक था।

नील ने लिखा है : 'मैं इतना प्रसन्न था कि वे मुझसे इतने निर्भय थे कि वे कह सके चिंता की कोई जरूरत नहीं है, यह तो बस नील सर हैं।' नील ने इसके प्रति अच्छा अनुभव किया; किंतु किसी भी अन्य प्रधानाध्यापक को यह कभी अच्छा नहीं लगेगा। किसी अन्य प्रधानाध्यापक को इतिहास में कभी अच्छा नहीं लगा होगा।

इसलिए यह तुम पर निर्भर करता है तुम चीजों की किस तरह से परिभाषा करते हो उस पर निर्भर करता है। नील ने इस बात को प्रेम की भांति अनुभव किया लेकिन तब यह उसके द्वारा दी गई परिभाषा है। हम जिसकी खोज करते हैं सदा वही मिल जाता है। अगर तुम गंभीरता से किसी चीज की खोज में लग जाओ तो तुम संसार की हर चीज को पा सकते हो।

इसलिए कुछ पाने के लिए सुनिश्चित मन के साथ आरंभ मत करो। बस शुरू करो। एक खोजी मन का अर्थ किसी चीज की खोज में होना नहीं है, बल्कि केवल खोज में होना है। मात्र खोज बिना किन्हीं पूर्व-निर्धारित धारणाओं के बिना किसी सुनिश्चित चीज को पाने के खयाल के। हमें चीजें मिल जाती हैं, क्योंकि हम उन्हें खोज रहे थे।

बाइबिल की कहानी 'बाबेल की मीनार' की कहानी का अभिप्राय भी यही है कि जिस पल तुम बोलते हो, तुम बंट जाते हो। कहानी यह नहीं है कि लोगों ने भिन्न-भिन्न भाषाएं बोलना आरंभ कर दिया बल्कि यह है कि वे बोलने लगे। जिस पल तुम बोलते हो, संशय आ जाता है। जिस पल तुम कुछ उच्चारित करते हो तुम खंडित हो जाते हो। सिर्फ मौन ही एक है।

बहुत से लोगों ने कुछ चीजों की खोज में अपना जीवन बेकार कर डाला है। जब कोई चीज गंभीरता से ली जाती है तो तुम अपना जीवन आसानी से बेकार कर सकते हो। शब्दों से खेलना अहंकार को इतना भरता है कि तुम इसे करने में अपना जीवन नष्ट कर सकते हो। भले ही यह दिलचस्प हो, एक अच्छा खेल हो मन बहलाने वाला हो, आध्यात्मिक खोजी के लिए यह बेकार है। आध्यात्मिक खोज कोई खेल नहीं है।

यही खेल अंकों के साथ भी खेला जा सकता है। तुम संबंध बना सकते हो। तुम गणित बिठा सकते हो कि सप्ताह में सात दिन क्यों हैं संगीत के सात स्वर सात लोक सात शरीर? हमेशा सात ही क्यों? तब तुम इसके चारों ओर दर्शनशास्त्र निर्मित कर सकते हो किंतु यह दर्शनशास्त्र मात्र तुम्हारी कल्पना का उत्पादन होगा।

कभी-कभी चीजें बड़े निर्दोष कारणों से शुरू हो जाती हैं। उदाहरण के लिए जिस तरह से गिनती शुरू हुई। नौ अंकों के होने का एकमात्र कारण यह है कि मनुष्य की दस अंगुलियां हैं। सारे संसार में पहली बार गिनती अंगुलियों पर ही हुई। इसलिए 'दस' चुनी हुई सीमा बन गई। इतना काफी था क्योंकि उसके बाद तुम दोहरा सकते हो। इसलिए सारी दुनिया में नौ अंक ही हैं।

एक बार नौ निश्चित हो गया तो यह विश्वास करना मुश्किल हो जाता है कि नौ अंकों से कम या ज्यादा से भी काम लिया जा सकता है। किंतु कम का उपयोग हो सकता है। नौ सिर्फ एक आदत है। लिबनिज ने सिर्फ तीन अंकों का प्रयोग किया था? एक दो और तीन। आइंस्टीन ने सिर्फ दो अंक प्रयुक्त किए. एक और दो। तब गिनती उस तरह हो जाती है. एक दो, दस ग्यारह...। हमारे लिए वहां आठ का अंतर लगता है, किंतु यह अंतर है नहीं यह मात्र हमारे मन में है।

हमारे पास एक निश्चित भाव है कि तीन को दो के बाद आना चाहिए। ऐसी कोई अनिवार्यता नहीं है। लेकिन यह हमारे लिए भ्रमपूर्ण हो जाता है। हम सोचते हैं दो और दो सदा चार होते हैं किंतु इसमें कोई

अंतर्निहित अनिवार्यता नहीं है। अगर तुम दो अंकों की प्रणाली उपयोग करो तो दो और दो मिल कर ग्यारह होंगे। किंतु 'ग्यारह' और 'चार' का अर्थ समान होगा। तुम कह सकते हो कि दो कुर्सियां और दो कुर्सियां मिल कर चार कुर्सियां हैं या तुम कह सकते हो कि वे ग्यारह कुर्सियां हैं, किंतु जो भी व्यवस्था तुम लागू करना चाहो, अस्तित्वगत रूप से कुर्सियों की संख्या वही रहती है।

तुम हर बात के लिए तर्क पा सकते हो–सप्ताह में सात दिन क्यों होते हैं, स्त्री के मासिक-चक्र में अट्ठाइस दिन क्यों होते हैं, संगीत में सात स्वर क्यों होते हैं, सात लोक क्यों हैं। और इनमें से कुछ चीजों के पीछे वास्तव में कोई कारण हो सकता है?

उदाहरण के लिए, मेंन्सेस शब्द का अर्थ होता है महीना। ऐसा हो सकता है कि मनुष्य ने पहली बार महीनों की गणना स्त्री के मासिक-चक्र से की हो, क्योंकि प्राकृतिक स्त्री-चक्र एक निर्धारित समय अवधि है अट्ठाइस दिन। यह इस बात को जानने का आसान उपाय रहा होगा कि एक माह गुजर चुका है। जब तुम्हारी पत्नी का मासिक स्राव आरंभ होता है, एक महीना बीत गया है।

या तुम महीनों को चंद्रमा के अनुसार गिन सकते हो। किंतु तब समय की अवधि जिसे हम कहते हैं 'एक महीना' बदल कर तीस दिन की हो जाती है। चंद्रमा लगातार पंद्रह दिन तक बढ़ता जाता है और पंद्रह दिन छोटा होता जाता है इस तरह तीस दिनों में यह एक पूरे वर्तुल से होकर गुजर जाता है।

हमने महीनों को चंद्रमा के अनुसार निर्धारित किया है इसलिए हम कहते हैं कि एक माह में तीस दिन होते हैं। किंतु यदि तुम इसे शुक्रगृह या मासिक-चक्र से नापो तो इसमें अट्ठाइस दिन होंगे। अट्ठाइस दिन के चक्र को बांट कर, सात दिन के सप्ताहों के बारे में सोच कर, तुम इस अंतर को मिटा सकते हो। तो एक बार यह विभाजन मन में निश्चित हुआ कि अन्य बातें भी अपने आप से आ जाएंगी। हर बात का अपना तर्क है कहने से मेरा यही अभिप्राय है। एक बार तुमने सात दिन के सप्ताह को खयाल में लिया, तो तुम सात के बहुत से उदाहरणों को भी खोज सकोगे और सात एक महत्वपूर्ण अंक बन जाएगा एक जादुई अंक जैसा। यह है नहीं। या तो सारा जीवन जादुई है या कुछ भी जादुई नहीं है। यह तो कल्पना के लिए बस खेल बन जाता है।

इन बातों से तुम खेल सकते हो, और बहुत सी समरूपताएं होंगी। संसार इतना बड़ा है, इतना असीम है, हर घड़ी इतनी घटनाएं घट रही हैं कि वहां समरूपताओं का होना अनिवार्य है। तुम समरूपताओं को एकत्रित करने लगो, अंत में तुम्हारे पास इतनी लंबी सूची बनेगी कि उससे तुम संतुष्ट हो जाओगे। तब तुम आश्चर्य करोगे 'हमेशा सात ही क्यों होते हैं? इसमें कोई रहस्य होना चाहिए।' रहस्य इतना ही है कि तुम्हारा मन एकरूपताएं देखता है और उन्हें एक तर्कयुक्त ढंग से प्रस्तुत करने की चेष्टा करता है।

गुरजिएफ ने कहा है कि मनुष्य चंद्रमा के लिए आहार है। यह बात पूरी तरह से तर्कयुक्त है। यही बात तर्क की मूर्खता को प्रदर्शित करती है। जीवन में हर प्राणी किसी दूसरे के लिए आहार है। इसलिए गुरजिएफ एक बहुत खोजपूर्ण विचार पर पहुंचा कि मनुष्य को 'भी किसी के लिए आहार होना चाहिए। तब, 'मनुष्य किसके लिए आहार है?' पूछे जाने के लिए यह एक तर्कपूर्ण प्रश्न हो जाता है।

सूर्य मनुष्य का भक्षक नहीं हो सकता, क्योंकि सूर्य की किरणें दूसरे जीवधारियों, पौधों के लिए आहार हैं। तब मनुष्य को अन्य प्रजातियों से निम्नतर स्तर पर होना चाहिए। लेकिन ऐसा नहीं हो सकता क्योंकि मनुष्य के अनुसार वह सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। इसलिए मनुष्य सूर्य के लिए आहार नहीं हो सकता है।

चंद्रमा हमसे सूक्ष्म रूप से संबंधित है लेकिन उस रूप में नहीं जैसा गुरजिएफ ने कहा है। यह स्त्री के मासिक चक्र से सूक्ष्म रूप से संबंधित है। यह ज्वार से, भाटे से सागर के प्रवाह से संबंधित है। पूर्णिमा के दिन अधिक लोग पागल होते देखे गए हैं। इसी से शब्द 'लूनाटिक चांदमारा आता है लूनार चंद्रमा से संबंधित।

चंद्रमा ने सदा मनुष्य के मन को सम्मोहित किया है। गुरजिएफ ने कहा है 'मनुष्य को चंद्रमा के लिए आहार होना चाहिए, क्योंकि आहार को लेने वाले के द्वारा आसानी से सम्मोहित किया जा सकता है।' पशु विशेषकर सांप अपने शिकारों को पहले सम्मोहित कर लेते हैं। वे इतने पंगु हो जाते हैं कि उन्हें खाया जा सकता है। यह दूसरी समरूपता है जिसको गुरजिएफ ने प्रयुक्त किया। कवि, पागल सौंदर्यशास्त्री, विचारक सभी चंद्रमा से सम्मोहित हैं। वहां कोई बात तो होनी ही चाहिए। मनुष्य को चंद्रमा का आहार होना चाहिए।

तुम इस विचार के साथ खेल सकते हो। गुरजिएफ के समान उर्वर मस्तिष्क के साथ बातें तार्किक रूप में समायोजित होती जाती हैं। गुरजिएफ महान प्रतिभाशाली था, जो बातों को इस तरह से प्रस्तुत करता था कि भले ही वे कितनी असंगत हों, परंतु वे तार्किक बुद्धिपूर्ण और अर्थपूर्ण प्रतीत होती थीं। उसने इस सिद्धांत की कल्पना की और फिर उसकी कल्पना ने बहुत से अंतर्संबंध बहुत से प्रमाण पा लिए।

व्यवस्था बनाने वाला प्रत्येक व्यक्ति तर्कों का प्रयोग तोड़-मरोड़ के लिए, अपनी बात को सिद्ध करने के लिए करता है। व्यवस्था बनाने वाला प्रत्येक व्यक्ति! जो सत्य के साथ रहना चाहते हैं वे लोग व्यवस्थाएं नहीं बना सकते हैं। उदाहरण के लिए मैं कभी कोई व्यवस्था नहीं बना सकूंगा, क्योंकि मेरे लिए उसका प्रयास ही गलत है। मैं तो जो मैं कहता हूं उसमें केवल आशिक हो सकता हूं अपूर्ण। वहां अंतराल होंगे जिनको जोड़ा न जा सके ऐसे अंतराल। मेरे साथ तो तुम्हें एक बिंदु से दूसरे बिंदु पर छलांग लेनी पड़ेगी।

व्यवस्था बहुत आसानी से बनाई जा सकती है, क्योंकि अंतराल कल्पना से भरे जा सकते हैं। तब सारी बात बहुत स्पष्ट और साफ तर्कपूर्ण हो जाती है। किंतु जैसे ही यह तर्कपूर्ण हो जाती है यह अपने मूल अस्तित्वगत स्रोत से दूर और दूर होती जाती है।

जितना अधिक तुम जान लेते हो उतना ही तुम अनुभव करते हो कि बीच में कुछ अंतराल हैं जो भरे नहीं जा सकते हैं। अस्तित्व कभी भी तर्क संगत नहीं हो सकता है कभी भी नहीं। व्यवस्था का तर्क संगत होना जरूरी है किंतु अस्तित्व कभी भी अपने आप में तर्कसंगत नहीं है। इसलिए कोई व्यवस्था कभी इसको परिभाषित नहीं कर सकती है।

जहां कहीं भी मनुष्य ने अस्तित्व को परिभाषित करने के लिए व्यवस्थाएं निर्मित की हैं, भारत में, ग्रीस में चीन में उसने खेल ही निर्मित किए हैं। यदि तुम पहले कदम को सच्चा मान लो तो सारी व्यवस्था कुशलतापूर्वक कार्य करती है; किंतु अगर तुम पहले कदम को स्वीकार न करो, तो सारा ढांचा ढह जाता है। यह सारा ढांचा एक काल्पनिक कसरत है। यह अच्छा है, काव्यपूर्ण है, सौंदर्ययुक्त है। किंतु अगर कोई व्यवस्था जिद करती है कि अस्तित्व को इसके द्वारा दी गई परिभाषा ही परम सत्य है तो यह हिंसक और विध्वंसात्मक हो जाती है। सत्य की ये व्यवस्थाएं काव्य हैं। वे सुंदर हैं लेकिन वे बस काव्य हैं। उनमें बहुत से अंतराल कल्पना द्वारा भरे गए हैं।

गुरजिएफ सत्य के कुछ अंशों की ओर इंगित कर रहा था किंतु किसी सिद्धांत के लिए एक या दो टुकड़ों पर खड़ा हो पाना आसान नहीं है, इसलिए उसने बहुत से टुकड़ों को जोड़ दिया। तब उसने इन अंशों को एक व्यवस्था के रूप में जोड़ने का प्रयास किया। उसने अंतराल भरने शुरू कर दिए। किंतु जितने ज्यादा अंतराल भरे जाते हैं, उतना ही अधिक सत्य खोता चला जाता है। और अंत में सारी व्यवस्था इन भरे गए अंतरालों की वजह से धराशायी हो जाती है।

वह व्यक्ति जो सिद्धांत निर्माता के व्यक्तित्व के जादू से सम्मोहित है शायद ही उसके सिद्धांत के अंतरालों को जान पाए किंतु जो व्यक्ति सम्मोहित नहीं हैं वे लोग केवल अंतराल ही देखेंगे सत्य के अंश नहीं। अपने अनुयायियों के लिए गौतम बुद्ध एक बुद्धपुरुष हैं संबोधि को प्राप्त व्यक्ति हैं किंतु दूसरों के लिए वे संशय पैदा

करते हैं क्योंकि दूसरे लोग केवल अंतराल ही देखते हैं। अगर तुम सारे अंतरालों को एकत्रित कर लो यह विध्वंसात्मक हो जाता है। किंतु अगर तुम सत्य के सारे अंशों को एक साथ जोड़ लो तो यह तुम्हारे रूपांतरण की आधारशिला बन सकता है।

सत्य आशिक होने के लिए बाध्य है। यह इतना असीम है कि अपने सीमित मन के साथ तुम कभी समस्त को नहीं पा सकते हो। और अगर तुम समग्र को पाने पर जोर दो तो तुम अपने मन को खो दोगे, तुम अपने मन का अतिक्रमण कर लोगे। किंतु अगर तुम एक व्यवस्था बना लो तो तुम अपने मन को कभी न खोओगे क्योंकि तब तुम्हारा मन अंतरालों को भरता है। व्यवस्था स्पष्ट और साफ हो जाती है यह प्रभावशाली तर्कयुक्त समझ में आने योग्य हो जाती है; किंतु इससे अधिक कभी नहीं। और कुछ अधिक की ही जरूरत है वह शक्ति वह ऊर्जा जो तुम्हें रूपांतरित करे। किंतु यह सामर्थ्य केवल आशिक झलकों के माध्यम से ही आ सकती है।

मन बहुत सी व्यवस्थाएं, बहुत सी विधियां बनाता है। वह सोचता है 'यदि मैं इस जीवन से जिसे मैं जी रहा हूं हट जाऊं तो मुझे कोई और गहरी चीज मिल जाएगी।' यह बात अर्थहीन है। लेकिन मन सोचता चला जाता है–कि तिब्बत में कहीं पर मेरु पर्वत पर किसी जगह 'वास्तविक बात' घटित हो रही होगी। तुम्हारा हृदय इस संघर्ष में पड़ जाता है कि वहां पर कैसे जाया जाए? उन गुरुओं के संपर्क में कैसे आया जाए जो वहां पर कार्य कर रहे हैं? मन सदा किसी और जगह, किसी और चीज को तलाशता रहता है। उसको कभी नहीं देखता है जो यही और अभी है- मन कभी यहां नहीं है। और प्रत्येक सिद्धांत लोगों को आकर्षित करता है 'इसी समय मेरु पर्वत पर वास्तविक घटना घटित हो रही है। वहां चले जाओ वहां के गुरुओं के साथ संबंध जोड़ लो और तुम रूपांतरित हो जाओगे।'

इन चीजों का शिकार मत बनो। अगर इनमें कोई आधार भी हो तो उसमें मत फंसो। कोई तुम्हें कोई ऐसी बात बता सकता है, जो वास्तविक हो, लेकिन तुम्हारे आकर्षण का कारण गलत है। सत्य तो यहीं और अभी है; यह अभी तुम्हारे साथ है। बस अपने ऊपर कार्य करो। अगर कोई व्यक्ति मेरु पर्वत पर चला भी जाए, उसे लौट कर अपने ऊपर आना ही पड़ेगा। अंतिम रूप से व्यक्ति पाता है कि मेरु पर्वत यहीं है तिब्बत यहीं है 'यहीं मेरे भीतर, और मैं भटकता रहा और सब कहीं तलाशता रहा।'

व्यवस्था जितनी अधिक तर्कसंगत होती है उतनी ही वह बिखर जाती है और किसी तर्कातीत को भीतर आना पड़ता है। लेकिन जिस पल तुम तर्कातीत तत्व को भीतर लाते हो मन बिखरने लगता है। इसलिए व्यवस्थाओं की चिंता मत करो। बस यहीं और अभी में छलांग लगा दो।

आज इतना ही

छठवां प्रवचन

सपनों का मनोविज्ञान

ओशो स्वप्नों के विभिन्न प्रकार क्या हैं?

स्वप्नों के अनेक प्रकार होते हैं। हमारे सात शरीर हैं और प्रत्येक शरीर के अपने स्वप्न होते हैं। भौतिक शरीर अपने स्वप्न निर्मित करता है। अगर तुम्हारा पेट गड़बड़ है तो एक विशेष प्रकार का स्वप्न निर्मित होगा। अगर तुम अस्वस्थ हो, अगर तुम ज्वरग्रस्त हो तो भौतिक शरीर अपनी तरह से स्वप्न निर्मित करेगा। एक बात निश्चित है कि स्वप्न किसी स्थ्याता से किसी डिस-ईजृ से निर्मित होता है।

भौतिक रुग्णता अपना अलग स्वप्न-लोक निर्मित करती है इसलिए भौतिक स्वप्न को बाहर से निर्मित किया जा सकता है। तुम नींद में हो अगर तुम्हारी टांगों पर एक भीगा कपड़ा रख दिया जाए तो तुम स्वप्न देखने लगोगे। तुम्हें दिख सकता है कि तुम एक नदी पार कर रहे हो। अगर तुम्हारे सीने पर तकिया रख दिया जाए तो तुम स्वप्न देखने लगोगे। तुम स्वप्न देख सकते हो कि कोई तुम्हारे ऊपर बैठा है या कोई पत्थर तुम पर गिर पड़ा है। ये स्वप्न भौतिक शरीर से पैदा होते हैं।

हमारे सात शरीर हैं–भौतिक भाव सूक्ष्म मनस आत्मिक ब्रह्म और निर्वाण– इसलिए सात प्रकार के स्वप्नों की संभावना है। दूसरा शरीर-भाव शरीर–अपने ढंग के स्वप्न देखता है। इन स्वप्नों को शरीर के तल पर नहीं समझा जा सकता है– इन्हें नहीं समझा जा सकता है। और ठीक यही वे स्वप्न हैं जिन्होंने आज के मनोविज्ञान में काफी विभ्रम पैदा कर दिया है–फिर वह चाहे फायडीय विश्लेषण हो या एडलर का हो या चाहे जुंग का मनोविज्ञान हो। भाव शरीर के इन स्वप्नों ने अनेक उलझनें और समस्याएं निर्मित कर दी हैं।

फ्रायड उन्हें दमित इच्छाओं के रूप में समझता है। ये वे स्वप्न हैं जो दमित इच्छाओं से संबंधित हैं लेकिन वे भी पहले शरीर भौतिक शरीर से संबंधित हैं। अगर तुमने अपनी भौतिक इच्छाओं का दमन किया है उदाहरण के लिए अगर तुमने उपवास किया है—तो स्वप्न में इस बात की बहुत संभावना है कि तुम्हें कुछ नाश्ता दिखाई पड़े। अगर तुमने कामवासना का दमन किया है तो कामुक कल्पनाओं के स्वप्नों की पूरी संभावना है।

लेकिन ये भी पहले शरीर से संबद्ध हैं। दूसरा शरीर भाव शरीर, इन मनोवैज्ञानिक खोजों से अछूता रह गया है, या इसे भी भौतिक शरीर के रूप में अभिव्यक्त किया गया है।

भाव शरीर स्वप्नों में यात्रा कर सकता है। इस बात की पूरी संभावना है कि तुम्हारे भौतिक शरीर से तुम्हारा भाव शरीर बाहर निकल जाए। लेकिन जब तुम इसे याद करते हो, तो यह स्वप्न के रूप में याद आता है। लेकिन यह उन अर्थों में स्वप्न नहीं है जिस तरह भौतिक शरीर के स्वप्न हैं। जब तुम सोए हुए होते हो, तो भाव शरीर तुमसे बाहर जा सकता है। तुम्हारा भौतिक शरीर यहीं पर होगा, लेकिन तुम्हारा भाव शरीर बाहर जा सकता है और आकाश में यात्रा कर सकता है। इसके लिए समय और स्थान की कोई सीमा नहीं है। इसके लिए दूरी का भी कोई प्रश्न नहीं है। वे लोग जो इसे नहीं समझते हैं, ऐसा कह सकते हैं कि यह अचेतन का आयाम है, क्योंकि वे मनुष्य के मन को चेतन और अचेतन में बांटते हैं। भौतिक शरीर के स्वप्न चेतन बन जाते हैं, भाव शरीर के स्वप्न अचेतन।

भाव शरीर के स्वप्न अचेतन नहीं हैं। ये उतने ही चेतन हैं जितने भौतिक शरीर के स्वप्न लेकिन एक अन्य तल, अलग स्तर पर चेतन हैं। इसलिए अगर तुम अपने भाव शरीर के प्रति चेतन हो सको, तो उस आयाम के स्वप्न चेतन बन जाते हैं।

और जैसे भौतिक स्वप्नों को बाहर से निर्मित किया जा सकता है वैसे ही भाव शरीर के स्वप्न भी बाहर से उद्दीपित, निर्मित किए जा सकते हैं। और उसके उपाय हैं मंत्र उनमें से एक उपाय है जिससे भाव-दृश्य निर्मित किए जा सकते हैं–वे भाव-स्वप्न हैं। एक विशेष मंत्र, ध्वनि का एक विशेष संयोजन भाव शरीर के स्वप्न निर्मित कर सकता है। एक विशेष ध्वनि–एक विशेष शब्द–अगर उसका भाव-केंद्र पर बार-बार उच्चार किया जाए तो भाव शरीर के स्वप्न निर्मित कर सकता है। इसलिए अपने शिष्यों के सम्मुख गुरुओं का प्रकट हो जाना और कुछ नहीं बल्कि भाव शरीर की यात्रा, भाव शरीर का स्वप्न है।

अनेक विधियां हैं। ध्वनि उनमें से एक है। सुगंध भी एक उपाय है। सूफियों ने भाव-दृश्य निर्मित करने के लिए सुगंध का उपयोग किया है। मोहम्मद सुगंध के बहुत शौकीन थे। एक विशेष सुगंध किसी विशेष स्वप्न को निर्मित कर सकती है।

रंग से भी सहायता मिल सकती है। लीड बीटर ने एक बार एक नीलिमा का, मात्र नीलिमा का एक विशेष ढंग के नीले रंग का भाव-स्वप्न देखा। उसने संसार के सारे बाजारों में उस विशेष नीले रंग की खोज शुरू कर दी। और कई साल की खोज के बाद वह इटली की एक दुकान में मिला–उसी रंग का मखमल। उस मखमल के कपड़े का प्रयोग दूसरों में भी भाव-स्वप्न उत्पन्न करने के लिए किया गया।

शरीर का आभामंडल...प्रत्येक व्यक्ति का एक विशिष्ट आभामंडल होता है, और उसके रंग भाव शरीर के आयाम से आते हैं। जब कोई ध्यान में गहरा उतरता है और अदभुत रंगों को देखता है, और अदभुत सुगंधों का और ध्वनियों का और संगीत का अनुभव करता है जो नितांत अज्ञात हैं, तो वे भी स्वप्न हैं भाव शरीर के स्वप्न। लेकिन क्योंकि हमने मन के रहस्यों को केवल एक तल पर खोजा है, शारीरिक तल पर इसलिए इन स्वप्नों को या तो शरीर के तल पर परिभाषित किया गया या उन्हें नकार दिया गया। या उनकी उपेक्षा कर दी गई–या उन्हें पूरी तरह से अचेतन में ढकेल दिया गया।

किसी चीज को अचेतन में सरका देना असल में उसको नकार देना है। यह कहना कि हम इसके बारे में कुछ भी नहीं जानते–उससे भाग जाने की गुप्त तरकीब है। कुछ भी अचेतन नहीं है किंतु वह प्रत्येक चीज जो किसी गहरे तल पर चेतन है, अपने से पिछले तल पर अचेतन होती है। भौतिक शरीर के लिए भाव शरीर अचेतन है; भाव शरीर के लिए सूक्ष्म शरीर अचेतन है सूक्ष्म शरीर के लिए मनस शरीर अचेतन है। 'चेतन' का अभिप्राय है, वह जो जाना हुआ है। 'अचेतन' का अभिप्राय है वह जो अभी तक नहीं जाना गया है, अज्ञात है।

तथाकथित ' आत्मिक-दृश्य ' सूक्ष्म शरीर के हैं सूक्ष्म शरीर के स्वप्न। सूक्ष्म शरीर के स्वप्नों में तुम अपने पिछले जन्मों में जा सकते हो। यह तुम्हारे स्वप्नों का तीसरा आयाम है। तुम अपने पिछले जन्म में जा सकते हो। कभी-कभी किसी सामान्य स्वप्न में भी भाव स्वप्न का या सूक्ष्म स्वप्न का अंश हो सकता है। तब वह स्वप्न एक उलझन, एक ऊहापोह बन जाता है, तब तुम उसे समझ नहीं पाते हो। तब उसे समझना असंभव हो जाता है।

क्योंकि तुम्हारे सातों शरीर एक साथ अस्तित्व में हैं, और एक आयाम से कोई चीज दूसरे की सीमा रेखा को पार कर सकती है, प्रवेश कर सकती है अतिक्रमण कर सकती है। कभी-कभी सामान्य स्वप्नों में भी भाव शरीर या सूक्ष्म शरीर के स्वप्नों के अंश होते हैं। सामान्य स्वप्नों में भी कुछ ऐसा आ जाता है जो भौतिक शरीर का नहीं होता।

सूक्ष्म शरीर के तीसरे शरीर के स्वप्नों में तुम न केवल आकाश में यात्रा कर सकते हो बल्कि समय में भी यात्रा कर सकते हो। पहले भौतिक शरीर के स्वप्नों में तुम न तो समय में यात्रा कर सकते हो और न आकाश में। तुम अपनी भौतिक अवस्था और अपने विशिष्ट समय तक ही सीमित हो–जैसे कि रात दस बजे। यह दस बजे का समय तय है, इसी विशेष कमरे में, और इसी फिजियोलॉजिकल स्थान में जो तुमने घेर रखा है। इन्हीं में तुम स्वप्न देख सकते हो, लेकिन इनके पार नहीं। भाव शरीर, दूसरे शरीर में तुम आकाश में यात्रा कर सकते हो, किंतु समय में नहीं। तुम यहां पर सो रहे हो और किसी अन्य स्थान में हो सकते हो–यह आकाश में यात्रा है किंतु समय में नहीं। अभी भी रात के दस ही बजे हैं। तीसरे, सूक्ष्म शरीर में तुम समय के अवरोध का अतिक्रमण कर सकते हो—लेकिन केवल अतीत की ओर, भविष्य की ओर नहीं। सूक्ष्म मन अतीत में जा सकता है–अतीत की पूरी श्रृंखला में अनंत श्रृंखला में, अमीबा से आदमी तक–संपूर्ण प्रक्रिया में।

जुंग के मनोविज्ञान में सूक्ष्म मन को 'सामूहिक अचेतन' का नाम दिया गया है। मनोविज्ञान में पहले को चेतन दूसरे को अचेतन और तीसरे को सामूहिक अचेतन कहा जाता है। यह सामूहिक अचेतन नहीं है यह तुम्हारे जन्मों का निजी इतिहास है। कभी-कभी यह सामान्य स्वप्नों में प्रविष्ट हो जाता है, लेकिन ऐसा अक्सर बीमारी की अवस्था में होता है। स्वस्थ व्यक्ति के साथ यह नहीं होता। कोई व्यक्ति जो मानसिक रूप से रुग्ण है, उसमें ये तीनों मिले-जुले होते हैं। उसके तीनों शरीर तरल हो जाते हैं। बीमारी की अवस्था में ये तीनों शरीर अपनी सामान्य पृथकता खो देते हैं। इसीलिए बीमार व्यक्ति मानसिक रूप से रुग्ण व्यक्ति आमतौर से अपने पिछले जन्मों का स्वप्न देख सकता है, किंतु कोई उसका विश्वास नहीं करेगा। वह स्वयं भी इस पर विश्वास नहीं करेगा। वह कहेगा, यह तो बस एक स्वप्न था।

लेकिन यह साधारण स्वप्न नहीं है। यह सूक्ष्म शरीर का स्वप्न है। और सूक्ष्म शरीर के स्वप्न में बहुत अर्थ है, इसकी बहुत सार्थकता है। लेकिन तीसरा शरीर केवल अतीत के बारे में स्वप्न देख सकता है उसे देख सकता है जो हो चुका है, लेकिन उसे नहीं जो होने वाला है।

चौथा शरीर, मनस शरीर है। यह दोनों ओर की यात्रा करता है। यह एकतरफा नहीं है। यह अतीत में यात्रा कर सकता है यह भविष्य में यात्रा कर सकता है। यह मनस शरीर कभी-कभी भविष्य के बारे में स्वप्न देख सकता है। किसी परम आपातकाल में कोई सामान्य व्यक्ति भी भविष्य के चित्र देख सकता है भविष्य की एक झलक पा सकता है। कोई प्रियजन या तुम्हारा कोई निकटतम व्यक्ति मर रहा है। यह आपातकाल की एक ऐसी अवस्था है कि यह संदेश तुम्हें तुम्हारे सामान्य स्वप्नों में भी दिया जा सकता है क्योंकि तुम स्वप्नों का कोई और आयाम नहीं जानते हो तुम्हें अन्य संभावनाओं का कोई पता नहीं है इसलिए यह संदेश तुम्हारे सामान्य स्वप्न में प्रविष्ट हो जाएगा।

लेकिन यह स्पष्ट नहीं होगा, क्योंकि कुछ ऐसे अवरोध हैं जिन्हें पार किया जाना है। और प्रत्येक अवरोध कुछ काट जाता है हर अवरोध में कुछ बदल जाता है और प्रत्येक मन के अपने प्रतीक होते हैं। इसलिए जब कोई स्वप्न एक शरीर से दूसरे शरीर में जाता है तो वह उस शरीर के प्रतीक के अनुसार बदल जाता है। तब हर बात उलझ जाती अगर तुम स्पष्ट रूप से स्वप्न देखो, जैसे कि चौथे शरीर के स्वप्न होते हैं—दूसरे शरीरों के माध्यम से नहीं बल्कि चौथे शरीर के माध्यम से– तब तुम भविष्य में झांक सकते हो। किंतु केवल अपने भविष्य में। यह अब भी व्यक्ति के द्वारा उसके अपने भविष्य में झांकना है तुम दूसरों के भविष्य में नहीं झांक सकते हो।

अब चौथे शरीर के लिए समय नहीं होता है, क्योंकि अतीत भी उतना ही वर्तमान है जितना कि भविष्य वर्तमान है। इसीलिए विभाजन अर्थ खो देता है। अतीत भविष्य और वर्तमान वे एक हो जाते हैं। प्रत्येक बात 'अभी' बन जाती है अभी जो पीछे देख रहा है अभी जो आगे देख रहा है। यहां न अतीत है और न भविष्य

लेकिन फिर भी समय है। समय 'वर्तमान' के रूप में है। अब भी यह काल का प्रवाह है। अब भी तुम्हें अपने मन को एकाग्र करना पड़ेगा। तुम अतीत की ओर देख सकते हो, किंतु यह एकाग्रता होगी, तब भविष्य और वर्तमान ओझल हो गए होंगे। वे तुम्हारे सामने नहीं होंगे। जब तुम भविष्य की ओर एकाग्र होते हो तब वे दोनों अनुपस्थित होंगे। वहां एक क्रमबद्धता होगी। तुम संपूर्ण को एक साथ नहीं देख सकते हो। समय होगा, किंतु अतीत वर्तमान और भविष्य नहीं होंगे। और यह तुम्हारी निजी स्वप्नावस्था होगी।

पांचवां शरीर, आत्मिक शरीर निजता का आयाम पार कर लेता है। समय का आयाम पार कर लेता है। अब तुम शाश्वत में होते हो और स्वप्नों को एक अन्य ढंग एक और आयाम मिल जाता है। यह आयाम जैसे तुम हो, उससे संबद्ध नहीं है, बल्कि यह चेतना के साथ जैसी वह है, संबद्ध है। जहां तक चेतना का संबंध है, यह सामूहिक हो जाती है। अब तुम चेतना का संपूर्ण अतीत जानते हो किंतु भविष्य नहीं जानते, चेतना का संपूर्ण अतीत ज्ञात हो जाता है।

इस पांचवें शरीर के माध्यम से सृष्टि की सारी पुराण-कथाएं पैदा हुई हैं। पांचवें शरीर के स्वप्नों के माध्यम से...सृष्टि की पुराण कथाएं...वे सभी एक सी हैं। प्रतीक भिन्न हैं, कहानियां भी कुछ अलग हैं लेकिन ईसाई या हिंदू या यहूदी या मिस्र की परंपराओं की सृजन की सारी पुराण-कथाएं–यह संसार कैसे रचा गया, यह अस्तित्व में कैसे आया–उन सभी में एक सी समानताएं हैं; उन सभी में समानता की एक अंतर-धारा है। पांचवें मन के द्वारा और उसके स्वप्नों के माध्यम से, यह झलक–ऐसे स्वप्न के माध्यम से, यह झलक। विराट जलप्रलय की कहानियां.. सारी दुनिया में प्रचलित हैं! उनका कहीं कोई रिकॉर्ड नहीं है। लेकिन फिर भी रिकॉर्ड है और यह रिकॉर्ड पांचवें मन आत्मिक शरीर से संबद्ध है। वह मन उनके बारे में स्वप्न देख सकता है।

और तुम भीतर जितना प्रवेश करते जाते हो, स्वप्न उतना वास्तविकता के निकट से निकटतर होता जाता है। भौतिक शरीर का स्वप्न इतना वास्तविक नहीं होता है। उसकी अपनी वास्तविकता है पर वह इतना वास्तविक नहीं है। भाव शरीर के स्वप्न कुछ अधिक वास्तविक हैं सूक्ष्म शरीर के स्वप्न और अधिक वास्तविक हैं मनस शरीर के स्वप्न लगभग वास्तविक ही हैं और पांचवें शरीर में तुम अपने स्वप्नों में प्रामाणिक रूप से यथार्थ को जानते हो। अब वास्तविकता को जानना संभव है। इसलिए अब इसे स्वप्न कहना भी ठीक नहीं है। लेकिन यह स्वप्न ही है क्योंकि वास्तविकता ऑब्जेक्ट के रूप में सामने नहीं है। यह एक सब्जेक्टिव अनुभव के रूप में है लेकिन इसका अपना ऑब्जेक्टिव अस्तित्व भी है।

ऐसे दो व्यक्ति जिन्होंने पांचवें शरीर का साक्षात कर लिया है एक साथ स्वप्न देख सकते हैं जो कि चौथे शरीर तक संभव नहीं है। तुम निजी स्वप्न देखोगे मैं निजी स्वप्न देखूंगा और मिल कर स्वप्न देखने का कोई उपाय नहीं है। चौथे शरीर तक हम स्वप्नों में सहभागी नहीं हो सकते हैं। लेकिन पांचवें शरीर से एक ही स्वप्न अनेक लोगों द्वारा एक साथ देखा जा सकता है। इसीलिए एक अर्थों में वे ऑब्जेक्टिव बन जाते हैं। पांचवें शरीर में हम अपने स्वप्नों की अपने अनुभवों की तुलना कर सकते हैं। यही कारण है कि कैसे अनेक लोगों ने पांचवें शरीर में स्वप्न देखे और उन सभी ने समान पुराण कथाओं को जाना। ये पुराण कथाएं एक-एक व्यक्ति द्वारा नहीं रची गई हैं–सृष्टि रचना की पुराण कथाएं वह विराट प्रलय आदि-आदि। इन्हें उन विशेष विचारधाराओं द्वारा विशेष परंपराओं द्वारा विशेष समूहों के द्वारा निर्मित किया गया है जो एक साथ कार्य कर रहे थे। पांचवें शरीर के स्वप्न आश्चर्यजनक रूप से बहुत कुछ वास्तविक हो जाते हैं।

पिछले चारों प्रकार के स्वप्न एक प्रकार से अवास्तविक हैं। क्योंकि पहली बात वे व्यक्तिगत हैं। दूसरी बात किसी और व्यक्ति के तुम्हारे स्वप्न में सहभागी होने की कोई संभावना नहीं है। इस अनुभव को बांट लेने की कोई संभावना नहीं है, इसकी प्रामाणिकता की जांच कर पाने की कोई संभावना नहीं है–कहीं यह अब भी कोई

कल्पना तो नहीं है। और कल्पना और स्वप्नों में भेद होता है। कल्पना ऐसी चीज है जिसे तुमने प्रक्षेपित किया है, और स्वप्न ऐसी चीज है जो अस्तित्व में नहीं है–तुमने इसे जान लिया है। इसलिए जैसे-जैसे भीतर की ओर जाना होगा, स्वप्न देखना कम काल्पनिक कम आभासी और अधिक ऑब्जेक्टिव, अधिक वास्तविक अधिक प्रामाणिक हो जाता है।

सभी धर्मशास्त्रीय अवधारणाएं पांचवें शरीर ने निर्मित की हैं। उनकी भाषा उनके शब्द, उनके प्रतीक उनकी धारणाएं भिन्न हैं, लेकिन मौलिक रूप से वे एक जैसे हैं—और वे पांचवें चक्र के पांचवें शरीर के स्वप्नों के पांचवें आयाम के द्वारा देखे गए हैं।

आगे है छठवां शरीर, कांजिक बॉडी ब्रह्म शरीर। अब तुम चेतना की सीमा पार कर लेते हो। अचेतन चेतन, पदार्थ मन इनके भेद मिट जाते हैं। छठवां ब्रह्म शरीर ब्रह्मांड के स्वप्न देखता है। चेतना के बारे में स्वप्न नहीं देखता, इनसानों के बारे में स्वप्न नहीं देखता अब कोई भी वस्तु सम्मिलित नहीं है। अब तुम चेतना का अतिक्रमण कर जाते हो। ऐसा नहीं कि तुम अचेतन हो जाते हो बल्कि अचेतन संसार चेतन हो जाता है। अब प्रत्येक चीज जीवित और चेतन होती है। यहां तक कि जिसे हम पदार्थ कहते हैं, वह भी पदार्थ नहीं, बल्कि चेतन हो जाता है।

छठवें शरीर में ब्रह्मांडीय सत्यों के स्वप्नों का साक्षात होता है। ब्रह्म और माया के सिद्धांत, अद्वैतवाद अनंत की अवधारणाएं ये सभी छठवें प्रकार के स्वप्नों में प्रत्यक्ष हो जाते हैं। जिन लोगों ने ब्रह्मांडीय आयाम में स्वप्न देखे उन्होंने महान व्यवस्थाओं की रचना की। यहां भी प्रतीकों में भेद है लेकिन कोई बहुत अधिक अंतर नहीं है। स्मृति अब प्रतीकों में बंधी हुई नहीं रहती। भाषा एक आमंत्रण बन जाती है। भाषा किसी की ओर संकेत भर करती है बस स्पर्श करती है, किंतु अब भी यह भाषा विधायक है। हमने निजता को पार कर लिया है, हमने चेतना को पार कर लिया है, हमने समय और आकाश को पार कर लिया है, लेकिन अब भी भाषा विधायक है।

छठवें प्रकार का मन होने के आयाम में स्वप्न देखता है, न होने के आयाम में नहीं विधायक अस्तित्व के स्वप्न देखता है अनअस्तित्व के नहीं। अब भी वहां पर अस्तित्व के प्रति पकड़ है, अब भी अनअस्तित्व से भय है। पदार्थ और मन एक हो चुके हैं किंतु अस्तित्व और अनअस्तित्व एक नहीं हुए हैं होना और न होना एक नहीं हुआ है। वे अभी तक भिन्न हैं। यह अंतिम अवरोध है।

इसके बाद है सातवां शरीर, निर्वाण शरीर जो विधायकता की सीमा पार कर लेता है और शून्यता में छलांग लगा लेता है। सातवें शरीर के पास अपने स्वयं के स्वप्न हैं, अनअस्तित्व के स्वप्न, ना-कुछ के स्वप्न शून्यता के स्वप्न। 'हां' पीछे छूट गई है और 'न' भी अब निष्किय हो जाती है। अब न भी 'न' नहीं रही; ना-कुछ होना भी अब कुछ नहीं है। बल्कि यह ना-कुछपन अब और भी असीम हो गया है। क्योंकि एक अर्थ में विधायक कभी असीम नहीं हो सकता। विधायक की सीमा होगी ही। हम कितना भी विचार कर लें, हम कितनी भी कल्पना कर लें विधायक होने में सीमा होगी ही। केवल न–होना ही सीमा रहित आयाम हो सकता है।

इस तरह सातवें शरीर के अपने स्वप्न होते हैं। अब कोई प्रतीक नहीं है अब कोई रूप नहीं है। अब अरूप है। अब कोई ध्वनि नहीं है बल्कि सन्नाटा है। अब यह मौन-मौन का यह स्वप्न संपूर्ण अनंत है।

तो ये सात शरीर हैं। और सातों शरीरों के अपने स्वप्न हैं। अब एक बात समझ लेने जैसी है कि ये सात शरीर और स्वप्नों के ये सात आयाम वास्तविकता के सात रूपों को जानने में रुकावट बन सकते हैं।

तुम्हारे भौतिक शरीर के पास सत्य को जानने का उपाय है और इसके बारे में स्वप्न देखने का भी। जब तुम भोजन करते हो, तो यह वास्तविकता है। किंतु जब तुम स्वप्न देखते हो कि तुम भोजन कर रहे हो तो यह वास्तविकता नहीं है। बल्कि यह एक विकल्प है वास्तविक भोजन का एक विकल्प। भौतिक शरीर की अपनी

वास्तविकता है और स्वप्न देखने की अपनी विधि है। ये दो ढंग हैं, जिनसे भौतिक शरीर कार्य करता है। और ये दोनों ढंग एक-दूसरे से पूर्णत: भिन्न हैं बिलकुल अलग हैं।

तुम जितना अधिक केंद्र की ओर जाओगे वास्तविकता और स्वप्नों की ये रेखाएं एक-दूसरे के निकट और निकटतर होती चली जाएंगी वैसे ही जैसे कि किसी वृत्त की परिधि से वृत्त के केंद्र की ओर खींची गई रेखाएं जैसे-जैसे तुम केंद्र के निकट जाते हो पास और पास आने लगती हैं। अगर तुम परिधि की ओर बाहर की ओर जाओ तो वे दूर और एक-दूसरे से बहुत दूर होती जाती हैं। जहां तक भौतिक शरीर का संबंध है, स्वप्न और सत्य बहुत दूर हैं और उनके बीच की दूरी सर्वाधिक है। इसलिए स्वप्न असत्य हो जाते हैं वास्तविकता असली है और स्वप्न असत्य बन जाते हैं। वे कल्पना बन जाते हैं।

लेकिन दूसरे शरीर, भाव शरीर में यह अलगाव इतना अधिक नहीं होगा। वास्तविकता और स्वप्न और पास आ जाते हैं। क्या वास्तविक है और क्या स्वप्न है यह जानना भौतिक शरीर की तुलना में भाव शरीर में अधिक कठिन है क्योंकि वे निकट आ गए हैं। किंतु फिर भी अंतर जाना जा सकता है।

अगर तुम्हारे भाव शरीर की यात्रा असली यात्रा थी तो तुम तब भी यात्रा कर लोगे जब तुम जागे हुए हो। और अगर यह स्वप्न था तो यह तब ही घटित होगी जब तुम सो रहे हो। स्वप्न देखने के लिए तुम्हारा नींद में होना जरूरी है और वास्तविक की अनुभूति के लिए तुम्हें जागा हुआ होना चाहिए। जब तुम सच में अपने भाव शरीर में यात्रा करते हो तब तुम पूरी तरह से जागे हुए होते हो। जब तुम स्वप्न में यात्रा करते हो तो तुम जागे हुए नहीं होते तुम सोए हुए होते हो। अंतर जानने के लिए तुम्हें भाव शरीर के तल पर जाग्रत होना पड़ेगा।

और दूसरे शरीर के तल पर जागने की विधियां हैं। मंत्र की पुनरुक्ति की विधि जप की विधि आतरिक कार्यप्रणाली तुम्हें बाहर के संसार से अलग कर देती है। तुम एक भीतरी वर्तुल में होते हो घूमते रहते हो, घूमते रहते हो, और घूमते ही रहते हो, तुम्हें बाहर के संसार से कुछ समय के अवकाश की जरूरत होती है।

अगर तुम इस पुनरुक्ति के कारण सो जाते हो–यह सतत पुनरावृत्ति एक सम्मोहित निद्रा पैदा कर सकती है–अगर तुम सो जाते हो तो तुम स्वप्न देखोगे। किंतु अगर तुम अपने जप के प्रति बोधपूर्ण रह सको और इससे तुम पर कोई सम्मोहक प्रभाव न पड़े तो जहां तक भाव शरीर का संबंध है तुम वास्तविकता को जानोगे।

तीसरे शरीर सूक्ष्म शरीर में वास्तविकता और स्वप्न के अंतर को जान पाना और भी कठिन होता है क्योंकि सीमा-रेखाएं और निकट आ चुकी हैं। असली सूक्ष्म शरीर, यदि तुमने असली सूक्ष्म शरीर को जाना है, तो तुम मृत्यु के भय के पार चले जाओगे, क्योंकि उस बिंदु से व्यक्ति अमरत्व को जान लेता है। लेकिन अगर सूक्ष्म शरीर का यह स्वप्न ही है वास्तविकता नहीं है तो तुम मृत्यु के भय से अत्यंत पंगु हो जाओगे। यही भेद का बिंदु है यही पहचान की कसौटी है मृत्यु का भय।

जो व्यक्ति विश्वास करता है कि आत्मा अमर है और बार-बार इसे दोहराता है और अपने आपको सांत्वना दिए चला जाता है वह यह नहीं जान पाएगा कि सूक्ष्म शरीर में जो यथार्थ है और सूक्ष्म शरीर में जो स्वप्न है उनमें क्या अंतर है। अमरत्व में विश्वास नहीं करना है, इसे जानना है। और जानने से पूर्व, इसके बारे में संदेह होना चाहिए, अनिश्चितता होनी चाहिए। केवल तब जब यह तथ्य तुम पर उदघाटित हो जाता है कि तुम्हें नहीं मारा जा सकता है तभी तुम जानोगे कि तुमने इसे जाना है या बस स्वप्न में प्रक्षेपित कर लिया है। यह तुम्हें पता लग जाएगा।

अगर तुमने अमरत्व को एक विश्वास के रूप में लिया है और इसका अभ्यास किया है तो यह तुम्हारे सूक्ष्म मन तक पहुंच सकता है। तब तुम स्वप्न देखना शुरू कर दोगे। किंतु यह बस एक स्वप्न होगा। अगर तुम्हारे पास ऐसा कोई विश्वास नहीं है, बस जानने की खोजने की एक प्यास है बिना यह जाने कि क्या खोजा जाना है बिना

यह जाने कि क्या मिलेगा, बिना किसी पूर्व- धारणा या पूर्वाग्रह के–अगर तुम बस शून्य में खोज रहे हो तो तुम अंतर को जान लोगे। जो लोग ऐसे विश्वास की दशा में होते हैं वे बस सूक्ष्म शरीर में स्वप्न देखते रहते हैं और वास्तविकता को नहीं जानते हैं।

चौथे शरीर में ये दोनों, स्वप्न और वास्तविकता पड़ोसी हो जाते हैं। और उनके चेहरे इतने एक रूप हो जाते हैं जैसे कि वे जुड़वा हों और उनमें एक को दूसरे की तरह समझ लेने की पूरी संभावना है। मनस शरीर ऐसे स्वप्न देख सकता है जो इतने यथार्थ लगें कि वास्तविक जैसे प्रतीत हों। और उन स्वप्नों को निर्मित करने की विधियां हैं। योग की, तंत्र की और बहुत विधियां हैं। अगर कोई व्यक्ति उपवास एकांत, अंधकार आदि का अभ्यास कर रहा हो, तो वह चौथे प्रकार के स्वप्न मानसिक स्वप्न निर्मित कर लेगा। और वे इतने वास्तविक होंगे उस यथार्थ से भी अधिक वास्तविक जो हमें चारों ओर से घेरे हुए है।

अगर तुम्हें मैं अपने चौथे प्रकार के स्वप्न में देख सकूं तो तुम्हारा असली रूप उस रूप की तुलना में फीका पड जाएगा, क्योंकि वहां पर मन अपनी पूरी सृजनात्मकता में है–बिना किन्हीं बाह्य बाधाओं के बिना किन्हीं बाहरी वर्गीकरणों के बिना किन्हीं मानसिक सीमाओं के। अब मन सृजन करने के लिए पूर्णत: मुक्त है। कवि, चित्रकार, इस तरह के लोग स्वप्नों के चौथे प्रकार में जीते हैं। सभी कलाएं स्वप्नों के चौथे प्रकार द्वारा निर्मित हुई हैं। जो व्यक्ति स्वप्नों के इस चौथे आयाम में स्वप्न देख सकता है वह महान कलाकार हो सकता है परंतु ज्ञानी नहीं।

मन के चौथे आयाम में, चौथे शरीर में व्यक्ति को किसी भी प्रकार के मानसिक सृजन के प्रति होशपूर्ण रहना पड़ेगा। उसे कुछ भी निर्मित नहीं करना चाहिए, वरना वही निर्मित हो जाएगा। उसे कुछ भी प्रक्षेपित नहीं करना चाहिए, वरना वही निर्मित हो जाएगा। व्यक्ति को कोई इच्छा नहीं करनी चाहिए वरना इस बात का पूरा खतरा है कि वह इच्छा पूरी हो जाएगी। और न केवल अंतस के लोक में बल्कि बाह्य जगत में भी इच्छा पूरी हो जा सकती है। चौथे शरीर में मन बहुत शक्तिशाली, बहुत सुस्पष्ट होता है। यह मन के लिए अंतिम घर है। इसके बाद अ-मन आरंभ हो जाता है।

चौथा शरीर मन का, चौथे मन का मूल-स्रोत है इसलिए तुम कुछ भी निर्मित कर सकते हो। व्यक्ति को सजग रहना चाहिए। व्यक्ति को इस बात के प्रति निरंतर सजग रहना चाहिए कि उसके भीतर कोई भी वासना, कोई भी कल्पना, कोई प्रतिमा कोई देवता, कोई देवी, कोई गुरु न हो। वरना वे सभी तुमसे निर्मित हो जाएंगे। तुम उनके सष्टा होओगे। और ये अनुभूतियां इतनी आनंददायी हैं कि तुम चाहोगे उन्हें निर्मित करना।

साधक के लिए यह अंतिम अवरोध है। अगर कोई इसको पार कर लेता है, तो उसे इससे बड़ी कोई और रुकावट नहीं मिलेगी। अगर तुम बोधपूर्ण हो अगर तुम चौथे शरीर में बस एक साक्षी हो, तो तुम यथार्थ को जान लेते हो। अन्यथा तुम स्वप्न देखते रह सकते हो। स्वप्न बहुत अच्छे होंगे कोई वास्तविकता इनसे तुलना न कर पाएगी। वे हर्षविभोर करने वाले होंगे उनसे किसी भी आनंद की तुलना नहीं हो सकती है।

इसलिए व्यक्ति को इस हर्षविभोरता के इस आनंद के इस प्रसन्नता के प्रति बोधपूर्ण रहना है और उसको किसी भी प्रकार की मानसिक प्रतिमा से सावधान रहना है। जैसे ही कोई प्रतिमा आती है, चौथा मन स्वप्न में बहने लगेगा। प्रतिमा मन को भटका देगी, तुम स्वप्न देखने लगोगे।

चौथे प्रकार के स्वप्नों को सिर्फ तभी रोका जा सकता है, केवल तभी उनसे बचा जा सकता है केवल तभी उन्हें निर्मूल किया जा सकता है जब तुम बस एक साक्षी हो जाओ। इसलिए यह साक्षी होना मूल बात है। साक्षी होने से अंतर निर्मित हो जाता है, क्योंकि अगर यह स्वप्न है तो तादात्म्य होगा। तुम उसके साथ तादात्म्य कर

लोगे। जहां तक चौथे शरीर और उसके स्वप्नों का प्रश्न है तादात्म्य ही स्वप्न है। सजगता और साक्षी बन गया मन यथार्थ की ओर जाने वाला पथ है।

पांचवें शरीर में दोनों में कोई अंतर नहीं होता? स्वप्न और यथार्थ एक हो जाते हैं। द्वैत का हर रूप खो जाता है। पांचवें शरीर में अब व्यक्ति बिना होश के भी हो सकता है–सजगता का कोई प्रश्न नहीं है। अगर तुम बेहोश हो, तो भी तुम अपनी बेहोशी के प्रति होशपूर्ण रहोगे। अब स्वप्न और यथार्थ एक-दूसरे के प्रतिबिंब हो जाते हैं। वे एक जैसे होते हैं। पर एक भेद होता है। अगर मैं अपने आप को दर्पण में देखता हूं तो मुझमें और मेरे प्रतिबिंब में कोई अंतर नहीं होता लेकिन एक भेद होता है। मैं वास्तविक हूं और दर्पण में दिख रही छवि वास्तविक नहीं है।

पांचवां मन, यदि उसने कुछ धारणाएं बना ली हैं, तो वह अपने आप को दर्पण में जानने के भ्रम में पड़ सकता है। व्यक्ति अपने आप को जानेगा, किंतु दर्पण के माध्यम से–वैसा नहीं जैसा कि वह है, बल्कि वैसा जैसा कि वह प्रतिबिंबित हो रहा है। यही एकमात्र...एक प्रकार से यह और भी कठिन है, एक प्रकार से इतना खतरनाक नहीं है। भले ही तुम दर्पण में देख रहे हो लेकिन तुम अपने आप को ही देख रहे हो। इस अर्थ में यहा पर कोई खतरा नहीं है। लेकिन दूसरे अर्थों में इसमें काफी खतरा है। यह हो सकता है कि तुम संतुष्ट हो जाओ और दर्पण में दिख रही छवि को असली समझ बैठो।

जहां तक पांचवें शरीर का प्रश्न है, कोई खतरा नहीं है। लेकिन जहां तक छठवें शरीर का प्रश्न है, खतरा है। अगर तुमने अपने आप को दर्पण में देखा है, तो तुम पांचवें शरीर की सीमा पार नहीं करोगे। तुम छठवें शरीर में नहीं जाओगे, क्योंकि दर्पणों के द्वारा तुम कोई भी सीमा पार नहीं कर सकते हो। ऐसे लोग हुए हैं जो पांचवें में ही रुके रहे–वे लोग जो कहते हैं कि अनंत आत्माएं हैं और प्रत्येक आत्मा की अपनी निजता है–ये लोग पांचवें शरीर में ही ठहरे हुए हैं और वहीं पर रुक गए हैं, क्योंकि उन्होंने अपने आपको जाना तो है, लेकिन प्रत्यक्ष रूप से नहीं जाना है, बल्कि दर्पण के माध्यम से जाना है।

और यह दर्पण आता कहां से है? यह दर्पण धारणाओं से आता है... धारणाओं के माध्यम से आता है 'मैं आत्मा हूं–शाश्वत अमर। मैं एक आत्मा हूं–मृत्यु से परे जन्म से परे। अपने आपको बिना जाने आत्मा के रूप में मान लेने से दर्पण बन जाता है। और अगर दर्पण बन गया है तो तुम अपने आप को जानोगे, लेकिन वैसा नहीं जैसे कि तुम हो, बल्कि तुम्हारा वह रूप जानोगे जो तुम्हारी धारणाओं के माध्यम से प्रतिबिंबित हो रहा है। अंतर केवल यह होगा कि अगर यह ज्ञान दर्पण के माध्यम से आया है तो यह स्वप्न है और अगर यह सीधा है, प्रत्यक्ष है बिना किसी दर्पण के माध्यम से आया है, तो यह वास्तविक है।

यही एक मात्र भेद है किंतु यह भेद विराट है–उन शरीरों के संबंध में नहीं जिनको तुमने पार कर लिया है, बल्कि उन शरीरों के संबंध में जिनको अभी भी पार किया जाना है। कोई व्यक्ति इस बारे में कैसे सजग हो सकता है कि वह पांचवें शरीर में स्वप्न देख रहा है या वास्तविकता में जी रहा है? इसका एकमात्र उपाय है कि व्यक्ति को हर प्रकार के सिद्धांतों को छोड़ देना चाहिए व्यक्ति को हर प्रकार के शास्त्रों का त्याग कर देना चाहिए व्यक्ति को हर प्रकार के दर्शनशास्त्र से मुक्त हो जाना चाहिए। अब कोई गुरु नहीं होना चाहिए, अन्यथा वह गुरु ही दर्पण बन जाएगा। यहां से आगे कोई गुरु नहीं। यहां से आगे तुम अकेले हो, पूरी तरह से अकेले। किसी को अब पथ-प्रदर्शक के रूप में साथ नहीं रखना चाहिए, अन्यथा वह पथ-प्रदर्शक ही दर्पण बन जाएगा।

यहां से आगे एकांत पूर्ण और समग्र होता है। अकेलापन नहीं, वरन एकांत। अकेलापन सदा दूसरों से संबंधित होता है, एकांत स्वयं से संबंधित है। जब हमें किसी की कमी, किसी के साथ की कमी अनुभव होती है, तो हमें अकेलापन लगता है। हमें अकेलापन तभी लगता है जब किसी की कमी की अनुभूति, साथी के न होने की

अनुभूति होती है। हमें एकांत की अनुभूति तब होती है, जब हमें अपने होने की अनुभूति होती है। यहां से व्यक्ति को एकांत में हो जाना है अकेला नहीं। यहां से व्यक्ति को एकांत में हो जाना है। शब्दों अवधारणाओं, सिद्धांतों, दर्शनशास्त्रों, नीतिशास्त्रों, गुरुओं, शास्त्रों ईसाइयत, हिंदू बुद्ध, ईसा, कृष्ण, महावीर सभी से अलग होकर पूर्ण एकांत–अब व्यक्ति को एकांत में हो जाना है। अन्यथा वहां पर जो भी उपस्थित होगा, दर्पण बन जाएगा। बुद्ध अब दर्पण हो जाएंगे–बहुत प्यारे लेकिन बहुत खतरनाक।

अगर तुम एकाकी हो तो यही कसौटी है, क्योंकि अब ऐसा कुछ भी नहीं है जिसमें तुम प्रतिबिंबित हो सको। पांचवें शरीर के लिए उचित शब्द है–ध्यान। ध्यान का अभिप्राय है पूरी तरह से एकाकी हो जाना– किसी भी प्रकार के मनन से हट कर एकाकी होना। इसका अर्थ है अ-मन होना। अगर मन किसी भी रूप में रह गया, तो वह दर्पण बन जाएगा और तुम उसमें प्रतिबिंबित हो जाओगे। अब व्यक्ति को बिना विचारों के बिना मनन के अ-मन होना चाहिए।

छठवें शरीर में यह भेद भी नहीं रहा। लेकिन फिर भी बीच में कुछ आ जाता है। अब कोई दर्पण नहीं है। अब ब्रह्म है। तुम खो गए हो। तुम अब नहीं बचे स्वप्न देखने वाला नहीं बचा। किंतु स्वप्न अब भी स्वप्न देखने वाले के बिना हो सकता है। और जब स्वप्न देखने वाले के बिना स्वप्न होता है तो वह प्रामाणिक यथार्थ की भांति प्रतीत होता है। वहां मन नहीं है। सोच-विचार करने वाला कोई भी नहीं है। जो कुछ भी जाना गया है जान लिया जाता है और वह ज्ञान बन जाता है। सृजन की वे पुराण-कथाएं आती हैं और तिरती हैं। तुम नहीं हो वस्तुएं बस तिर रही हैं। वहां निर्णय करने वाला कोई नहीं होता स्वप्न देखने वाला कोई नहीं होता।

किंतु वह मन जो नहीं है, वह अभी भी है। वह मन जो विलीन हो गया है, अब भी है–निजी मन की भांति नहीं, वरन ब्रह्मांडीय समग्रता की भांति। तुम नहीं हो, परंतु ब्रह्म है। इसीलिए कहा जाता है कि यह संसार ब्रह्म का, छठवें शरीर का स्वप्न है। यह सारा संसार, यह सारा ब्रह्मांड स्वप्न है माया है। लेकिन हमारा व्यक्तिगत स्वप्न नहीं बल्कि समग्र का स्वप्न। समग्र स्वप्न देख रहा है। तुम नहीं हो लेकिन समग्र है।

अब एकमात्र अंतर होगा क्या यह विधायक है? यदि यह विधायक है, तो यह छलावा है स्वप्न है क्योंकि परम अर्थों में केवल नकार होता है। परम अर्थों में जब सभी कुछ अरूप पर आ चुका है जब सभी कुछ मूल-स्रोत पर वापस आ गया है, तब प्रत्येक चीज है भी और फिर भी नहीं है। बस विधायक ही बचा है। इसके भी पार जाना होगा।

इसलिए अगर छठवें शरीर में विधायक खो जाए तो तुम सातवें में प्रविष्ट हो जाओगे। छठवें की वास्तविकता...छठवें की असलियत सातवें का द्वार है। अगर वहां कुछ भी विधायक नहीं है–न कोई पुराण कथा, न कोई प्रतिमा–तब स्वप्न समाप्त हो चुका है। तब वहां वही है जो है तथाता। अब वहां किसी चीज का अस्तित्व नहीं है सिर्फ अस्तित्व है। चीजें नहीं हैं. बल्कि स्रोत है। वृक्ष नहीं है, पर बीज है।

जिन्होंने जाना है उन्होंने मन के इस प्रकार को बीज सहित समाधि, सबीज समाधि कहा है। प्रत्येक चीज खो चुकी है प्रत्येक चीज अपने मूल-स्रोत, ब्रह्मांडीय बीज, ब्रह्मांडीय अंडे में वापस आ गई है। प्रत्येक चीज वापस लौट आई है किंतु फिर भी बीज है। तो यह समाधि है–सबीज, बीज सहित। वृक्ष नहीं है, विकसित रूप नहीं है लेकिन बीज है। किंतु बीज से स्वप्न देख सकना अब भी संभव है इसलिए बीज को भी नष्ट करना पड़ेगा।

सातवें में न तो स्वप्न है और न वास्तविकता। तुम वास्तविकता को वहां तक देख सकते हो जहां तक स्वप्न देखना संभव हो। अगर स्वप्नों की कोई संभावना न हो, तब न तो यथार्थ बचता है और न ही भ्रम। इसलिए सातवां केंद्र है। अब स्वप्न और वास्तविकता एक हो गए हैं। कोई अंतर नहीं है। या तो तुम 'ना-कुछ' का स्वप्न देखते हो या तुम 'ना-कुछ' को जानते हो, किंतु यह 'ना-कुछपन' वही का वही बना रहता है।

अगर मैं तुम्हारे बारे में स्वप्न देखता हूं तो यह भ्रम है। अगर मैं तुम्हें देखता हूं तो यह वास्तविक है। लेकिन अगर मैं तुम्हारी अनुपस्थिति के बारे में स्वप्न देर्सू या मैं तुम्हारी अनुपस्थिति को देर्सू वहां कोई अंतर नहीं है। अगर तुम किसी चीज की अनुपस्थिति के बारे में स्वप्न देखो, तो वह स्वप्न वैसा ही होगा जैसी कि अनुपस्थिति अपने आप में है। केवल किसी विधायक चीज के बारे में वास्तविक अंतर होता है। इसलिए छठवें शरीर तक अंतर होता है। सातवें शरीर में केवल 'ना-कुछपन' बचता है। यहां बीज भी अनुपस्थित है। यह निर्बीज समाधि, बीजरहित समाधि है। अब यहां पर स्वप्नों की कोई संभावना नहीं है।

इस प्रकार से ये सात प्रकार के स्वप्न और सात प्रकार की वास्तविकताएं हैं। वे आपस में गुंथे हुए हैं। इसी के कारण इतनी उलझन है। किंतु अगर तुम सातों के मध्य अंतर कर लो अगर इसके बारे में स्पष्ट समझ तुम्हारे पास हो तो इससे काफी मदद मिल जाएगी। मनोविज्ञान अभी स्वप्नों के बारे में जानने से काफी दूर है। इसे जो कुछ भी पता है वह केवल भौतिक शरीर के स्वप्नों के बारे में है और कभी-कभी भाव शरीर के स्वप्नों के बारे में। लेकिन भाव शरीर के स्वप्नों की व्याख्या भी भौतिक शरीर के स्वप्नों की भांति की जाती है।

इस बारे में जुंग फ्रायड से कहीं अधिक गहरा गया है। किंतु मानवीय मन के उसके द्वारा किए गए विश्लेषण को पौराणिक धार्मिक विश्लेषण के रूप में लिया गया है। फिर भी उसके पास बीज है। अगर पाश्चात्य मनोविज्ञान को विकसित तो वह बुर्जग के माध्यम से होगा फ्रायड के माध्यम से नहीं। फ्रायड अग्रदूत था लेकिन अगर उसके विचारों से आसक्ति एक बंधन बन जाए तो हर अग्रदूत आगे के विकास के लिए एक अवरोध बन जाता है। अब यद्यपि फ्रायड तिथिबाह्य हो चुका है पाश्चात्य मनोविज्ञान अब भी अपने फायडीय–आरंभ से बंधा हुआ है। फ्रायड को अब इतिहास का हिस्सा बन जाना चाहिए। मनोविज्ञान को अब और आगे बढ़ जाना चाहिए।

अमरीका में वे प्रयोगशाला की विधियों के माध्यम से स्वप्नों के बारे में सीखने की कोशिश कर रहे हैं। वहां कई स्वप्न-प्रयोगशालाएं हैं। किंतु वहां पर जो विधियां उपयोग की जा रही हैं वे केवल भौतिक शरीर से संबंधित हैं। अगर स्वप्नों का पूरा संसार जानना हो–तो योग तंत्र और अन्य गुहा विधाओं का उपयोग करना पड़ेगा। हर प्रकार के स्वप्न के साथ एक समानांतर वास्तविकता है, और अगर यह सारी माया नहीं जानी गई अगर यह भ्रम का सारा संसार नहीं जाना गया, तो वास्तविकता को जान पाना असंभव है। सिर्फ माया के माध्यम से ही वास्तविक को जाना जा सकता है।

किंतु मैंने जो कुछ कहा है, उसे किसी सिद्धांत या किसी व्यवस्था के रूप में मत लो। बस इसे आरंभ का बिंदु बना लो, और सचेतन मन के साथ स्वप्न देखना शुरू करो। जब तुम अपने स्वप्नों में चेतन होते हो, केवल तभी वास्तविक को जाना जा सकता है।

हम अपने भौतिक शरीर के प्रति भी होशपर्णू नहीं हैं। हम उसके प्रति बेहोश बने रहते हैं। केवल तब जब इसका कोई भाग रुग्ण होता है, हम होशपूर्ण होते हैं। व्यक्ति को स्वस्थ दशा में शरीर के प्रति होशपूर्ण होना चाहिए। रुग्णावस्था में शरीर के प्रति होशपूर्ण होना तो आपातकालीन उपाय है। एक प्राकृतिक व्यवस्था प्रक्रिया है। जब शरीर का कोई हिस्सा रुग्ण हो, तो तुम्हारे मन को उस पर ध्यान देना ही पड़ता है, ताकि उसकी देखभाल की जा सके। लेकिन जिस पल वह अंग ठीक हो जाता है तुम फिर से उसके प्रति सो जाते हो।

तुम्हें अपने शरीर उसकी गतिविधियों उसकी सूक्ष्म संवेदनाओं उसके संगीत उसके मौन के प्रति बोधपूर्ण होना पड़ेगा। कभी शरीर मौन है कभी शोरगुल से भरा हुआ है, कभी विश्रांत है। हर स्थिति में यह अनुभूति इतनी भिन्न होती है कि हम उसके प्रति सजग नहीं हैं यह बात दुर्भाग्यपूर्ण है। जब तुम सोने के लिए जा रहे होते

हो तो तुम्हारे शरीर में सूक्ष्म परिवर्तन होते हैं। जब तुम सुबह नींद से बाहर आ रहे होते हो तो पुन: परिवर्तन होते हैं। उनके प्रति व्यक्ति को सजग होना पड़ेगा।

सुबह के समय जब तुम अपनी आंखें खोलने जा रहे हो तो उन्हें एकदम से मत खोल दो। जब तुम सजग हुए कि अब नींद जा चुकी है तो अपने शरीर के प्रति बोधपूर्ण हो जाओ। अभी अपनी आखें मत खोलो। क्या घटित हो रहा है? भीतर एक महत परिवर्तन हो रहा है। नींद जा रही है और जागरण आ रहा है। तुमने सुबह का उगता हुआ सूरज देखा है? किंतु अपने शरीर को कभी जागते हुए नहीं देखा है। इसका अपना निजी सौंदर्य है। वहां तुम्हारे शरीर में भी सुबह और शाम होती है। इसे संध्या, संधिकाल कहा जाता है परिवर्तन और रूपांतरण का क्षण।

जब तुम सोने जा रहे हो, चुपचाप देखो–क्या घटित हो रहा है। नींद आ रही होगी–बोधपूर्ण हो जाओ। तभी तुम अपने भौतिक शरीर के प्रति वास्तविक रूप से सजग हो सकते हो। और जिस क्षण तुम इसके प्रति सजग हो जाते हो, तुम जान लोगे कि भौतिक शरीर के स्वप्न क्या हैं। तब सुबह तुम याद रखने में समर्थ हो जाओगे कि क्या भौतिक स्वप्न था और क्या नहीं। अगर तुम अपने शरीर की भीतरी अनुभूतियों, भीतरी जरूरतों और भीतरी लयबद्धताओं को जानते हो, तो जब वे तुम्हारे स्वप्नों में प्रतिबिंबित होती हैं, तब तुम उस भाषा को समझने में समर्थ हो जाओगे।

हमने अपने खुद के शरीर की भाषा को नहीं समझा। शरीर के पास अपनी बुद्धिमत्ता है। इसके पास हजारों-हजारों साल का अनुभव है। मेरे शरीर के पास मेरे पिता और मेरी माता का, और उनके माता-पिता का, और इसी भांति शताब्दियों और शताब्दियों का अनुभव है जिनके दौरान मेरे शरीर का बीज उस रूप में विकसित हुआ है जैसा कि यह इस समय है। इसके पास अपनी भाषा है। सबसे पहले व्यक्ति को इसे समझना पड़ेगा। जब तुम इसे समझ लोगे तभी तुम जानोगे कि भौतिक शरीर का स्वप्न क्या है। और तब, सुबह तुम भौतिक शरीर के स्वप्नों और अ-भौतिक शरीर के स्वप्नों में भेद कर सकते हो।

और तब एक नई संभावना खुलती है अपने भाव शरीर के प्रति बोधपूर्ण हो जाने की। सिर्फ तब उससे पहले नहीं। तुम और अधिक संवेदनशील हो जाते हो। तुम ध्वनियों, सुगंधों प्रकाश के अधिक सूक्ष्म तलों का अनुभव कर सकते हो। तब जब तुम चलते हो, तो तुम जानते हो कि तुम्हारा भौतिक शरीर चल रहा है भाव शरीर नहीं चल रहा है। भेद बिलकुल सुस्पष्ट होता है। तुम भोजन कर रहे हो, भौतिक शरीर भोजन कर रहा है भाव शरीर नहीं कर रहा है। भाव शरीर की प्यास है, भाव शरीर की भूख है भाव शरीर की अभीप्साए हैं परंतु ये सभी केवल तब देखी जा सकती हैं जब भौतिक शरीर को पूरी तरह से जान लिया गया हो। तब धीरे- धीरे अन्य शरीर जाने जाएंगे।

स्वप्न-विज्ञान एक गुहा विषय है। यह अभी तक अनखोजा अगात छिपा हुआ है। यह गुहा ज्ञान का हिस्सा है। पर अब समय आ चुका है कि हर चीज जो गुप्त थी प्रकट कर दी जाए। वह प्रत्येक बात जो अब तक छिपी हुई थी अब और ज्यादा नहीं छिपी रहनी चाहिए अन्यथा यह घातक सिद्ध हो सकता है।

अतीत में कुछ बातों के लिए यह आवश्यक था कि वे गुप्त बनी रहें। क्योंकि अज्ञानी के हाथों में जानकारी खतरनाक हो सकती है। यही बात पश्चिम में वैज्ञानिक जानकारी के साथ घट रही है। अब वैज्ञानिक इस संकट के प्रति सजग हुए हैं और वे गुप्त विज्ञानों का निर्माण करना चाहते हैं। राजनीतिज्ञों को परमाणु अस्त्रों के बारे में नहीं बताया जाना चाहिए। आगे होने वाली खोजें अज्ञात ही रहनी चाहिए। हमें उस समय की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी जब मनुष्य इतना सक्षम हो जाए कि जानकारी खोली जा सके और वह घातक भी न बने।

इसी प्रकार से अध्यात्म के क्षेत्र में पूरब में बहुत कुछ जाना गया था। किंतु अगर वह अज्ञानी लोगों के हाथ में पड़ जाता तो वह खतरनाक सिद्ध होता, इसलिए कुंजी छिपा दी गई थी। ज्ञान को गुप्त गुहा बना दिया था। उसे एक व्यक्ति से दूसरे को बहुत सावधानीपूर्वक दिया जाना था। लेकिन अब वैज्ञानिक प्रगति के कारण समय आ गया है कि इस ज्ञान को प्रकट कर दिया जाए। अगर आध्यात्मिक गुहा सत्य अब भी अज्ञात रहे तो विज्ञान खतरनाक सिद्ध होगा। उन्हें प्रकट कर देना होगा जिससे कि आध्यात्मिक ज्ञान वैज्ञानिक जानकारी के साथ कदम से कदम मिला कर चल सके।

स्वप्न-विज्ञान गुह्यत्तम आयामों में से एक है। मैंने इसके बारे में कुछ कहा है, जिससे कि तुम इसके प्रति सजग होना शुरू कर दो। किंतु मैंने तुम्हें इसका सारा विज्ञान नहीं कहा है। वह न तो आवश्यक है और न ही उससे कोई सहायता मिलेगी। मैंने अंतराल छोड़ दिए हैं। अगर तुम भीतर उतरोगे, तो वे अंतराल अपने आप भर जाएंगे। जो भी मैंने कहा है वह बस बाहरी पर्त है। यह इसके बारे में सिद्धांत बनाने के लिए काफी नहीं है, परंतु तुम्हारे आरंभ करने के लिए पर्याप्त है।

आज इतना ही

सातवां प्रवचन

सात शरीरों का अतिक्रमण

ओशो आपने कहा कि हमारे सात शरीर हैं : एक भाव शरीर एक मनस शरीर तथा कुछ और शरीर। कभी-कभी भारतीय भाषा को पाश्चात्य मनोविज्ञान की शब्दावली के साथ समायोजित कर पाना कठिन हो जाता है। पश्चिमी विचारधारा में हमारे पास इसके लिए कोई सिद्धांत नहीं हैं लेकिन आपने कल जिन शरीरों के बारे में बताया उनमें से कुछ शरीरों को मैंने पहचाना है और उनको अनुभव किया है। हम अपनी भाषा में इन विभिन्न शरीरों के नामों का अनुवाद कैसे कर सकते हैं? आत्मिक शरीर के बारे में कोई समस्या नहीं है; लेकिन भाव शरीर सूक्ष्म शरीर...?

तुम उनका अनुवाद कर सकते हो। पश्चिम ने उस दिशा में खोज नहीं की है, लेकिन पश्चिमी रहस्यवाद के पास इनके लिए नाम हैं शब्द हैं। जहां तक सतही चेतना के पार की खोज का प्रश्न है जुंग फ्रायड से बेहतर है। लेकिन जुंग भी बस एक शुरुआत भर है। तुम एक जर्मन विचारक स्टीनर्स की र-थोपोसॉफी से एक झलक पा सकते हो–और थियोसॉफिकल लेखों से भी कुछ झलक मिल सकती है। जैसे कि स्लावट्स्की की 'सीक्रेट डॉक्ट्रीन' 'आइसिस अनवेल्ड' और अन्य पुस्तकें। एनीबीसेंट लीड बीटर, कर्नल आल्कॉट की रचनाओं से भी कुछ झलकियां मिल सकती हैं फिर रोसीकुसियन की रचनाएं हैं; और वहां पश्चिम में हरमीस की महान परंपरा है और अति महान हरमीटिक परंपराएं हैं। वहां पर एक और रहस्यवादी परंपरा है जो प्राचीन एसीनीज से संबंधित है–जो कि जीसस के शिक्षक रहे हैं जीसस को उन्हीं के द्वारा दीक्षा दी गई थी। और हाल में ही हुए गुरजिएफ से भी मदद मिल सकती है और पी. डी. ऑस्पेस्की।...इस प्रकार से टुकड़ों में कुछ पाया जा सकता है और इन टुकड़ों को साथ-साथ रखा जा सकता है।

और तुम्हारा खुद का अनुभव बहुत सहायक हो सकता है। मैंने भी तुम्हारी शब्दावली में बात की है। मैंने सिर्फ एक शब्द का उपयोग किया है जो पश्चिमी भाषाओं में नहीं है सातवां, निर्वाण शरीर। शेष छह–भौतिक भाव, सूक्ष्म, मनस, आत्मिक और ब्रह्म–ये छह शब्द भारतीय नहीं हैं। केवल सातवां, 'निर्वाण' भारतीय है, क्योंकि पश्चिम में सातवें की बात कभी नहीं की गई। ऐसा इसलिए नहीं है कि वहां ऐसे लोग नहीं हुए जो सातवें को न जानते हों बल्कि इसलिए कि सातवां कुछ इस प्रकार का है कि उसके बारे में संवाद कर पाना असंभव है।

अगर तुमको ये शब्द कठिन लगते हों तो तुम बस 'पहला शरीर' 'दूसरा' 'तीसरा' 'चौथा' 'पांचवां' 'छठवां' 'सातवां' इस तरह के शब्दों का प्रयोग कर सकते हो। परंतु किसी भी विशेष शब्द का प्रयोग मत करो। बस पहला, दूसरा, तीसरा, चौथा–का उपयोग करो और उनका वर्णन कर दो। यह वर्णन उचित होगा, शब्दावली का कोई महत्व नहीं है।

इन सात शरीरों तक बहुत सी दिशाओं से पहुंचा जा सकता है। और जहां तक स्वप्नों का संबंध है फ्रायड, जुंग और एडलर के शब्दों का प्रयोग किया जा सकता है। जिसे वे चेतन रूप में जानते हैं जिसको वे चेतन कहते हैं वही पहला शरीर है। अचेतन दूसरा है–बिलकुल ठीक-ठीक वही नहीं, पर उसके काफी निकट। जिसको वे 'सामूहिक अवचेतन' कहते हैं–वह तीसरा शरीर है ठीक वही नहीं बल्कि कुछ ऐसा जो करीब-करीब वैसा है।

और अगर कोई समतुल्य शब्द व्यवहार में नहीं है तो नये शब्द गढ़े जा सकते हैं। वस्तुत: ऐसा करना सदा बेहतर है क्योंकि नये शब्दों के पास कोई पुरानी धारणा नहीं होती है। इसलिए जब कोई नया शब्द प्रयोग किया

जाता है तो क्योंकि कोई पुराना साहचर्य नहीं है इसलिए वह अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है और अधिक गहनता से समझ लिया जाता है। व्यक्ति का मन उस अवस्था में नहीं होता कि उसे पहले से ही पता है। जब किसी अज्ञात शब्द जिसका कोई गुप्त अर्थ हो का प्रयोग किया जाता है तो वह हमारे पुराने शब्दों के आदी मन में कहीं अधिक गहराई तक जाता है। इसलिए तुम नये शब्द गढ़ सकते हो।

भाव का अर्थ है जो आकाश और अंतरिक्ष से संबद्ध है। सूक्ष्म का अर्थ है सबसे छोटा, सूक्ष्म अंतिम परमाणविक जिसके पार पदार्थ का अस्तित्व नहीं रह जाता। मानसिक के लिए कोई परेशानी नहीं है। आत्मिक के लिए भी कोई कठिनाई नहीं है। ब्रह्मांडीय के लिए भी कोई मुश्किल नहीं है।

तब तुम सातवें निर्वाण शरीर पर आते हो। इसे समझ लेना बेहतर रहेगा कि निर्वाण का क्या अर्थ है। निर्वाण का अर्थ है पूर्णविराम, चरम शून्यता, अब बीज भी नहीं बचा है हर चीज समाप्त हो गई है। भाषाशास्त्र के हिसाब से इस शब्द का अर्थ है लौ का बुझ जाना लौ बुझ गई है रोशनी मिट गई है। तब तुम यह नहीं पूछ सकते कि वह कहां चली गई है। बस इसका होना अब नहीं रहा है।

निर्वाण का अभिप्राय है लौ का बुझ जाना। अब वह कहीं नहीं है या सब कहीं है। अब न तो कोई विशेष स्थान है जहां वह हो, न कोई विशेष समय का क्षण है जिसमें कि उसका अस्तित्व हो। अब वह अपने आप ही स्थान और समय है। अस्तित्व है या अनस्तित्व, अब इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। तुम दोनों शब्दों का उपयोग कर सकते हो क्योंकि वह सब कहीं है– या सब कहीं है या कहीं नहीं है। कहीं पर होने के लिए वह सब कहीं नहीं हो सकती है, और सब कहीं पर होने के लिए वह किसी विशेष स्थान पर नहीं हो सकती है। इसलिए 'कहीं नहीं' और 'सब कहीं' का एक ही अर्थ है। सातवें शरीर के लिए तुम निर्वाण शरीर का उपयोग कर सकते हो, क्योंकि उसके लिए कोई बेहतर शब्द नहीं है। और अगर तुम अपने स्वयं के अनुभवों में उतर कर देखो और वे तुम्हें कोई इसका समानांतर शब्द बता दें, तो और आसान हो जाता है। क्योंकि अगर तुमने कुछ जाना नहीं है और तुम्हारे पास केवल शब्द हैं खाली, खोखले बिना किसी अर्थ के. शब्दों में कोई भी अर्थ नहीं होता है। केवल अनुभव में अर्थ होता है।

और जब शब्द के पीछे अनुभव होता है, तो शब्द अर्थपूर्ण हो जाता है–वरना वह अर्थहीन और असंगत है। ऐसा प्रतीत होता है कि इसमें अर्थ है, तब भी जब कि वहां कोई अनुभव न हो, लेकिन वह केवल प्रतीत होना है–वह भाषा का भ्रम है। तो जब तुम्हें इसका थोड़ा अनुभव हुआ हो, तब तुम उस अनुभव को और गहरा कर सकते हो, और ऐसी विधियां हैं जिनका विशेष तल पर प्रयोग किया जा सकता है।

भौतिक शरीर से आरंभ करो और तब हर अगला कदम तुम्हारे लिए खुल जाता है। जब तुम पहले शरीर पर कार्य कर रहे होते हो तुम्हे दूसरे की झलकें मिलती हैं। इसलिए भौतिक शरीर से शुरू करो। उसके प्रति सजग होओ प्रत्येक क्षण सजग, क्षण-क्षण, और न केवल बाहर-बाहर से–क्योंकि हम अपने शरीर के प्रति बाहर से सजग हो सकते हैं, जैसा कि यह बाहर से दिखाई पड़ता है।

मैं अपने हाथ को देखता हूं मैं इसके प्रति ऐसे सजग हो सकता हूं जैसे कि मैंने इसको बाहर से देखा हो। लेकिन जब मैं अपनी आंखें बंद भी कर लेता हूं तब भी मुझे अपने हाथ की एक अंतर अनुभूति है। अब हाथ दिख नहीं रहा है लेकिन एक अनुभूति है। उसके होने की आंतरिक अनुभूति है। तो अपने शरीर के प्रति उस प्रकार से सजग मत होओ जैसा कि वह बाहर से दिखता है। यह तुमको भीतर की ओर नहीं ले जाएगा। अगर तुम अपने शरीर के प्रति इस प्रकार से सजग होते हो जैसा कि वह बाहर से दिखाई पड़ता है तो तुम उसके साथ कभी विकसित नहीं हो सकते हो क्योंकि भीतर की अनुभूति नितांत भिन्न है।

जब तुम इसे भीतर से अनुभव करते हो कि शरीर के भीतर होने का क्या मतलब है...मैं एक मकान को बाहर से देख सकता हूं यह एक बात है, भीतर से देखना कुछ और बात है। यह वही मकान है। लेकिन भीतर से यह कुछ और है। और भीतर से... बड़ा भेद यह है कि जब तुम इसे सिर्फ बाहर से देखते हो तो तुम इसके रहस्य नहीं जान सकते हो। तुम सिर्फ बाहरी दीवारों को जान सकते हो जैसा कि वे दूसरों को दिखाई पड़ती हैं।

अगर मैं अपने शरीर को बाहर से देखता हूं तो मैं इसको ऐसे ही देखता हू जैसा यह दूसरों को भी दिखाई पड़ता है। और भीतर से देखने का बिंदु केवल मेरे द्वारा ही जाना जा सकता है, और इसे कोई दूसरा नहीं जान सकता है। मेरा हाथ बाहर की ओर से—तुम इसे देख सकते हो और मैं इसे देख सकता हूं। यह कुछ ऐसी चीज है जो वस्तुगत हो गई है। जब तुम किसी कार्य में भागीदारी करते हो और मेरे साथ जानकारी को बांटते हो, तब उस दिशा से देखा गया हाथ मेरा ही नहीं रहा है। यह एक सार्वजनिक संपदा बन गया है। तुम भी इसे उतना ही जान सकते हो जितना कि मैं इसे जान सकता हूं।

जिस पल मैं इसे भीतर से देखता हूं केवल उस पल यह मेरा होता है और यह अनुभूति ऐसी होती है जिसे बांटा नहीं जा सकता है। तुम यह नहीं जान सकते हो कि मुझे भीतर से कैसा लग रहा है। सिर्फ मैं ही यह जान सकता हूं। इसलिए वह शरीर जिसे हम जानते हैं, वही शरीर नहीं है जो हमारा है। यह तो वह शरीर है जिसको सभी लोग बाहर से जानते हैं। यह वह शरीर है जिसको चिकित्सक प्रयोगशाला में जान सकते हैं। यह वह शरीर नहीं है जिसे जानने के लिए केवल मैं ही अधिकृत हूं।

यह निजी अनुभूति ही तुम्हें भीतर ले जा सकती है; जानकारी का सार्वजनिक आयाम तुम्हें भीतर की ओर नहीं ले जा सकता है। यही कारण है कि जीवविज्ञान या मनोविज्ञान, जो बाहर से किए गए निरीक्षण हैं हमारे भीतरी शरीरों की जानकारी की ओर हमें नहीं ले जा सकते–क्योंकि यह शरीर पहला शरीर ही एक मात्र शरीर है जिसकी जानकारी को बांटा जा सकता है। दूसरा शरीर पूरी तरह से निजी है। और इस भौतिक शरीर की जैसा कि इसे भीतर से जाना गया है जानकारी भी बांटी नहीं जा सकती है। बाहर से प्राप्त ज्ञान को ही परिधि की जानकारी को ही बांटा जा सकता है।

तो इसी कारण से अनेक दुविधाएं खड़ी हो जाती हैं। किसी को अपने भीतर सौंदर्य का बोध हो सकता है जो कि एक अंतरिक अनुभूति है। वह अपने आप को सुंदर व्यक्ति की भांति सोच सकता है और हो सकता है कि उससे कोई भी सहमत न हो। तब बड़ी दुविधा हो जाती है। आमतौर से प्रत्येक व्यक्ति अपने आप को सुंदर समझता है कोई भी अपने आप को कुरूप नहीं मानता है। हम किसी व्यक्ति को यह मानने के लिए मजबूर कर सकते हैं कि वह कुरूप है और अगर हम सामूहिक रूप से इस पर सहमत हैं तो वह भी हमसे राजी हो सकता है। किंतु भीतर से कोई भी अपने आप को कुरूप अनुभव नहीं करता है? क्योंकि भीतर से शरीर सदा सुंदर है। भीतरी अनुभव सदा सौंदर्य का है।

बाहर का अनुभव कोई अनुभव नहीं है, बल्कि एक फैशन है बाहर से आरोपित एक कसौटी है। जो व्यक्ति एक समाज में सुंदर है दूसरे समाज में कुरूप हो सकता है। इतिहास के किसी एक काल में चेहरे का कोई विशेष आकार-प्रकार सुंदर हो सकता है लेकिन दूसरे काल में सुंदर नहीं हो सकता है। ये बाहर से थोपी गई कसौटियां हैं। लेकिन अंतर्तम अनुभूति सदा सौंदर्य की है।

इसलिए अगर बाहर की कसौटी न हो कसौटी ही न हो, तो कुरूपता भी नहीं होगी–बाहर से देखने पर भी नहीं। हमारे पास सौंदर्य की एक निश्चित प्रतिमा है और प्रत्येक व्यक्ति की इससे तुलना की जाती है। यही कारण है कि कुरूपता है और सौंदर्य है अन्यथा वे नहीं होते। अगर हम सभी अंधे हो जाएं तो कोई भी कुरूप

नहीं होगा हर व्यक्ति सुंदर होगा। कोई नहीं कह सकता कि इससे नुकसान होगा, यह एक बड़ा लाभ भी सिद्ध हो सकता है।

शरीर की भीतर से अनुभूति पहला कदम है। और तुम इसके प्रति किसी भी परिस्थिति में सजग हो सकते हो। और विभिन्न परिस्थितियों में तुम भीतर से सदा एक सा अनुभव नहीं करोगे। जब तुम प्रेम में होते हो तो भीतर की अनुभूति भिन्न होती है जब तुम घृणा में होते हो तो भीतर की अनुभूति भिन्न होती है। इसलिए अगर तुम किसी बुद्ध से पूछो तो वे कहेंगे 'प्रेम सौंदर्य है।' ऐसा नहीं है...सोच-विचार के हमारे ढंगों में ऐसा नहीं है लेकिन यह उनकी आंतरिक अनुभूति है। उन्हें पता है कि जब वे प्रेममय होते हैं तो वे सौंदर्यमय भी होते हैं

शरीर की भीतरी अनुभूति सौंदर्य की होती है। जब भीतर घृणा हो जब भीतर क्रोध हो जब भीतर ईर्ष्या हो तब भीतर सब कुरूप हो जाता है। तुम विभिन्न परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न क्षणों में मन की विभिन्न अवस्थाओं में इसको अनुभव कर सकते हो।

जब तुम आलस्य अनुभव करते हो तो अलग अनुभव होता है। जब तुम सक्रियता अनुभव करते हो तो अलग अनुभव होता है। जब तुम नींद अनुभव करते हो तो अलग अनुभव होता है। इन भेदों को स्पष्टता से जानना होगा। केवल तब तुम अपने शरीर के भीतर के जीवन से–बीमारी में जवानी में बुढ़ापे में बचपन में–परिचित होते हो। तब तुम अपने शरीर का भीतरी इतिहास भीतरी भूगोल जानते हो। और जिस पल कोई भीतर से अपने शरीर के प्रति बोधपूर्ण हो जाता है दूसरा शरीर स्वत: उसकी दृष्टि में आ जाता है।

अब यह दूसरा शरीर बाहर से जाना जाएगा। अगर तुम पहले शरीर को भीतर से जानते हो तो तुम दूसरे शरीर के प्रति बाहर से बोधपूर्ण हो जाओगे। जैसे कि हमने पहले शरीर को बाहर से जाना था।

प्रत्येक शरीर के दो आयाम होते हैं बाहरी और भीतरी। ठीक वैसे ही जैसे कि प्रत्येक दीवाल की दो सतहें होती हैं–एक जो बाहर से दिखती है और दूसरी जो भीतर से दिखती है–इसी तरह से प्रत्येक शरीर की एक दीवाल होती है। जब तुम पहले शरीर को पार कर लेते हो और उसे भीतर से जान लेते हो, तो तुम दूसरे शरीर के प्रति बाहर से सजग हो जाते हो। अब तुम बीच में हो पहले शरीर के भीतर और दूसरे शरीर के बाहर। पहले शरीर के बाहर से तुम दूसरे शरीर को कभी न जान पाओगे। यह दूसरा वर्तुल है।

बाहर से जाना गया यह दूसरा शरीर भाव शरीर है। इसका भौतिक अस्तित्व नहीं है। यह घनीभूत हो गए धुएं जैसा है। तुम बिना किसी अवरोध के इसके पार जा सकते हो। लेकिन यह ऐसा नहीं है जिसके आर-पार देखा जा सके इसीलिए मैं 'घनीभूत धुआं' कह रहा हूं 'पारदर्शी' नहीं। तुम बिना किसी रुकावट के इससे होकर निकल सकते हो। लेकिन तुम बाहर से इसमें देख नहीं सकते हो। पहला शरीर न तो पारदर्शी है न ही धुएं जैसा है। यह ठोस है। दूसरा शरीर जहां तक आकृति का संबंध है ठीक पहले शरीर जैसा है-ठीक वैसा ही उसकी एक विरल छाया है।

जब पहला शरीर मर जाता है दूसरा शरीर नहीं मरता। यह तुम्हारे साथ यात्रा करता है। लेकिन तेरह दिनों में यह भी मर जाता है मिट जाता है विसर्जित हो जाता है। इस दूसरे शरीर को–अगर पहले शरीर की उपस्थिति में उसके जीवित रहते हुए तुमने जान लिया है तो तुम सुस्पष्टता से उसे देख सकते हो।

यह दूसरा शरीर तुम्हारे भौतिक शरीर से बाहर जा सकता है। कभी-कभी ध्यान करते समय दूसरा शरीर ऊपर या नीचे चला जाता है और तुम्हें ऐसा अनुभव होता है कि तुम्हारे ऊपर गुरुत्वाकर्षण का कोई खिंचाव न रहा। तुम्हारी आंखें बंद हैं तुम्हें ऐसा लगता है कि तुम ऊपर उठ गए हो तुमने धरती को छोड़ दिया है। लेकिन जब तुम अपनी आंखें खोलते हो, तो तुम धरती पर ही होते हो और तुम जानते हो कि तुम सारे समय धरती पर ही थे। यह अनुभूति दूसरे शरीर के कारण आई पहले के कारण नहीं। दूसरे के लिए गुरुत्वाकर्षण नहीं है जिस

क्षण तुम इसे जान लेते हो तुम एक खास किस्म की आजादी अनुभव करते हो जो कि भौतिक शरीर के लिए अनजानी थी। बाहर की ओर से तुम पर एक विराट स्वतंत्रता का अवतरण हो जाता है। अब गुरुत्वाकर्षण नहीं रहा। तुम अपने शरीर से बाहर जा सकते हो और लौट कर वापस आ सकते हो।

तो यह दूसरा कदम है अगर तुम अपने दूसरे शरीर को भीतर से जानना चाहते हो, तो तुम्हें शरीर से बाहर होने का अनुभव होना चाहिए। और विधि कठिन नहीं है—बस अपने शरीर से बाहर होने की इच्छा करो और तुम शरीर से बाहर होते हो। इच्छा करने से ही वह पूरी हो जाती है। दूसरे शरीर के लिए कोई भी प्रयास नहीं करना पड़ता है क्योंकि वहां गुरुत्वाकर्षण का कोई खिंचाव नहीं है। पहले शरीर के साथ गुरुत्वाकर्षण बल के कारण कठिनाई है। अगर मैं तुम्हारे घर आना चाहता हूं तो मुझे गुरुत्वाकर्षण के साथ संघर्ष करना पड़ेगा। यही कारण है कि प्रयास, परिश्रम करना पड़ता है। लेकिन अगर कोई गुरुत्वाकर्षण बल न हो तो बस मामूली सी इच्छा ही काफी होगी और घटना घट जाएगी।

इसलिए, जब तुम अपने पहले शरीर के भीतर और अपने दूसरे शरीर के बाहर होते हो तो बस इच्छा पर्याप्त है बस प्रतीक्षा भर करनी है। केवल एक बात समझ लेनी चाहिए. इच्छा परिपूर्ण होनी चाहिए। इसमें कोई भी अंतर-विरोध नहीं होना चाहिए। इसमें कोई भी संदेह नहीं होना चाहिए। इस इच्छा में जरा भी 'यह-वह' नहीं होना चाहिए। यह नहीं होना चाहिए 'मैं बाहर हो जाऊंगा,' अगर इसके साथ 'मैं बाहर न निकल पाऊं' ऐसा खयाल भी आ गया, तो ये दोनों इच्छाएं एक-दूसरे को काट देंगी।

भाव शरीर ही वह शरीर है जिस पर सम्मोहन में काम किया जाता है। सम्मोहन में पहला शरीर शामिल नहीं होता है। सम्मोहन से उत्पन्न तंद्रा में दूसरे शरीर की भूमिका होती है। यही कारण है कि जिस व्यक्ति की आंखें पूरी तरह से ठीक हैं, जब सम्मोहनविद कहता है 'तुम अंधे हो गए हो' तो वह अंधा हो जाता है। अब वह देख नहीं सकता है। यह दूसरा शरीर है, यह भाव शरीर है जो प्रभावित हो गया है। और सम्मोहन करने वाले के सुझाव भाव शरीर द्वारा सुने जाते हैं।

यही कारण है कि सम्मोहन में पहले तुम्हें गहन तंद्रा में होना चाहिए–केवल तब ही तुम्हारे दूसरे शरीर तक पहुंचा जा सकता है। कोई व्यक्ति जो बिलकुल ठीक है, स्वस्थ है उसे बस इस सुझाव से कि वह पंगु हो गया है, पंगु किया जा सकता है। सम्मोहन करने वाले को ऐसी भाषा का उपयोग नहीं करना चाहिए जो संदेह उत्पन्न करती हो। यदि वह यह कहता है, 'मैं सोचता हूं ऐसा लगता है कि तुम अंधे हो गए हो' तो यह काम नहीं करेगा। उसे इस बारे में निश्चित सुस्पष्ट और पूरी तरह से संदेहरहित होना चाहिए कि तुम अंधे हो। केवल तभी वह सुझाव कार्य करता है।

दूसरे शरीर में बस इच्छा करो कि 'मैं शरीर के बाहर हूं।' और तुम शरीर से बाहर होगे। सम्मोहन की तंद्रा यहां सहायक हो सकती है। अगर तुम्हारा पहला शरीर सो गया है, तो सम्मोहन की निद्रा... सामान्य निद्रा नहीं, क्योंकि सामान्य निद्रा में तुम्हारा पहला शरीर अभी भी महत्वपूर्ण होता है। सामान्य निद्रा, दिन-प्रतिदिन की नींद पहले शरीर से संबद्ध है। इसका दूसरे शरीर से संबंध नहीं है। यह तो बस ऐसे है कि पहला शरीर दिन भर के परिश्रम कार्य और तनाव से थक गया है। तो यह विश्रांति है। सम्मोहन की निद्रा में सम्मोहन में दूसरे शरीर को सुला दिया जाता है। और अगर इस दूसरे शरीर को सुला दिया जाए, तो तुम उसके साथ कार्य कर सकते हो।

और ऐसी बहुत सी चीजें हैं जो इसके माध्यम से कार्य कर सकती हैं क्योंकि जब तुम बीमार पड़ते हो तो पचहत्तर प्रतिशत बीमारियां इस दूसरे शरीर से आती हैं और वे पहले पर प्रकट होती हैं। केवल पच्चीस प्रतिशत बीमारियां पहले शरीर में आती हैं और दूसरे पर पहुंचती हैं।

दूसरा शरीर सुझावों के प्रति इतना अधिक ग्रहणशील होता है कि प्रत्येक मेडिकल कॉलेज में पहले साल के विद्यार्थी हमेशा उसी रोग से बीमार पड़ते हैं...उन्हें वही बीमारी हो जाती है जो उन्हें उस समय पढ़ाई जा रही होती है। उनमें वही लक्षण उभरने लगते हैं। अगर सिरदर्द पर चर्चा चल रही हो और उसके लक्षण बताए जा रहे हों, तो हर व्यक्ति अनजाने में भीतर उतर जाता है और उन लक्षणों के बारे में विचार करने लगता है—कहीं उसी को तो सिरदर्द नहीं है? क्योंकि यह भीतर उतर जाना भाव शरीर को प्रभावित करता है सुझावों को ग्रहण कर लिया जाता है और सिरदर्द निर्मित प्रक्षेपित हो जाता है।

प्रसव का दर्द प्रसव-पीड़ा पहले शरीर का दर्द नहीं है, यह दूसरे शरीर की अनुभूति है। इसलिए सम्मोहन के माध्यम से प्रसव-पीड़ा को बिलकुल पीड़ा रहित बनाया जा सकता है–मात्र सुझाव के द्वारा। ऐसे समाज हैं जहां प्रसव-पीड़ा को, प्रसव के दर्द को कोई महसूस ही नहीं करता है, यह उन लोगों के मन में नहीं है। किंतु हर प्रकार की सभ्यता कुछ आम सुझाव निर्मित करती है वे सुझाव प्रत्येक व्यक्ति की जीवन-शैली का अनिवार्य भाग बन जाते हैं।

सम्मोहन के प्रभाव में कोई दर्द नहीं होता है। सम्मोहन के प्रभाव में शल्यक्रिया, बहुत दर्द देने वाली शल्यक्रिया भी बिना किसी दर्द की अनुभूति के की जा सकती है, क्योंकि यह दूसरा शरीर यदि यह दूसरा शरीर इस सुझाव को ग्रहण कर ले कि दर्द नहीं होगा तो दर्द नहीं होगा। जहां तक मेरी समझ है हर प्रकार की पीड़ा और हर प्रकार का सुख दोनों ही दूसरे शरीर से आते हैं। यह अनुभूति बस पहले पर प्रकट होती है। इसलिए अगर सुझाव बदल जाते हैं, तो वही बात पीड़ादायक बन सकती है, और वही बात सुखदायक बन सकती है–वही बात!

सुझाव को बदलो, ईथरिक माइंड भाव-मन को बदलो और सब-कुछ बदल जाएगा। बस समग्रता से इच्छा भर करनी है। जब इच्छा समग्र हो जाती है, तो यह संकल्प बन जाती है, इन दोनों में बस यही अंतर है। अगर तुमने पूर्णता से, समग्रता से, अपने सारे मन से इच्छा की है, तो वह संकल्प बन जाती है, वह संकल्प शक्ति बन जाती है। और तुम अपने पहले शरीर के बाहर जा सकते हो।

जब तुम पहले शरीर के बाहर जाते हो तभी दूसरे शरीर को भीतर से जानने की संभावना बनती है, अन्यथा नहीं–क्योंकि जब तुम अपने भौतिक शरीर के बाहर जाते हो तो तुम्हारी स्थिति बदल जाती है। अब तुम पहले शरीर के भीतर और दूसरे शरीर के बाहर–इन दोनों के बीच में नहीं हो। अब तुम दूसरे शरीर में हो...क्योंकि तुम पहले शरीर से बाहर हो। अब पहला शरीर नहीं है।

अब तुम अपने दूसरे शरीर के साथ भीतर से वही व्यवहार कर सकते हो जैसा कि तुमने अपने पहले शरीर के साथ किया था। अब दूसरे शरीर की भीतरी कार्यप्रणाली, इसके तरिक अवयवों, इसकी भीतरी यांत्रिकताओं, इसकी भीतरी संरचना के प्रति सजग हो जाओ। अब तुम इसके प्रति सजग हो सकते हो। और एक बार बाहर हो गए, फिर कोई कठिनाई नहीं है। उस समय भी जब कि तुम इसके भीतर हो तुम इसके प्रति सजग हो सकते हो। पहला अनुभव कठिन है, इसके बाद तुम सदा दो शरीरों के भीतर अनुभव करोगे पहला शरीर, दूसरा शरीर और तुम। अब तुम्हारा ध्यान दो पर्तों के, दो परिधियों के भीतर आएगा।

जब तुम दूसरे शरीर के भीतर होते हो, तब तुम तीसरे, सूक्ष्म शरीर के बाहर होते हो। और जहां तक सूक्ष्म शरीर का प्रश्न है वहां किसी संकल्प की भी जरूरत नहीं है। बस इच्छा ही पर्याप्त है। वहां अब किसी समग्रता का प्रश्न नहीं है। बस एक अभिलाषा और तुम तीसरे शरीर के भीतर जा सकते हो, क्योंकि यह पारदर्शी है। बाहर से भी तुम भीतर देख सकते हो। यह बस एक कांच की दीवाल की तरह है– तुम बाहर हो और तुम भीतर देख सकते हो।

इसलिए अब इच्छा की भी जरूरत नहीं है। अगर तुम भीतर जाना चाहते हो तुम जा सकते हो। यह वैसा ही तरल है जैसा दूसरा शरीर लेकिन यह पारदर्शी भी है। तो यह गाढ़े धुएं की तरह नहीं है बल्कि आया की तरह है–ऐसा धुआं जो प्रकाश के कणों की भांति है। प्रकाशित धुआं, पारदर्शी। तुम भीतर जा सकते हो–किसी इच्छा के बिना तुम चले जाओगे। जैसे तुम बाहर होते हो, वैसे तुम भीतर हो जाओगे। पहली बार ऐसा होगा कि तुम अंदर हो या बाहर हो– इसका भेद तुम नहीं जान पाओगे– क्योंकि यह अंतराल पारदर्शी है।

जब तुम पहले तीन शरीरों को पार कर लेते हो, तो चौथा शरीर तो एक प्रकार से पूरी तरह से दीवालरहित है।

तीसरे शरीर का आकार क्या है?

वही आकार है, आकार वही होगा। केवल छठवें शरीर के साथ आकार बदल जाएगा। पांचवे शरीर तक आकार वहीं रहेगा। वह पदार्थ जिससे ये शरीर बने है, बदलेगा। लेकिन पांचवें शरीर तक आकार वही रहेगा। छठवें शरीर के साथ आकार ब्रह्मांडीय हो जाएगा। और सातवें के साथ कोई भी आकार नहीं होगा, ब्रह्मांडीय भी नहीं। तीसरे शरीर के भीतर, चौथे शरीर की कोई दीवाल नहीं है। बस एक सीमा-रेखा है पारदर्शी दीवाल भी नहीं है। यहां कोई दीवाल नहीं है। यह दीवालरहित है। इसलिए यहां कोई कठिनाई नहीं है और कोई विधि नहीं है, किसी विधि की जरूरत भी नहीं है। जिस व्यक्ति ने तीसरे को उपलब्ध कर लिया है सरलता से चौथे शरीर को उपलब्ध कर सकता है।

लेकिन चौथे के पार जाने में काफी कठिनाई है जैसी कि पहले के पार जाने में थी क्योंकि अब मनस क्षेत्र मिट जाता है। पांचवां आत्मिक शरीर है। यहां पुन: एक दीवाल है, उन पुराने अर्थों में दीवाल नहीं जैसी दीवालें पहले शरीर, दूसरे शरीर.. आदि के बीच में थीं। अब यह दीवाल दो आयामों के मध्य है, दो भिन्न तलों के मध्य है।

ये चारों शरीर चार हैं, लेकिन एक ही तल पर, एक ही धरातल पर संबद्ध हैं। अब तुम तल बदलते हो यह आयाम अलग है। इसके पहले विभाजन हॉरिजटल क्षैतिज था। अब यह विभाजन वर्टिकल, ऊर्ध्वाधर है। अब विभाजन 'ऊपर' 'नीचे' की भांति है। तो यहां एक दीवाल है–चौथे शरीर और पांचवें शरीर के बीच की दीवाल एक विराट दीवाल है क्योंकि हमारे देखने के तरीके हॉरिजटल क्षैतिज हैं।

हम सामने देखते हैं हम पीछे देखते हैं हमारी आंखें क्षैतिज हैं हमारी दृष्टि क्षैतिज है। यह नीचे से ऊपर की ओर नहीं है। यही कारण है कि हमारी आंखें क्षैतिज हैं क्योंकि ये आंखें चौथे शरीर, मनस शरीर का एक हिस्सा हैं। इसीलिए मानसिक अंधेपन की भी पूरी संभावना होती है जिस व्यक्ति की आंखें पूरी तरह से ठीक हैं– उनमें शरीर शास्त्रीय दृष्टि से कोई समस्या कोई दोष नहीं है–लेकिन फिर भी वह अंधा हो सकता है। मानसिक अंधापन संभव है। ऐसा होता है।

अगर मन के ध्यान की दिशा बदल जाए तो आंखें अंधी हो जाती हैं। क्षण भर के लिए हम सभी अंधे हो सकते हैं। तुम्हारे घर में आग लग गई हो और तुम सड़क पर दौड़ते हुए जा रहे हो और कोई व्यक्ति तुम्हारी बगल से गुजर रहा है तुम उसको नहीं देखते हो वह नहीं दिखाई पड़ता है क्योंकि तुम्हारे मन का ध्यान कहीं और है। आंखें काम नहीं कर रही हैं। तुमको दिखता है लेकिन तुम वहां नहीं हो। तुम देख पा रहे हो और फिर भी तुम अंधे हो सकते हो, क्योंकि तुम्हारा ध्यान वहां नहीं है। आंखें खाली हो सकती हैं। भय में वे खाली हो जाती हैं उनको दिखता है और वे कुछ नहीं देखती हैं।

चौथे शरीर से पांचवें शरीर में तल का परिवर्तन हो जाता है। अब चौथे शरीर में तुमको बाहर की ओर तथा भीतर की ओर नहीं देखना है बल्कि ऊपर की ओर तथा नीचे की ओर देखना है। अभी जब तुम चौथे शरीर में हो, तो तुम नीचे

की ओर देखना है। अभी जब तुम चौथे शरीर में होते हो, तो तुम नीचे की ओर देख रहे होते हो, मन सदा नीचे की ओर देखता है। यही कारण है कि योग मन के विरुद्ध है। यह अधोगामी प्रवाह है नीचे की ओर बहने वाला बिलकुल पानी की तरह। पानी नीचे की ओर जाता है नीचे की और प्रवाहित होता है, यह उसका अंतर्तम स्वभाव होता है। नीचे की और बहना कभी अपने आप से ऊपर की ओर नहीं जा सकता है।

इसलिए पानी कभी किसी आध्यात्मिक व्यवस्था का प्रतीक नहीं बनाया जा सका। अग्नि को अनेक व्यवस्थाओं में प्रतीक बनाया जा सका–क्योंकि अग्नि ऊपर की ओर जाती है। यह कभी नीचे की ओर नहीं जाती। यह एक प्रतीक बन गई। चौथे से पांचवें शरीर में जाने के लिए अग्नि प्रतीक है। व्यक्ति को ऊपर की ओर देखना है और उसे नीचे की और देखने से रोकना है।

इसकी क्या विधि होगी? ऊपर की ओर कैसे देखा जाए?

मार्ग क्या है?

तुमने सुना होगा कि ध्यान में आंखों को ऊपर की ओर केंदित होना चाहिए, उन्हें ऊपर की ओर के केंद्र, आज्ञा-चक्र पर केंदित होना चाहिए। आंखों को बंद और ऊपर की ओर देखती हुई होना चाहिए जैसे कि तुम अपनी खोपड़ी के भीतर झांकने जा रहे हो, उन्हें नीचे की ओर नहीं देखना है। तुम्हारी आंखों को ऊपर की ओर देखते हुए खोपड़ी के भीतर झांकती हुई होना चाहिए।

आंखें बहुत प्रतीकात्मक हैं। असली सवाल देखने का है। लेकिन हमारी दृष्टि हमारे देखने की व्यवस्था आंखों के साथ जुड़ी हुई है इसलिए आंखों का दृष्टि-क्षेत्र हमारा दृष्टि-क्षेत्र बन जाता है। यदि तुम्हारी आंखें ऊपर की ओर देखती हैं तो तुम्हारी दृष्टि भी ऊर्ध्वगामी हो जाती है।

यह चौथा शरीर है–और अनेक व्यवस्थाएं चौथे शरीर से ही आरंभ होती हैं। राजयोग आदि विधियों चौथे शरीर से आरंभ होती हैं। सिर्फ हठयोग पहले शरीर से शुरू होता है। दूसरे प्रकार के योग...वे कहीं और से शुरू होते हैं। जैसे कि थियोसॉफी दूसरे शरीर से शुरू होती है हठयोग पहले शरीर से शुरू होता है। कुछ ऐसी व्यवस्थाएं हैं जो तीसरे शरीर से शुरू होती हैं। राजयोग चौथे शरीर से शुरू होता है। जैसे-जैसे सभ्यता प्रगति करते हुए चौथे शरीर पर पहुंची है तो इसका चुनाव किया जा सकता है। तब अनेक लोग यहां से शुरू कर सकते हैं।

अगर उन्होंने अपने पिछले जन्मों में पहले, दूसरे और तीसरे शरीर पर कार्य कर लिया हो केवल तभी वे ऐसा कर सकते हैं। अगर उन्होंने इन तीन शरीरों की साधना पूरी कर ली हो केवल तभी चौथे से यात्रा आरंभ की जा सकेगी। तो ऐसे लोग जो शास्त्रों से, या स्वामियों से या गुरुओं से राजयोग सीख लेते हैं बिना यह जाने कि उन्होंने अपने पहले तीन शरीरों पर कार्य कर लिया है अथवा नहीं उनका देर-अबेर भ्रम टूट ही जाता है–क्योंकि वे चौथे से शुरू नहीं कर सकते हैं। पहले तीन शरीरों को पार करना ही पड़ेगा, केवल तभी चौथे से यात्रा शुरू होगी।

और चौथा ही वह अंतिम पड़ाव है यहां से तुम यात्रा शुरू कर सकते हो। कोई व्यक्ति पांचवें शरीर से यात्रा का आरंभ नहीं कर सकता है। चौथा अंतिम पड़ाव है। तो इस तरह चार योग हैं प्रथम शरीर के लिए हठयोग, दूसरे शरीर के लिए मंत्रयोग, तीसरे के लिए भक्तियोग और चौथे के लिए राजयोग। चारों शरीरों के अनुसार योग के ये विभाजन हैं। इसलिए पुराने दिनों में प्रत्येक व्यक्ति को पहले शरीर से शुरू करना पड़ता था।

लेकिन अब बहुत प्रकार के लोग हैं। किसी ने अपने पिछले जन्म में दूसरे शरीर तक का कार्य कर लिया है, कोई तीसरे तक का कार्य कर चुका है तो ये अंतर हो सकते हैं। लेकिन जहां तक स्वप्नों का संबंध है, व्यक्ति को पहले शरीर से ही शुरू करना चाहिए। केवल तब ही तुम इसके पूरे विस्तार को, इसके पूरे वर्णक्रम को जान सकोगे।

चौथे शरीर में तुम्हारी चेतना को अग्नि के समान हो जाना चाहिए–ऊपर की ओर जाती हुई–और इसकी जांच की जानी चाहिए। उदाहरण के लिए चौथे शरीर में यदि मन कामुकता की ओर जाता है तो यह ठीक वैसे है जैसे कि पानी नीचे की ओर जा रहा हो। काम-केंद्र नीचे की ओर है। अगर मन कोई प्रेम-संबंध निर्मित करता है, तो प्रेम-संबंध का केंद्र-हृदय-नीचे की ओर है। अब व्यक्ति को आंखों से ऊपर की ओर देखना शुरू कर देना चाहिए आंखों से नीचे की ओर नहीं।

अगर चेतना को ऊपर की ओर जाना हो तो उस केंद्र से शुरू करना चाहिए जो आंखों से ऊपर है आंखों से नीचे के केंद्र से नहीं। और ऐसा केवल एक ही केंद्र है वह है आज्ञा-चक्र तुम्हारी दोनों आंखों के मध्य में–जिसे तीसरी आंख के रूप में जाना जाता है। अब दोनों आंखों को ऊपर की ओर तीसरी आंख की ओर देखना चाहिए।

इस तीसरी आंख को बहुत से उपायों से याद रखा गया है। भारत में कुंआरी और विवाहिता लड़की के मध्य अंतर विवाहिता की तीसरी आंख पर रंगीन बिंदी लगा कर किया जाता है। कुंआरी लड़की ऊपर की ओर नहीं देख सकती है। वह काम-केंद्र की ओर देखने के लिए बाध्य है। लेकिन जब उसका विवाह हो गया है, उसे ऊपर की ओर देखना आरंभ कर देना चाहिए। अब कामुकता को बदल जाना चाहिए। अब उसको मां बनना है। अब उसकी यात्रा अकाम या कामुकता से परे की ओर है। उसे तीसरी आंख को याद रखना चाहिए, इसलिए एक रंगीन चिह्न, एक बिंदी का उपयोग किया जाता है। जिससे उसे याद रहे कि अब वह कुंआरी नहीं है अब वह केवल एक लड़की भर नहीं है। उसे ऊपर की ओर देखना है।

मस्तक पर लगाए जाने वाले ये तिलक टीके अनेक प्रकार के होते हैं। संन्यासी के भक्त के–इनके रंग भी भिन्न-भिन्न होते हैं। और वे भी अगर संभव हो तो चंदन के होते हैं, क्योंकि यह चक्र उत्तप्त चक्र है। इसे हमेशा शीतल रहना चाहिए। जब तुम्हारी दोनों आंखें तीसरी रख की ओर देखने लगती हैं वहां पर अग्नि का एक महत केंद्र निर्मित हो जाता है वहां जलने की संवेदना होती है। तीसरी आंख खुलना शुरू कर रही है, इसलिए उसे शीतल रखा जाना है। भारत में चंदन का प्रयोग किया जाता है यही एकमात्र चीज है जिसका उस समय उपयोग किया जा सकता है।

अब भी इससे बेहतर और कुछ भी नहीं है इसके कई कारण हैं यह शीतल है, और इसमें एक विशेष तरह की गंध है। यह गंध भी चौथे शरीर और इसके अतिक्रमण से संबंधित है। यह सुगंध विशिष्ट है.. हमने अवश्य सुन रखा होगा कि चंदन के वृक्षों के चारों ओर सांप लिपटे रहते हैं। चंदन की सुगंध आकर्षण का केंद्र ऊर्ध्वमुखी आकर्षण का केंद्र बन जाती है–इस तरह से सुगंध भी ऊर्ध्वमुखी आकर्षण, एक स्मृति बन जाती है–उसकी शीतलता, उसकी गंध और वह विशेष स्थान जहां उसे लगाया गया है।

अगर तुम अपनी आंखें बंद कर लो–अब तुम देख नहीं रहे हो–और मैं अपनी अंगुली तुम्हारी तीसरी आंख पर रखूं मैं उसे स्पर्श नहीं कर रहा हूं मेरी अंगुली उसे छू नहीं रही है फिर भी तुम इसे अनुभव करोगे। कोई चीज सक्रिय हो जाएगी। इतना सा दबाव भी पर्याप्त है। स्पर्श भी नहीं बस अंगुली दिखाना इतना भी काफी है। इसलिए सुगंध, उसका सूक्ष्म स्पर्श और उसकी शीतलता पर्याप्त है। तब तुम्हारा ध्यान सदा तुम्हारी आंखों से तुम्हारी तीसरी आंख के बिंदु की ओर प्रवाहित होता रहता है।

तो चौथे शरीर पर–इसको पार करने के लिए केवल एक विधि एक उपाय है, और वह है ऊपर की ओर देखना। इसी के लिए शीर्षासन को एक उपाय के रूप में प्रयोग किया गया था। शीर्षासन सिर को नीचे टिका कर

उलटे खड़े हो जाने का उपयोग इसके लिए एक विधि के रूप में किया गया था क्योंकि सामान्यत: हमारी आंखें नीचे की ओर देखती हैं। अगर तुम सिर के बल खड़े हो जाओ तो तुम अब भी नीचे की ओर देख रहे होगे। लेकिन अब जो नीचे की ओर है वही ऊपर की ओर है। तुम्हारा नीचे की ओर का प्रवाह ऊपर की ओर के प्रवाह में बदल जाएगा।

यही कारण है कि ध्यान करते समय कुछ लोग इसे जाने बिना ही उलटी स्थिति में चले जाएंगे। वे अचेतन के प्रभाव से शीर्षासन करना शुरू कर देंगे क्योंकि ऊर्जा का प्रवाह बदल चुका है। और उनका मन नीचे की ओर जाने वाले प्रवाह का अभ्यस्त हो चुका है आदी हो चुका है। तो अब यह पूरा मामला अलग है जिसकी उन्हें आदत नहीं है इसलिए अब वे सिर के बल खड़े हो जाएंगे। तब उन्हें राहत मिलेगी क्योंकि उन्होंने वही अवस्था पा ली है। फिर अधोगामी प्रवाह है– यद्यपि यह अधोगामी नहीं है यह ऊर्ध्वगामी है–क्योंकि जहां तक अधोगामी और ऊर्ध्वगामी का संबंध है इसका भौगोलिक अवस्था से कोई संबंध नहीं है यह तुम्हारे चक्रों के संदर्भ में ऊर्ध्वगामी है।

चौथे शरीर से पांचवें शरीर में जाने की विधि के रूप में शीर्षासन का उपयोग किया गया था। एक मात्र बात जो याद रखनी है और जिस पर जोर दिया जाना है वह है—ऊपर की ओर देखना। इसको अनेक ढंगों से किया जा सकता है–त्राटक से सूर्य पर एकाग्रता से और भी कई विधियां हैं जिनसे करके इसे किया जा सकता है। लेकिन इसको भीतर से किया जाना बेहतर है। बस अपनी आंखें बंद कर लो।

लेकिन पहले-पहले के चार शरीरों को पार करना पड़ेगा। केवल तभी यह सहायक हो सकता है, अन्यथा नहीं। अन्यथा यह गड़बड़ी पैदा कर सकता है, इससे अनेक प्रकार के मानसिक रोग निर्मित हो सकते हैं, क्योंकि तुम्हारे मनोदैहिक तंत्र के समायोजन अस्तव्यस्त हो जाएंगे। तुम्हारे चारों शरीर बाहर की ओर देख रहे हैं, तुम्हारा मन तुम्हारे पहले शरीर के बाहर खड़ा हुआ है, और अपने भीतरी मन से तुम ऊपर की यात्रा आरंभ कर देते हो... तो इस बात की पूरी संभावना है कि इस प्रयास का परिणाम स्किजोफ्रेनिया, खंडित मानसिकता हो।

और मेरे लिए खंडित मानसिकता ऐसी ही बातों का परिणाम है। यही कारण है कि सामान्य मनोविज्ञान खंडित मानसिकता के गहरे कारण नहीं खोज पाता। खंडित मानसिकता वाले व्यक्ति के पास ऐसा मन होता है जो विपरीत दिशाओं में एक साथ कार्य कर रहा हो– बाहर खड़े हुए भीतर देखना नीचे खड़े होना? ऊपर की ओर देखना बाहर खड़े होकर ऊपर की ओर देखना।

तुम्हारा सारा मनोदैहिक तंत्र एक लयबद्धता में होना चाहिए। अगर तुम नीचे की ओर जा रहे हो तो तुम्हें बाहर की ओर होना चाहिए। यही स्वास्थ्यप्रद है। तब तुम एकजुट हो एक प्राकृतिक इकाई बस पशुवत शरीर में जीते हुए लेकिन यह समायोजन उचित है। तुम्हें बहिर्गामी मन को कभी ऊपर की ओर ले जाने का प्रयास नहीं करना चाहिए। अन्यथा खंडित मानसिकता, स्किजोफ्रेनिया, विभाजित व्यक्तित्व ही इसका परिणाम होगा।

मनुष्य-जाति के विभाजित व्यक्तित्व का मूलभूत कारण हमारी सभ्यताएं और हमारे धर्म हैं। उन्होंने परिपूर्ण लयबद्धता की ओर ध्यान नहीं दिया है। ऐसे धर्मोपदेशक हैं जो बहिर्गामी लोगों को ऐसी बातें सिखा रहे हैं जो ऊर्ध्वगामी हैं। ये शिक्षाएं बहिर्गामी व्यक्ति पर कार्य करना आरंभ कर देंगी। एक भाग उसके शरीर के बाहर बना रहेगा, दूसरा भाग ऊपर की ओर जाएगा। और दोनों के मध्य एक खाई बन जाएगी। वह दो व्यक्ति बन जाएगा कभी यह, कभी वह; कभी राम, कभी श्याम।

इस बात की बहुत संभावना है कि एक व्यक्ति एक साथ सात व्यक्ति बन जाए। तब विभाजन पूर्ण हो जाता है। तब हम कहते हैं कि उसके भीतर अनेक भूत हैं। अपने आप ही वह सात भूत बन गया है। एक भाग

कहीं और है दूसरा कहीं और। एक भाग पहले शरीर से चिपक कर नीचे की ओर जा रहा है दूसरा भाग दूसरे शरीर से चिपका हुआ है तीसरे शरीर से एक और भाग चिपका हुआ है। एक और भाग ऊपर की ओर जा रहा है, कोई और भाग कहीं और जा रहा है। वह एक केंद्रहीन व्यक्ति बन गया है। उस व्यक्ति में अब कोई केंद्र नहीं है।

गुरजिएफ कहा करता था कि ऐसा व्यक्ति उस मकान की भांति है जिसका मालिक अनुपस्थित है और हर नौकर अपने आप को मालिक होने का दावा करता है। उस मकान का प्रत्येक नौकर खुद को मालिक की भांति पेश करता है। कोई उसकी बात से इनकार नहीं कर सकता है क्योंकि मालिक अनुपस्थित है। जब कोई इस मकान में आता है और दरवाजा खटखटाता है तो संयोगवश जो नौकर उस समय पास में होता है वह मालिक बन बैठता है। वह व्यक्ति पूछता है यह मकान किसका है? वह नौकर कहता है : मेरा। किसी और दिन वही व्यक्ति फिर आता है फिर वह दरवाजा खटखटाता है दूसरा नौकर जो वहां से गुजर रहा होता है वह दावा करता है कि वही मालिक है। तब वह अतिथि उलझन में पड़ जाता है कि मालिक कौन है। बिना केंद्र वाले व्यक्ति की दशा इसी प्रकार की हो जाती है।

हम इसी तरह के हैं। लेकिन फिर भी काम चला रहे हैं। हमारा केंद्र अक्रिय है, अवधान छिन्न-भिन्न है मालिक अनुपस्थित है या सो रहा है और हमारा हर भाग मालकियत का दावा करता है। जब कामवासना उठती है तो कामवासना मालिक हो जाती है। तब यह एक मात्र संपूर्ण मालिक होती है। तब यह अन्य सभी को इनकार कर देगी। तुम्हारी नैतिकता, तुम्हारा परिवार तुम्हारा धर्म–सभी कुछ को नकार दिया जाएगा। कामवासना पूरी मालिक हो जाती है, यह मकान मालिक है। यह मकान का मालिक की भांति उपयोग करेगी, नौकर की तरह से नहीं। और जब कामवासना चली जाती है, और इसके पीछे हताशा आ जाती है...। और तब उस हताशा में तुम्हारा तर्क प्रकट होता है और कहता है 'मैं मालिक हूं। यह पड़ता है, यह गलत है और यह पूरे मकान के ऊपर अपना दावा करेगा। यह कामवासना को कोई स्थान नहीं देगा। नैतिकता सिद्धांतों के साथ शिक्षाओं के साथ संस्कारों के साथ वापस लौट आएगी। वे मकान पर मालकियत का दावा करेंगे।

हरेक पूरे मकान पर अपना दावा करता है। जब क्रोध उठता है, तुम क्रोध हो जाते हो क्रोध मालिक हो गया है। अब वहां कोई तर्क नहीं है अब वहां कोई चेतना नहीं है, अब वहां और कुछ भी नहीं है। वही कठिनाई है। इसी बात के कारण हम व्यक्तियों को समझ नहीं पाते हैं। जो व्यक्ति बहुत अधिक प्रेमपूर्ण है जब क्रोधित हो जाता है तो वहां कोई प्रेम नहीं दिखता। और हम यह समझ नहीं पाते कि वह प्रेमपूर्ण है या प्रेमपूर्ण नहीं है। लेकिन प्रेम भी एक नौकर था और क्रोध भी एक नौकर था, मालिक या तो अनुपस्थित है या सोया हुआ है। इसलिए आमतौर से तुम किसी व्यक्ति पर भरोसा नहीं कर सकते, क्योंकि वह खुद अपना मालिक नहीं है, कोई भी नौकर मालिक बन जाएगा। वह एक नहीं है वह एक इकाई नहीं है।

तो मैं यह कह रहा हूं कि जब तक तुमने अपने पहले चार शरीरों को पार न कर लिया हो, तुम्हें ऊपर देखने की विधियों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। अन्यथा एक ऐसा विभाजन निर्मित हो जाएगा, जिसे मिटाना असंभव होगा, एक ऐसा अंतराल जिसको पाटना करीब-करीब नामुमकिन है और व्यक्ति को अंतर्यात्रा को आरंभ कर पाने के लिए अपने अगले जन्म तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। इसलिए यही बेहतर है कि अंतर्यात्रा को पहले कदम से शुरू किया जाए फिर धीरे- धीरे आगे बढ़ा जाए।

अगर तुमने कुछ शरीर पार कर लिए थे–उदाहरण के लिए, यदि तुमने अपने पिछले जन्म में पहले तीन शरीरों को पार कर लिया था तो तुम इन तीनों को अब एक क्षण में पार कर लोगे। तो इसमें कोई कठिनाई नहीं है, और यह पूछने की जरूरत भी नहीं है कि कहां से आरंभ किया जाए। पहले शरीर से आरंभ करो अगर तुमने अपने पिछले जन्मों में अपना कोई सा भी शरीर पार किया था तो अब तुम उसे एक क्षण में पुन: पार कर लोगे।

दुबारा उसको पार करने में जरा भी मुश्किल न आएगी। तुम्हें उसकी सीमा पता है तुम रास्ते को जानते हो। जिस क्षण वे तुम्हारे सामने आते हैं तुम उनको पहचान लेते हो, और तुम उनसे होकर निकल जाते हो। तब तुम भीतर जा सकते हो। तो मेरा जोर सदा पहले शरीर से आरंभ करने पर है–सभी के लिए।

चौथा शरीर है ऊपर की ओर देखना, और यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि चौथे शरीर के बाद तुम अतिमानव हो जाते हो। चौथे शरीर तक तुम मनुष्य हो। पहले शरीर तक तुम पशु हो। केवल दूसरे शरीर से मनुष्यता अस्तित्व में आती है। और चौथे शरीर में यह पूरी तरह से खिल जाती है।

अपने शिखरों पर पहुंच कर भी हमारी सभ्यता कभी चौथे शरीर के पार नहीं गई है। अब भी कोई सभ्यता चौथे शरीर के पार नहीं जा पाई है। मनुष्य के लिए यह उसका चरम उत्कर्ष है। चौथे शरीर के पार होना मनुष्य के पार होना है। यही कारण है कि हम क्राइस्ट को मनुष्य के रूप में परिभाषित नहीं कर सकते हैं। बुद्ध, महावीर, कृष्ण–वे सभी मनुष्य के पार कुछ और हो जाते हैं–अतिमानव।

चौथे शरीर से ऊर्ध्वमुखी दृष्टि एक आयाम से दूसरे में छलांग है। जब मैं अपने भौतिक शरीर को देख रहा हूं अपने पहले शरीर को बाहर से देख रहा हूं–तो मैं बस एक पशु हूं जिसमें मनुष्य होने की संभावना है। यही एक मात्र अंतर है। मेरी तुलना पशु से की जा सकती है दोनों में काफी समानताएं हैं। एक मात्र अंतर यह है कि मैं मनुष्य हो सकता हूं और पशु मनुष्य नहीं हो सकता है। लेकिन जहां तक अवस्था का संबंध है हम दोनों समान हैं पशु जगत के आयाम में हैं मनुष्यता से नीचे हैं अवमानवीय हैं। दूसरे शरीर से तीसरे में होते हुए चौथे शरीर में मनुष्यता की खिलावट घटित होती है। तो चौथे शरीर वाला व्यक्ति भी हमें अति मानवीय लगता है–वह होता नहीं है।

कोई आइंस्टीन कोई एडीसन रूसो या वाल्टेयर वे अतिमानवीय लगते हैं। वे अतिमानवीय नहीं हैं। वे मानवता की संपूर्ण खिलावट हैं। लेकिन हम लोग मानव से नीचे हैं इसलिए वे अतिमानव प्रतीत होते हैं। हम मानव से नीचे हैं वे हमसे ऊपर हैं लेकिन मानव से ऊपर नहीं हैं। केवल कोई बुद्ध, कोई क्राइस्ट, कोई जरथुस्त्र मन की सीमा को पार कर लेते हैं। ऊपर की ओर देखने से मनस शरीर को पार कर लिया जाता है।

यहां कुछ प्रतीक समझने जैसे हैं। मोहम्मद ऊपर की ओर आकाश की ओर देखते हुए कहते हैं कि ऊपर से कुछ आया है इलहाम हुआ है। हम इसकी भूगोल के अनुसार व्याख्या करते हैं, तो आकाश खुदा का निवास स्थान बन जाता है। हमारे लिए ऊपर की ओर का अर्थ है आकाश; नीचे की ओर का अर्थ है नरक पृथ्वी से नीचे। लेकिन उस दृष्टांत को, उस प्रतीक को नहीं समझा गया है।

ऊपर की ओर देखते हुए मोहम्मद आकाश की ओर नहीं देख रहे हैं, ऊपर की ओर देख रहे मोहम्मद आज्ञा-चक्र की ओर देख रहे हैं। चौथे मन के लिए यही आकाश है। यह ऊर्ध्वमुखी विस्तार आकाश है। और जब मोहम्मद अनुभव करते हैं कि उनके पास 'ऊपर' से कुछ आया है, तो उनकी अनुभूति सही है। किंतु ऊपर की ओर उठती हुई आग के अर्थ अलग हैं।

ऊपर की ओर देखता हुआ जरथुस्त्र...अपने हर चित्र में वह ऊपर की ओर देख रहा है। उसकी आंखें कभी नीचे की ओर देखती हुई नहीं हैं। वे ऊपर की ओर देख रही हैं। और जब उसने पहली बार दिव्यता को देखा था, तो वहां बस आग की लपटें थीं। दिव्यता उसके पास अग्नि के रूप में आई थी। यही कारण है कि पारसी लोग अग्निपूजक बन गए हैं। अग्नि की अनुभूति आज्ञा-चक्र से आती है। जब तुम ऊपर की ओर देखते हो तो तुम्हें लपट का– सभी कुछ जल रहा है का अनुभव होता है। उस जलने में उस अग्नि में तुम रूपांतरित हो जाते हो। मृण्मय जल जाता है, भस्मीभूत हो जाता है, और चिन्मय का जन्म होता है। 'आग से गुजर जाने का' यही अर्थ है।

केवल पांचवें शरीर तक जाने के लिए ही... पांचवें शरीर से एक और लोक एक और आयाम खुल जाता है। पहले से चौथे शरीर में बाहर की ओर से भीतर की ओर का आयाम था चौथे से पांचवें शरीर में यह आयाम नीचे की ओर से ऊपर की ओर हो जाता है; पांचवें शरीर से यह अहंकार से निर- अहंकार की ओर हो जाता है। अब आयाम भिन्न है। अब भीतर या बाहर का, और ऊर्ध्वमुखी या अधोमुखी का कोई प्रश्न नहीं है। अब 'मैं' और 'न-मैं' का प्रश्न है। अब प्रश्न केंद्र से संबंधित है–कोई केंद्र है या नहीं। मैं इस शब्द का उपयोग दूसरे संदर्भ में करता हूं व्यक्ति के भीतर केंद्र है या नहीं।

पांचवें शरीर तक व्यक्ति बिना किसी केंद्र के होता है–कई खंडों में बंटा हुआ। केवल पांचवें शरीर में केंद्र का जन्म होता है अब एक केंद्र का आरंभ होता है। केवल पांचवें शरीर में एक केंद्र अखंडता, एकत्व होता है। किंतु यह केंद्र अहंकार बन जाता है। अब यह केंद्र आगे के विकास के लिए एक रुकावट होगा। पांचवें शरीर तक यह एक सहायक था–और हर सहायक कदम आगे के विकास के लिए रुकावट बन सकता है। प्रत्येक पुल को पार करना है तो तुम्हें उसे छोड़ देना पड़ेगा। पार करने के लिए वह सहायक था, लेकिन यदि तुम उसी पर रुके रहे तो वही अवरोध बन जाएगा।

पांचवें शरीर तक केंद्र निर्मित करना पड़ता है। गुरजिएफ कहता है कि यह पांचवां केंद्र क्रिस्टलाइजेशन, एकीकरण है। यह क्रिस्टल है। व्यक्ति एक बन जाता है। अब वहां कोई नौकर न रहे मालिक ने उत्तरदायित्व सम्हाल लिया है। अब मालिक ही स्वामी है। वह जाग गया है, वह वापस लौट आया है। अब कोई नौकर नहीं कह सकता कि वह मालिक है। जब मालिक उपस्थित है तो नौकर हट जाते हैं वे खामोश हो जाते हैं।

पांचवां शरीर अखंड है, केंद्रीभूत है। लेकिन अब आगे के विकास के लिए इस केंद्र को फिर से खोना है–एक दूसरे आयाम में, इस एकता में नहीं खोना है, बल्कि शून्यता में, आकाश में खो देना है। और केवल वही खो सकता है, जिसके पास है। इसलिए पांचवें शरीर से पहले अहंकार-शून्यता की बात करना मूर्खता है। पांचवें शरीर से पहले अहंकार-शून्यता की चर्चा करना असंगत है। तुम्हारे पास कोई अहंकार है ही नहीं, तो तुम खो कैसे सकते हो? तब तक बहुत से अहंकार होते हैं; प्रत्येक नौकर का एक अहंकार है। तुम बहु-अहंकारी, बहु-व्यक्तित्ववान, और बहु-चित्तवान हो। तुम्हारे भीतर अनेक चित्त हैं।

इसलिए जब तुम अहंकार छोड़ने का विचार करते हो, तो तुम कभी छोड़ नहीं सकते क्योंकि तुम्हारे पास वह है ही नहीं। उसको छोड़ने के योग्य होने के लिए, पहली बात है कि वह तुम्हारे पास हो। एक धनी आदमी अपनी संपदा को छोड़ सकता है, लेकिन कोई गरीब ऐसा नहीं कर सकता–उसके पास छोड़ने के लिए, त्यागने के लिए कुछ भी नहीं है। लेकिन ऐसे गरीब हैं जो त्याग के बारे में सोचते रहते हैं। धनी व्यक्ति छोड़ने से डरता है, क्योंकि उसके पास खोने के लिए कुछ है, गरीब आदमी हमेशा छोड़ने के लिए तैयार है। क्योंकि उसके पास छोड़ने के लिए कुछ भी नहीं है।

पांचवां शरीर समृद्धतम है। पांचवां शरीर उन सभी बातों का चरम उत्कर्ष है जो मनुष्य में एक बीज के रूप में संभव हैं। यह शिखर है, पांचवां शरीर व्यक्तित्व का शिखर है–प्रेम का शिखर है करुणा का शिखर है हर सार्थक चीज का शिखर है। लेकिन अब कांटे खो चुके हैं तो फूलों को भी खो जाना चाहिए। अब बस सुगंध ही होगी, फूल नहीं। छठवां शरीर सुगंध का, ब्रह्मांडीय सुगंध का आयाम है–न कोई फूल न कोई केंद्र। परिधि तो है परंतु कोई केंद्र नहीं हैं–या हर कहीं केंद्र है या प्रत्येक चीज केंद्र बन गई है या अब कोई केंद्र नहीं है। बस एक विस्तार की अनुभूति है। कोई विभाजन नहीं है। अब वहां कोई विभाजन नहीं है। व्यक्ति का विभाजन भी नहीं है–'मैं' और 'मैं नहीं' तथा 'मैं' और 'दूसरा'–वहां किसी प्रकार का कोई विभाजन नहीं है।

इस प्रकार व्यक्ति दो तरह से मिट सकता है एक स्किजोफ्रेनिक खंड-खंड अनेक व्यक्तित्यों में बंटा हुआ, दूसरा ब्रह्मांडीय-परम में खोया हुआ, वृहत्तर महत्तम, ब्रह्म में खोया हुआ, विस्तीर्णता में विसर्जित। अब फूल नहीं है लेकिन सुगंध है।

और फूल भी एक बाधा है। जब केवल सुगंध होती है, तो वह परिपूर्ण है। अब इसका कोई स्रोत नहीं है तो यह मिट नहीं सकती। यह अमर है। जिसकी शुरुआत है उसका अंत होगा, जिसका जन्म है उसकी मृत्यु होगी। अब फूल नहीं है इसलिए कोई स्रोत भी नहीं है। सुगंध अकारण है इसलिए न तो इसका अंत है और न ही इसकी सीमा है। फूल की सीमा होती है सुगंध असीमित होती है। इसके लिए कोई अवरोध नहीं है। यह पार जाती है पार करती है और पार चली जाती है।

तो पांचवें शरीर से आगे प्रश्न अब ऊर्ध्वगामी अधोगामी पार्श्वगामी-अग्रगामी अंतर्गामी, बहिर्गामी का नहीं है। अब प्रश्न केंद्र के साथ होने या बिना केंद्र के होने का है, अहंकार के साथ या अहंकार के बिना होने का है। और अहंकार खोना सबसे दुष्कर चीज है। पांचवें शरीर तक संकेद्रित होना, केंद्रित हो जाना कठिन नहीं है क्योंकि यह अहंकार को तृप्त करने वाला था। प्रत्येक साधक प्रत्येक खोजी पांचवें शरीर तक जा सकता है। यह अहंकार के लिए तृप्तिदायी है। कोई भी व्यक्ति स्किजोफ्रेनिक खंडित व्यक्तित्व का होना पसंद नहीं करता है। प्रत्येक व्यक्ति क्रिस्टलाइव्ह पर्सनैलिटी, एकीकृत व्यक्तित्व- इसकी महिमा, इसकी समृद्धि, इसकी प्रसन्नता ऐसा होने की अनुभूति को पसंद करेगा। हर व्यक्ति यह चाहता है।

अब एक और बड़ा प्रश्न खड़ा होता है–जो किसी विधि से संबंधित नहीं है, क्योंकि पांचवें शरीर से कोई विधि नहीं है। क्यों? क्योंकि प्रत्येक विधि अहंकार से बंधी हुई है। जब तुम किसी विधि का उपयोग करते हो, तुम शक्तिशाली हो जाते हो। इसलिए जो पांचवें शरीर और उससे ऊपर की बात करते हैं, वे अ-विधि की बात करते हैं; वे विधि- रहितता की बात करते हैं, वे-कोई टेकनीक नहीं है– इसकी बात करते हैं। वे 'कैसे' की बात नहीं करते हैं। अब वहां कोई ' कैसे' नहीं है। पांचवें शरीर से विधि खो जाती है।

पांचवें शरीर तक तुम विधि का प्रयोग कर सकते हो। अब विधि किसी काम की नहीं है क्योंकि करने वाले को ही मिट जाना है। अगर तुम कुछ भी प्रयोग करो तो प्रयोग करने वाला सशक्त होगा, ताकतवर होगा, उसकी ताकत बढ़ जाएगी, वह और अधिक संकेंद्रित हो जाएगा, और अधिक ठोस हो जाएगा। उसका क्रिस्टलीकरण, क्रिस्टलीकरण क्रिस्टलीकरण होता रहेगा और एक अति सूक्ष्म परमाणविक क्रिस्टलीकरण हो जाएगा। जो लोग पांचवें शरीर पर रुक गए हैं, वे कहेंगे कि अनंत आत्माएं हैं अनंत प्रकार की रूहें हैं।

वे लोग परमाणुवादी हैं–आध्यात्मिक परमाणुवादी, उनका भरोसा परमाणुओं में है। दो परमाणु मिल नहीं सकते। उनके पास अपने पड़ोसी के यहां जाने के लिए कोई झरोखा नहीं है उनमें न तो खिड़की है और न ही कोई द्वार वे पूरी तरह से अपने में बंद हैं, अपने में खोए हुए, बाहर के प्रति बंद, ऊपर के प्रति बंद हर दूसरी चीज के लिए बंद। ये झरोखारहित अहंकार हैं। तुम उनके लिए लीबनित्व के एक शब्द 'मोनाड' का प्रयोग कर सकते हो। वे मोनाड हैं–झरोखारहित परमाणु। अब कोई पड़ोसी नहीं है। अब वहां दूसरा कोई भी नहीं है। तुम अकेले अकेले और बस अकेले ही हो।

फिर इसे खोना है। जब कोई विधि नहीं है, तो इसे खोया कैसे जाए? जब कोई रास्ता ही नहीं है, तो इसके पार कैसे हुआ जाए? जब कोई झरोखा ही नहीं है तो इसे पार कैसे करें? जहां कोई द्वार ही नहीं है वहां से बाहर कैसे आएं? झेन साधु द्वार-विहीन-द्वार के बारे में बात करते रहे हैं। अब वहां कोई द्वार नहीं है और फिर भी व्यक्ति को इसके पार जाना है।

तो करना क्या है? इस क्रिस्टलाइजेशन इस एकीकरण के साथ तादात्म्य मत करो। इसके प्रति सजग हो जाओ। इस परमाणु परिवृत्त अहंकार के घेरे– 'मैं' के इस बंद घर के प्रति सजग हो जाओ–बस इसके प्रति बोधपूर्ण हो जाओ। बस सजग हो जाओ और कुछ भी मत करो–और एक विस्फोट होता है तुम उस पार होते हो।

झेन में उनके पास एक कहानी है, हंस का एक अंडा एक बोतल में है। फिर चूजा अंडे से बाहर आ जाता है और बड़ा होने लगता है। बोतल का मुंह इतना छोटा है कि चूजा बाहर नहीं निकल सकता है। अब वह बढ़ रहा है बढ़ रहा है बढ़ता ही जा रहा है और बोतल इतनी छोटी पड़ गई है कि या तो बोतल को तोड़ देना पड़ेगा और हंस की जान बच जाएगी या हंस मर जाएगा और बोतल बचा ली जाएगी। और वे पूछते हैं वे साधकों से पूछते हैं 'क्या करें? हम दोनों को नहीं खोना चाहते। हंस को भी बचाना है और बोतल को भी। क्या करें?'

यह पांचवें का पांचवें शरीर का प्रश्न है जब बाहर निकलने का कोई रास्ता न हो और हंस बड़ा हो रहा हो और संकेंद्रित होने की प्रक्रिया घनीभूत हो चुकी हो अब क्या करें?

वे ध्यानियों को इस पर ध्यान करने के लिए कहते हैं। साधक एक कमरे के भीतर चला जाता है। दरवाजा बंद कर लेता है और अब वह इस पर चिंतन करना आरंभ कर देता है क्या किया जाए? केवल दो रास्ते हैं या तो बोतल तोड़ देनी पड़ेगी और हंस को बचा लिया जाएगा, या हंस को मर जाने दें और बोतल को बचा लें। इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है इसलिए मन सोचता है, सोचता है, और सब तरह से सोचता है। साधक विचार करता है और विचार करता है और फिर वह बाहर आकर कोई उपाय सुझाएगा, पर फिर वह बात अस्वीकृत कर दी जाएगी क्योंकि इसमें कोई भी उपाय नहीं है। गुरु उसे सोचने के लिए फिर से वापस भेज देगा।

दिन-रात साधक वह ध्यानी इसके बारे में विचार करता रहता है विचार करता रहता है और समाधान का कोई रास्ता नहीं है। एक क्षण आता है जब विचार प्रक्रिया ठहर जाती है। और वह भागता हुआ आता है और कहता है हंस बाहर है! हंस बाहर है! वह बाहर आता है और कहता है हंस बाहर है–यूरेका! मैंने पा लिया है! और गुरु कभी नहीं पूछता, कैसे? क्योंकि उसका कोई अर्थ नहीं है हंस बाहर है।

पांचवें शरीर से समस्या एक कोआन है; यह एक पहेली है। व्यक्ति को सजग होना इस एकीकृत के प्रति बस सजग हो जाना है–और हंस बाहर है। एक क्षण आता है जब तुम जानते हो कि तुम बाहर हो कोई ' मैं ' नहीं है। घनीभूत अहंकार खो दिया गया है–अर्जित किया गया और खो दिया गया। एक मार्ग की तरह एक पुल के रूप में एक रास्ते की भांति यह आवश्यक था पांचवें शरीर को पार करने के लिए घनीभूत अहंकार आवश्यक था वरना पांचवां शरीर पार नहीं किया जा सकता है। पांचवें शरीर के लिए एक सघन केंद्र अहंकार आवश्यक था।

ऐसे लोग हैं जिन्होंने चौथे से गुजरे बिना पांचवें शरीर को उपलब्ध कर लिया है। जिस व्यक्ति ने बहुत समृद्धि अर्जित कर ली है वह जो अहंकारी है, एक प्रकार से उसका अहंकार सघन हो गया है। जो व्यक्ति किसी देश का राष्ट्रपति हो गया है एक प्रकार से उसका अहंकार सघन हो गया है। कोई हिटलर कोई मुसोलिनी– एक प्रकार से उनका अहंकार अत्यंत सघन हो गया है। लेकिन यह क्रिस्टलाइजेशन पांचवें शरीर की है और पांचवें शरीर से आई है। पहले के चार शरीर इसके साथ लयबद्धता में नहीं हैं, इसलिए यह एक रुग्णता बन जाती है। यह एक रोग बन जाता है। महावीर और बुद्ध भी एक प्रकार से क्रिस्टलाइल्ड हैं, लेकिन एक भिन्न ढंग से।

हम सभी अहंकार को परिपूर्ण करने की कामना रखते हैं क्योंकि पांचवें शरीर तक पहुंचने की अंतर्तम आवश्यकता है। लेकिन यदि तुम शॉर्टकट चुनते हो तो तुम खो जाओगे। यह शॉर्टकट धन-संपदाओं से, शक्ति से, राजनीति के माध्यम से है। अहंकार को सघन किया जा सकता है लेकिन यह नकली क्रिस्टलाइजेशन है– यह क्रिस्टलाइजेशन तुम्हारे संपूर्ण व्यक्तित्व के अनुरूप नहीं है। यह क्रिस्टलाइजेशन तुम्हारे पैर में होने वाले कोने,

गोखरू की तरह है! तुम्हारे पैर में कुछ पत्थर जैसी रचना घनीभूत हो जाती है और जब तुम चलते हो यह चुभती है–तो यह इसी गोखरू जैसा क्रिस्टलाइजेशन है।

अगर पांचवें शरीर में हंस बाहर है तो तुम छठवें शरीर में हो। पांचवें शरीर से छठवें की ओर रहस्य का आयाम है। पांचवें तक विज्ञान मदद कर सकता है पांचवें तक वैज्ञानिक विधियों का उपयोग किया जा सकता है। या विधियों का एक विज्ञान निर्मित किया जा सकता है। योग पांचवें शरीर तक सहायक है। पांचवें शरीर के बाद योग व्यर्थ है? क्योंकि योग एक विधि, एक उपाय, एक विज्ञान है।

पांचवें शरीर से झेन सहायक है पांचवें से झेन बहुत मददगार है।

और उसके पहले

उसके पहले योग सहायक है। उसके पहले झेन इतना सहायक नहीं है। झेन पांचवें शरीर से छठवें शरीर में जाने की विधि है। तो झेन एक पुष्प है। जड़ें अलग- अलग हैं। झेन जापान में फूल बना इसे भारत में बोया गया था। जड़ें योग की थीं उसमें से झेन पुष्पित हुआ।

पांचवें शरीर से छठवें की यात्रा झेन है। यही कारण है कि पश्चिम में झेन का इतना आकर्षण है। क्यों? इसका इतना अधिक आकर्षण है क्योंकि पश्चिमी व्यक्तित्व गलत ढंग से क्रिस्टलाइल्ड है; अहंकारी है। यह विशेष ढंग का अहंकार गलत स्रोतों से निर्मित हुआ है चार उचित स्रोतों से नहीं। पश्चिम का अहंकार एक गलत प्रक्रिया द्वारा घनीभूत हुआ है। पश्चिमी लोग संसार के मालिक थे वे इसके स्वामी थे। वे समृद्धतम लोग थे। उनके पास विज्ञान है उनके पास तकनीक है उनके पास सब-कुछ है इसलिए वे क्रिस्टलाइल्ड, सघन हो गए। उनके पास रॉकेट है वे चांद पर जा सकते हैं। एक अर्थ में पश्चिमी अहंकार अति सघन है।

इसलिए उनके लिए झेन आकर्षक है। लेकिन यह उनकी सहायता नहीं कर सकता। यह सहायता नहीं कर सकता क्योंकि उनका क्रिस्टलीकरण गलत है। इसलिए गुरजिएफ पश्चिम के लिए अधिक सहायक है क्योंकि वह पहले शरीर से पांचवें तक जाता है। पांचवें शरीर के बाद वह सहायक नहीं है। पांचवें तक क्रिस्टलाइजेशन तक... तुम उसके साथ रह कर क्रिस्टलाइज हो सकते हो।

झेन बस एक फैशन भर सिद्ध होगा क्योंकि पश्चिम में इसकी जड़ें नहीं हैं। पूरब में यह एक लंबी प्रक्रिया एक बहुत लंबी प्रक्रिया थी–जो हठयोग से शुरू होकर और बुद्ध में अपने शिखर पर पहुंची। विनम्र चित्त के हजारों-हजार साल; अहंकार के नहीं, समर्पित भाव-दशा के सकारात्मक कृत्य के नहीं, ग्राहकता के, आक्रामकता के नहीं। बल्कि यह कहना बेहतर होगा कि स्त्रैण-चित, ग्रहणशील चित्त की लंबी परंपरा रही। पूरब रुपए रहा है। पश्चिम पुरुष है आक्रामक, सक्रिय। पूरब एक स्वीकार भाव, एक ग्रहणशीलता रहा है। इसलिए झेन सहायक हो सका, क्योंकि चारों प्रक्रियाएं भीतर- भीतर कार्य कर रही थीं–झेन यहां पुष्पित हो सका।

अब जापान में भी आज यह अर्थहीन हो गया है क्योंकि जापान पूरब का एकमात्र ऐसा देश है जो अब पूरब का नहीं रहा है। वह पश्चिमात्य हो चुका है। जापान सर्वाधिक विनम्र देशों में से एक था लेकिन अब उसकी विनम्रता बस एक दिखावा है। अब वह जापान का अंतर्तम नहीं है बस एक औपचारिकता है क्योंकि विनम्र होने के अपने लाभ हैं। विनम्र होना सफलता दिलाता है, विनम्र होकर अहंकार को उपलब्धियां मिलती हैं। इसलिए झेन की जड़ें जापान से उखड़ गई हैं और अब वह पश्चिम में जड़ें खोज रहा है क्योंकि वहां नकली क्रिस्टलाइच्छ अहंकार की सहायता मिल रही है।

पांचवें शरीर से छठवें की यात्रा के लिए झेन बहुत सहायक है। लेकिन केवल पांचवें शरीर से छठवें के लिए; चौथे शरीर में नहीं न ही उसके पहले।

किंतु क्या वह आरंभ के लिए नितांत अनुपयोगी है?

नितांत अनुपयोगी है बल्कि हानिकारक बल्कि हानिकारक भी हो सकता है। क्योंकि चौथी कक्षा के विषय में पहली कक्षा में बातें करना प्राथमिक पाठशाला में विश्वविद्यालय स्तर की बातें करना न केवल अनुपयोगी है, बल्कि हानिकारक भी है। केवल पांचवें शरीर से छठवें की यात्रा में झेन किसी काम का हो सकता है। वरना इससे सतोरियां निर्मित होंगी समाधि नहीं।

यह सतोरियां झूठी समाधियां, समाधि के स्वप्नों को निर्मित करेगा और यह सब चौथे शरीर मनस शरीर में अनुभव होगा। यह कलात्मक सौंदर्यबोधयुक्त होगा, यह तुममें सौंदर्य का एक बोध निर्मित करेगा, एक अच्छेपन का भाव निर्मित करेगा। किंतु क्रिस्टलाइजेशन निर्मित नहीं करेगा।

झेन केवल क्रिस्टलाइजेशन के बाद ही सहायक होगा। झेन कोआन–बिना किसी 'कैसे' के हंस का बाहर आ जाना–केवल तभी इसका अभ्यास हो सकता है जब कि बहुत से 'कैसे' का अभ्यास किया जा चुका हो। बहुत सारी विधियों के अभ्यास के बाद ही यह होता है। एक चित्रकार बंद आंखों से चित्र बना सकता है; एक चित्रकार चित्र को ऐसे बना सकता है जैसे कि कोई खेल हो। कोई अभिनेता इस तरह से अभिनय कर सकता है जैसे कि वह अभिनय नहीं कर रहा है, और अभिनय तभी परिपूर्ण होता है जब वह अभिनय जैसा नहीं दिखाई पड़ता हो। लेकिन इस के पीछे बहुत परिश्रम किया गया है परिश्रम के अनेक वर्ष अभ्यास के कई साल। अब अभिनेता पूरी तरह से विश्राम में है, लेकिन यह विश्राम की अवस्था एक दिन में उपलब्ध नहीं कर ली गई है। इसकी अपनी विधियां हैं और इसकी अपनी प्रक्रियाएं हैं।

हम चलते हैं, पर हम कभी नहीं जानते कि हम कैसे चलते हैं। अगर कोई तुमसे पूछे कि तुम कैसे चलते हो, तो तुम कहोगे, 'मैं बस चलता हूं। वहां इसके लिए कोई 'कैसे' नहीं होगा।' लेकिन जब कोई बच्चा चलना शुरू करता है, तो वहां विधि होती है वह सीखता है। लेकिन अगर कोई व्यस्क किसी बच्चे से बात करे, उससे कहे कि चलने के लिए किसी विधि की जरूरत नहीं है–'तुम बस चलो'– तो यह असंगत बात हो जाती है। बच्चा इसे समझ नहीं सकता है।

कृष्णमूर्ति इसी तरह की बात करते रहे हैं बच्चों से वयस्क मन की बातचीत। यह कहना 'तुम चल सकते हो तुम बस चलो। हंस बाहर है। जाओ और चलने लगो।'और वे लोग सुन रहे हैं। वे प्रभावित हो रहे हैं खुश हो रहे हैं क्योंकि यह आसान मालूम होता है–बिना किसी विधि के चलना आसान मालूम होता है। तब तो हर व्यक्ति चल सकता है।

इसी कारण से कृष्णामूर्ति भी पश्चिम में आकर्षक हो गए हैं। क्योंकि पश्चिम यदि हठयोग, या भक्तियोग, मंत्रयोग या तंत्रयोग, या राजयोग की ओर देखता है, तो यह बहुत लंबा, बहुत दुर्गम बहुत कठिन सा प्रतीत होता है। सदियों-सदियों के परिश्रम, अनेकानेक जन्मों की आवश्यकता है। इसे नहीं किया जा सकता है। कुछ ऐसा हो जो जल्दी से हो जाए कोई छोटा रास्ता। कुछ ऐसा जो क्षण भर में फल दे, त्वरित उपलब्धि होनी चाहिए। इसलिए कृष्णमूर्ति उन्हें प्रसन्न करते हैं आकर्षित करते हैं। वे कहते हैं 'बस चलो। परमात्मा की ओर चल पड़ो। इसकी कोई विधि नहीं है।' जब कोई विधि नहीं है, तो हम सोचते हैं कि अब तो जरा भी कठिनाई नहीं है। लेकिन अ-विधि को उपलब्ध कर पाना सर्वाधिक दुष्कर कार्य है। इस तरह से कार्य करना जैसे कि कोई कार्य न कर रहा हो, इस प्रकार से बोलना जैसे कि कोई न बोल रहा हो इस प्रकार से प्रयास-रहित होकर चलना जैसे कि कोई न चल रहा हो, इसके आधार में इसकी जड़ों में लंबा प्रयास, दीर्घकाल का परिश्रम समाया हुआ है।

लेकिन परिश्रम प्रयास उनकी एक सीमा है–पांचवें शरीर तक उनकी जरूरत है। पांचवें शरीर से वे अर्थहीन हो जाते हैं। अगर तुम परिश्रम करते ही चले जाओ अगर तुम सीखते ही चले जाओ, अगर तुम पांचवें

शरीर से छठवें में जाने के लिए अभ्यास करते जाओ तो तुम कहीं नहीं पहुंचोगे। हंस भीतर ही रहेगा, हंस कभी बाहर नहीं आएगा।

इस देश के योगियों के साथ यही समस्या है। वे पांचवें शरीर में अटक जाते हैं। उन्हें इसे पार करना कठिन लगता है, क्योंकि वे विधियों से आसक्त हैं, विधियों से सम्मोहित हैं। उन्होंने हमेशा विधि के साथ कार्य किया है। पांचवें शरीर तक सुस्पष्ट विज्ञान है, वहां तक सब कैसे हुआ, यह सुस्पष्ट है। वे पांचवें शरीर तक आराम से पहुंच गए। वहां तक प्रयास था–और वे इसे कर पाए। उसके लिए जितनी भी त्वरा की जरूरत हो–वह उनके लिए जरा भी समस्या न थी। वे समग्र प्रयास कर सकते थे। जितने अधिक प्रयास की जितने अधिक परिश्रम की आवश्यकता हो, उन्होंने की। अब पांचवें शरीर में उन्हें विधि से अ-विधि के आयाम में जाना है। अब वे एक उलझन में पड़ जाते हैं। वे यहां ठहर जाते हैं, और यह पांचवां शरीर अनेक खोजियों के लिए यात्रा का अंत हो जाता है। यही कारण है कि पांच शरीरों की बात होती है सात की नहीं। पांच पड़ाव पांच शरीर, लेकिन सात की बात नहीं होती है। क्योंकि जो पांचवें तक गए हैं वे सोचते हैं कि यही अंत है। यह अंत नहीं है। अब यह एक नया आरंभ है। अब फिर से एक नया आरंभ है वैयक्तिक से निर्वैयक्तिक की ओर। झेन यहां सहायक हो सकता है झेन जैसी विधियां-अ-विधियां-झेन की तरह से प्रयासरहित प्रयास सहायक हो सकता है।

झाझेन का अर्थ है? मात्र बैठना, कुछ न करना। जिस व्यक्ति ने बहुत कुछ किया है, इसकी कल्पना भी नहीं कर सकता है। बस बैठे रहना, कुछ भी न करना! यह अकल्पनीय है। गांधी जी इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। उन्होंने बहुत कुछ किया है। बस बैठे रहना! वे कहेंगे? तब तो मैं अपना चरखा चलाऊंगा। कुछ तो करना चाहिए। यही मेरी प्रार्थना है, यही मेरा ध्यान है। न करने का अर्थ है. कुछ भी नहीं। न करने का अपना एक आयाम है, अपना एक आनंद है, अपना निजी अस्तित्व है। लेकिन वह पांचवें शरीर से छठवें शरीर तक है। उसके पहले इसे नहीं समझा जा सकता।

और छठवें शरीर से सातवें की ओर अ-विधि भी नहीं है। पांचवें शरीर में विधि छूट जाती है और छठवें शरीर में अ-विधि भी खो जाती है। एक दिन तुम पाते हो कि तुम सातवें शरीर में हो। ब्रह्म भी जा चुका है केवल ' ना-कुछपन ' है। यह घटना घटती है। छठवें शरीर से सातवें में यह बस एक घटना है, यह बस एक घटना है।

वह चुनता है...?

तुम ऐसा कह सकते हो ऐसा तुम कह सकते हो। लेकिन अगर तुम ऐसा कहते हो तो फिर से यह छठवें शरीर की बात हो जाती है। वहां न तो कोई चुनने वाला होता है न कोई चुनाव। यह बस होता है– बिना किसी कारण के अज्ञात ढंग से। केवल जब यह अकारण होता है तब ही यह पिछले शरीर के सातत्य में नहीं होता है। अगर इसका कारण होगा तब एक सातत्य होगा तब होने को खोया नहीं जा सकता है। छठवें शरीर तक चाहे तुम कुछ करो या कुछ भी न करो एक सातत्य है– और यह सातत्य बना रहता है। लेकिन सातवां शरीर पूर्णत: शून्य है पूरी तरह से अनस्तित्व निर्वाण खालीपन नॉन-एक्सिस्टेंस।

इसलिए वहां पर कोई सातत्य नहीं है। अस्तित्व से अनस्तित्व में सातत्य होने की कोई संभावना नहीं है। यह बस एक छलांग है, और अकारण है। अगर इसका कोई कारण हो तो वह कारण छठवें शरीर से जुड़ा हुआ होगा, और तब वहा एक सातत्य होगा। इसलिए छठवें शरीर से सातवें शरीर तक जाने के बारे में बात नहीं की जा सकती है। छठवें शरीर से सातवें शरीर तक तुम जा सकते हो लेकिन इस के बारे में बात नहीं कर सकते हो। यह एक असातत्य, एक छलांग है। कुछ था और अब कुछ है– और दोनों के बीच में कोई भी संबंध नहीं है।

कुछ था जो अब नहीं बचा है, और कुछ नया आ गया है। दोनों के बीच में कोई संबंध नहीं है। एक मेहमान इस द्वार से बाहर चला गया है, और दूसरा मेहमान दूसरी ओर से अंदर आ गया है। ये दो मेहमान

संबंधित नहीं हैं असंबद्ध हैं। एक के जाने में और दूसरे के आने में कोई संबंध नहीं है। वहां पर एक अंतराल है असंबंधित।

सातवां शरीर परम है, क्योंकि अब तुमने कार्य-कारण सिद्धांत की दुनिया पार कर ली है–कार्य-कारण की संबंधता पार कर ली है। अब तुम स्रोत पर पहुंच गए हो, मूल- स्रोत पर–वह जो सृष्टि के पूर्व था और जो प्रलय के बाद भी रहेगा, और वह जो सदैव पीछे है, वह जो सदा वहां खड़ा है प्रतीक्षा में प्रतीक्षा करता हुआ प्रतीक्षारत। इसलिए छठवें शरीर से सातवें केलिए कोई अविधि भी नहीं हैं। यहां पर अविधि भी सहायता नहीं कर सकती है। यहां पर कुछ भी सहायक नहीं है, सभी कुछ रुकावट है। ब्रह्मांडीय अस्तित्व से ना-कुछपन की ओर यह एक घटना है– अकारण अज्ञात, बिना तैयारी के बिना चाही हुई घटना है।

यह अचानक घटित होता है। केवल एक बात अपरोक्ष रूप से याद रखी जानी है तुम्हें छठवें शरीर से आसक्त नहीं होना है। यह आसक्ति अपरोक्ष होगी। सातवें तक जाने से रोकेगी। सातवें तक जाने का कोई विधायक रास्ता नहीं है लेकिन उसमें एक अपरोक्ष अवरोध हो सकता है। तुम छठवें शरीर से आसक्त हो सकते हो। तुम ब्रह्म, ब्रह्मांडीय अस्तित्व से आसक्त हो सकते हो और कह सकते हो 'मैं पहुंच गया हूं।' इसलिए जिन्होंने कहा है मैं पहुंच गया हूं वे सातवें शरीर तक नहीं जा सकते हैं।

तो जो कहते हैं मैंने जान लिया है छठवें शरीर में रुके रहते हैं। इसलिए वेदांत छठवें में रुका रहता है। केवल बुद्ध छठवें शरीर को पार करते हैं क्योंकि वे कहते हैं, 'मैं नहीं जानता।' परम प्रश्नों के उत्तर देने से वे इनकार कर देते हैं। वे कहते हैं मैं नहीं जानता हूं। वे कहते हैं 'कोई नहीं जानता है।' वे कहते हैं 'किसी ने नहीं जाना।' लेकिन उनको नहीं समझा जा सका।

जिन्होंने उनको सुना... उन्होंने कहा नहीं हमारे शिक्षकों ने जाना है। वे कहते हैं ब्रह्म है। लेकिन बुद्ध सातवें शरीर की बात कर रहे हैं। कोई शिक्षक नहीं कह सकता कि उसने सातवें शरीर के बारे में जाना है–कोई नहीं कह सकता है क्योंकि जिस पल तुम इसे कह देते हो तुम्हारा इसके साथ संपर्क खो जाता है। और एक बार तुमने इसे जान लिया है तो तुम इसे कह नहीं सकते हो।

छठवें शरीर तक प्रतीकों से अभिव्यक्ति हो सकती है लेकिन सातवें शरीर के लिए कोई प्रतीक नहीं है। यह मात्र एक शून्यता है।

चीन में एक मंदिर है, जो बस खाली है। उसके भीतर कुछ भी नहीं है–न कोई प्रतिमा, न कोई शास्त्र कुछ भी नहीं। वह बस खाली है नंगी दीवालें। और अगर तुम वहां पर जाओ और पुजारी से पूछो–जो कि मंदिर के भीतर नहीं रहता है जो बाहर रहता है–पुजारी तो हमेशा मंदिर के बाहर ही रह सकता है। वह भीतर नहीं हो सकता है—अगर तुम उससे पूछो? इस मंदिर के देवता कहां हैं? तो वह कहता है देखो।–और वहां खालीपन है। वह कहता है देखो! यहां है वह। और वहां पर कोई भी नहीं है, न कोई प्रतिमा, न कोई शास्त्र-रिक्त नग्न, खाली मंदिर। यहीं, अभी। और तुम चारों ओर देखते हो क्योंकि हम किसी वस्तु को देखना चाहते हैं।

अगर तुम किसी वस्तु को देखना चाहते हो, तो तुम छठवें शरीर को पार करके सातवें तक नहीं पहुंच सकोगे। तो उसकी अपरोक्ष तैयारियां हैं। पांचवें शरीर तक विधायक तैयारियां होती हैं, छठवें शरीर से ऊपर अपरोक्ष तैयारियां होती हैं। एक शून्य मन की जरूरत होती है, शून्य मन जो किसी चीज की भी अभिलाषा नहीं कर रहा है– मोक्ष की भी नहीं, मुक्ति की भी नहीं, निर्वाण की भी नहीं, जिसे किसी चीज की अभिलाषा नहीं है जो कुछ भी खोज नहीं रहा है–सत्य भी नहीं। जो किसी की प्रतीक्षा नहीं कर रहा है–भगवत्ता की, ब्रह्म की भी नहीं। वह बस है, बिना किसी अभीप्सा के बिना किसी इच्छा के बिना किसी मांग के बिना किसी कामना के। बस 'है-पन।' तब घटना घट जाती है। तब यह घटित होता है और वह पाता है कि ब्रह्म भी जा चुका है।

क्रमश: तुम सातवें शरीर तक पहुंच सकते हो। भौतिक शरीर से आरंभ करो और भाव शरीर के लिए प्रयास करो। फिर सूक्ष्म शरीर, और फिर मनस शरीर। तुम पांचवें शरीर तक प्रयास से पहुंच सकते हो, और पांचवें शरीर से तुम्हें सजग हो जाना चाहिए। तब प्रयास महत्वपूर्ण नहीं है तब चेतना महत्वपूर्ण है। छठवें शरीर से सातवें तक चेतना भी महत्वपूर्ण नहीं है। बस 'है-पन' होना।

हम जो बीज लिए चल रहे हैं, उसकी यह क्षमता है। यह संभावना है।

आज इतना ही

आठवां प्रवचन

बनना और होना

ओशो कृपया हमें सात शरीरों के तनावों और विश्रांतियों के बारे में कुछ बताइए।

सारे तनाव का मूल-स्रोत कुछ और हो जाने की चाहत है। व्यक्ति सदा कुछ और होने की कोशिश कर रहा है। कोई भी जैसा वह है उसके साथ विश्राम में नहीं है। होना स्वीकृत नहीं है, होने से इनकार किया गया है और कुछ और बन जाने को, होने के आदर्श के रूप में ले लिया गया है। इसलिए मूलभूत तनाव सदा ही जो तुम हो और जैसे तुम हो जाना चाहते हो, के बीच है।

तुम कुछ और हो जाने की इच्छा रखते हो। तनाव का अभिप्राय है कि तुम उसके साथ प्रसन्न नहीं हो जैसे कि तुम हो, और जो तुम नहीं हो वह बन जाने की अभिलाषा रखते हो। तनाव इन दोनों के बीच निर्मित हो जाता है। तुम क्या हो जाना चाहते हो, वह महत्व नहीं रखता। अगर तुम धनवान प्रसिद्ध शक्तिशाली हो जाना चाहते हो, या तुम मुक्त, स्वतंत्र, दिव्य, अमर्त्य हो जाना चाहते हो या तुम मुक्ति मोक्ष की अभिलाषा रखते हो, तब भी तनाव मौजूद होगा।

कुछ भी, जिसकी किसी ऐसी चीज के रूप में इच्छा की गई है जो भविष्य में पर्णू हो जाए और जैसे कि तुम हो उसके स्थान पर वह हो जाए तो इससे तनाव निर्मित होता है। जितना अधिक असंभव आदर्श होता है उतना ही अधिक तनाव होगा। इसलिए वह व्यक्ति जो पदार्थवादी है आमतौर पर उतना तनावग्रस्त नहीं होता जितना वह व्यक्ति जो धार्मिक है क्योंकि धार्मिक व्यक्ति असंभव की अभिलाषा कर रहा है वह जो बहुत दूर है उसकी अभिलाषा कर रहा है। दूरी इतनी अधिक है कि केवल एक बड़ा तनाव ही अंतराल को भर सकता है।

तनाव का अभिप्राय है एक अंतराल जो जैसे कि तुम हो और तुम जो हो जाना चाहते हो, के बीच में होता है। अगर अंतराल अधिक हो तो तनाव भी बड़ा होगा। अगर अंतराल छोटा हो, तो तनाव भी छोटा होगा। और अगर कोई भी अंतराल न हो, इसका अर्थ है कि जैसे तुम हो तुम इससे संतुष्ट हो। दूसरे शब्दों में तुम उससे अलग कुछ भी होना नहीं चाहते जो तुम हो। तब तुम्हारा मन इसी क्षण में होता है। तब वहां तनावग्रस्त हो पाने के लिए कुछ भी नहीं होता, तुम अपने साथ आराम में हो। तुम ताओ में हो। मेरे अनुसार, अगर कोई अंतराल नहीं है तो तुम धार्मिक हो, तुम धर्म में हो।

अंतराल में बहुत सी पर्तें हो सकती हैं। अगर अभिलाषा भौतिक है, तो तनाव भौतिक होगा। जब तुम एक विशेष शरीर, एक विशेष आकार खोजते हो, अगर तुम भौतिक तल पर किसी अन्य चीज की अभिलाषा करते हो, जो तुम हो उससे अलग कुछ और की चाहत–तब तुम्हारे भौतिक शरीर में तनाव होता है। कोई और अधिक सुंदर होना चाहता है, अब तुम्हारा शरीर तनावग्रस्त हो जाता है। यह तनाव तुम्हारे पहले शरीर, जैविक शरीर से शुरू होता है, लेकिन अगर यह प्रबल है, सतत है यह गहराई में जा सकता है और तुम्हारे अस्तित्व के अन्य तलों पर फैल सकता है।

अगर तुम मानसिक शक्तियों की अभिलाषा कर रहे हो तो तनाव मानसिक तल पर शुरू होता है और फैल जाता है। यह फैलना ऐसे ही है जैसे कि तुम झील में एक पत्थर फेंकते हो। यह एक विशेष स्थान पर गिरता है लेकिन इसके द्वारा निर्मित तरंगें अनंत में फैलती चली जाती हैं। इसलिए तनाव तुम्हारे सात शरीरों में से

किसी भी एक शरीर से शुरू हो सकता है लेकिन मूलस्रोत सदा वही होता है एक स्थिति जो है तथा एक स्थिति जिसकी अभिलाषा है, के बीच का अंतराल।

अगर तुम्हारे पास एक विशेष तरह का मन है और तुम इसको बदलना, रूपांतरित करना चाहते हो–यदि तुम अधिक चतुर अधिक बुद्धिमान हो जाना चाहते हो—तब तनाव निर्मित होता है। अगर हम केवल अपने आप को पूरी तरह से स्वीकार कर लें तब कोई तनाव नहीं होता है। यह समग्र स्वीकार चमत्कार है, एक मात्र चमत्कार। किसी ऐसे व्यक्ति को पा लेना जिसने अपने आप को पूरी तरह से स्वीकार कर लिया है, एक मात्र आश्चर्यजनक बात है।

अस्तित्व अपने आप में तनावग्रस्त नहीं है। तनाव सदा काल्पनिक और अस्तित्वहीन संभावनाओं के कारण है। वर्तमान में कोई तनाव नहीं है तनाव सदा भविष्य उन्मुख है। यह कल्पना से आता है। तुम जैसे हो अपने आप की कल्पना उससे हट कर किसी अन्य रूप में कर सकते हो। यह संभावना जिसकी कल्पना की गई है तनाव उत्पन्न करेगी। इसलिए कोई व्यक्ति जितना अधिक कल्पनाशील होगा उतने ही अधिक तनाव की संभावना है। तब कल्पना विध्वंसक हो गई है।

कल्पना रचनात्मक सृजनात्मक भी बन सकती है। अगर तुम्हारी कल्पना की सारी क्षमता वर्तमान में, उसी पल में केंद्रित है भविष्य में नहीं तब तुम अपने अस्तित्व को काव्य की भांति देख सकते हो। तुम्हारी कल्पना अभिलाषा निर्मित नहीं कर रही है, यह जीने में प्रयुक्त हो रही है। वर्तमान में यह जीना तनाव से परे है।

पशु तनावग्रस्त नहीं हैं वृक्ष तनावग्रस्त नहीं हैं? क्योंकि उनके पास कल्पना की क्षमता नहीं है। वे तनाव के तल से नीचे हैं, इसके ऊपर नहीं। उनका तनाव बस एक संभावना है यह साकार नहीं हुआ है। वे विकसित हो रहे हैं। एक पल आएगा जब तनाव उनके अस्तित्व में स्फुटित होगा और वे भविष्य की अभिलाषा करने लगेंगे। यह होगा ही–कल्पना सक्रिय हो जाती है।

वह पहली बात जिसके प्रति कल्पना सक्रिय होती है भविष्य है। तुम प्रतिमाएं निर्मित करते हो और क्योंकि वहां पर कोई समतुल्य वास्तविकताएं नहीं हैं, तुम और-और प्रतिमाएं बनाते चले जाते हो। लेकिन जहां तक वर्तमान का संबंध है आमतौर से तुम इससे संबंधित कल्पना न कर सकोगे। वर्तमान में तुम कल्पनाशील कैसे हो सकते हो, उसकी कोई जरूरत भी प्रतीत नहीं होती। यह बात समझ लेनी चाहिए।

अगर तुम वर्तमान में सचेतन रूप से उपस्थित रह सको तुम अपनी कल्पना में नहीं रहोगे। तब कल्पना वर्तमान के भीतर अपने आप को निर्मित करने के लिए स्वतंत्र रहेगी। केवल सही ढंग से केंद्रित होने की जरूरत है। अगर कल्पना वास्तविक पर केंद्रित है, तो यह सृजन करने लगती है। सृजन कोई भी रूप ले सकता है। अगर तुम एक कवि हो, तो यह काव्य का प्रस्फुटन बन जाता है। यह काव्य भविष्य के लिए अभिलाषा नहीं होगा, बल्कि वर्तमान की एक अभिव्यक्ति होगा। या अगर तुम एक चित्रकार हो, तो चित्रकला का प्रस्कुटन होगा। चित्र किसी ऐसी चीज का नहीं होगा जैसे कि तुमने इसकी कल्पना की है, बल्कि जैसे कि तुमने इसको जीया है और जाना है।

जब तुम कल्पना में नहीं जी रहे होते हो तो वर्तमान का क्षण तुम्हें दे दिया जाता है। तुम इसको अभिव्यक्त कर सकते हो या तुम मौन में जा सकते हो।

लेकिन अब यह मौन कोई अभ्यास किया हुआ मुर्दा मौन नहीं होता है यह मौन भी वर्तमान के क्षण की एक अभिव्यक्ति है। अब यह क्षण इतना गहरा है कि केवल मौन के द्वारा ही इसकी अभिव्यक्ति की जा सकती है। अब न तो काव्य पर्याप्त है, न चित्रकारी पर्याप्त है। कोई भी अभिव्यक्ति संभव नहीं है। मौन ही एकमात्र अभिव्यक्ति है। यह मौन कोई नकारात्मक वस्तु नहीं है, बल्कि तुलनात्मक रूप से देखा जाए तो विधायक रूप से

पुष्पित होना है। तुम्हारे भीतर कुछ खिल गया है मौन का पुष्प और इस मौन के माध्यम से वह सभी कुछ जो तुम जी रहे हो अभिव्यक्त होता है।

एक दूसरी बात भी समझ लेनी है। वर्तमान की कल्पना के द्वारा की गई यह अभिव्यक्ति न तो भविष्य की कल्पना है और न ही अतीत के विरोध में कोई प्रतिक्रिया है। यह किसी ऐसे अनुभव की अभिव्यक्ति भी नहीं है जो जाना हुआ है यह अनुभूति का अनुभव है–जैसे कि तुम इसे जी रहे हो जैसा कि यह तुम्हारे भीतर घटित हो रहा है। जी लिया हुआ अनुभव नहीं बल्कि अनुभव करने की जीवंत प्रक्रिया।

तब तुम्हारा अनुभव और अनुभूति दो बातें नहीं होती हैं, वे एक और एक समान होती हैं। तब वहां पर कोई चित्रकार नहीं होता। अनुभूति अपने आप ही चित्र बन जाती है और अनुभूति ने स्वत: ही अपने आप को अभिव्यक्त कर दिया है। तुम सृष्टा नहीं होते। तुम सृजनात्मकता, एक जीवंत ऊर्जा होते हो। तुम कवि नहीं होते, तुम काव्य होते हो। अनुभव न तो भविष्य के लिए है और न अतीत के लिए, यह न तो भविष्य से है और न अतीत से। क्षण स्वयं ही शाश्वत हो गया है और सभी कुछ इससे निकलता है। यह एक खिलावट है।

जिस तरह तनाव की सात पर्तें होती हैं ऐसे ही इस खिलावट की भी सात पर्तें होंगी, यह हर शरीर में होगा। उदाहरण के लिए, यदि जैविक तल पर ऐसा घटित हो जाए, तो तुम बिलकुल एक नये अर्थ में सुंदर हो जाओगे। यह सौंदर्य रूप का नहीं बल्कि रूपातीत का होता है दृश्य का नहीं बल्कि अदृश्य का होता है। और अगर तुम अपने शरीर में इस तनाव-शून्य क्षण को अनुभव कर सको तो तुम एक ऐसे अच्छेपन को जानोगे जिसे तुमने पहले कभी न जाना था, एक विधायक प्रसन्नचित्तता।

हमने अच्छेपन की उन दशाओं को जाना है जो नकारात्मक हैं इस अर्थ में नकारात्मक कि जब हम स्थ्या नहीं होते हम कहते हैं कि हम स्वस्थ हैं। यह स्वास्थ्य बस बीमारी का न होना है। इसमें इस के बारे में कुछ भी विधायक नहीं है बात बस इतनी ही है कि रुग्णता वहां नहीं है। स्वास्थ्य की चिकित्सकीय परिभाषा यह है कि यदि तुम बीमार नहीं हो, तो तुम स्वस्थ हो। लेकिन स्वास्थ्य का एक विधायक आयाम भी है। यह केवल रुग्णता की अनुपस्थिति नहीं है यह स्वास्थ्य की उपस्थिति है।

तुम्हारा शरीर केवल तब तनाव-शून्य हो सकता है जब तुम क्षण- क्षण अस्तित्व में जी रहे होओ। अगर तुम भोजन कर रहे हो और यह पल शाश्वत बन गया हो, तो वहां पर न अतीत होता है और न ही भविष्य। खाना खाने की प्रक्रिया ही सभी कुछ है। तुम कोई कृत्य नहीं कर रहे हो, तुम कृत्य हो गए हो। वहां पर कोई तनाव न होगा तुम्हारा शरीर परितृप्ति महसूस करेगा। या अगर तुम कामकृत्य में हो और यह बस कामवासना के तनाव से छुटकारा भर न हो बल्कि यह प्रेम की विधायक अभिव्यक्ति बन गया हो–अगर क्षण समग्र पूर्ण हो गया हो और तुम पूरी तरह इसमें हो, तब तुम अपने शरीर की एक विधायक प्रस्न्नचित्तता को जानोगे।

अगर तुम दौड़ रहे हो और दौड़ तुम्हारे अस्तित्व की समग्रता बन गई हो, अगर तुम वे संवेदनाएं बन गए हो जो तुम्हें मिल रही हैं, तुम उनसे अलग नहीं हो, बल्कि उनके साथ एक हो गए हो अगर वहां पर कोई भविष्य न हो इस दौड़ने का कोई लक्ष्य न हो, दौड़ना ही अपने आप में लक्ष्य हो–तब तुम एक विधायक अच्छेपन को जानते हो। तब तुम्हारा शरीर तनाव-शून्य होता है। शरीर के तल पर तुमने तनाव-शून्य जीवन का एक क्षण जान लिया है।

और यही बात सात शरीरों में से प्रत्येक के लिए सत्य है। पहले शरीर में तनाव-शून्य पल को समझना सरल है, क्योंकि हम पहले से ही इस शरीर में होने वाली दोनों बातों–रुग्णता, सकारात्मक बीमारी और नकारात्मक रूप से परिभाषित स्वास्थ्य बीमारी की अनुपस्थिति को जानते हैं। इतना हम पहले से ही जानते हैं, इसलिए हम तीसरी संभावना की कल्पना कर सकते हैं वह है विधायक प्रसन्नचित्तता स्वास्थ्य। लेकिन दूसरे

शरीर भाव शरीर में तनाव-शून्यता क्या है इसे समझना कुछ अधिक कठिन है क्योंकि तुमने इसके बारे में अभी कुछ नहीं जाना है। फिर भी कुछ चीजें समझी जा सकती हैं।

स्वप्न मूलत: दूसरे शरीर, भाव शरीर से संबद्ध हैं। इसलिए आमतौर से जब हम स्वप्नों के बारे में बात करते हैं, तो हम जिनकी बात कर रहे हैं वे भाव शरीर के स्वप्न हैं।

लेकिन अगर तुम्हारा भौतिक शरीर तनाव में जी रहा हो, तो इसके द्वारा बहुत से स्वप्न निर्मित होंगे। उदाहरण के लिए अगर तुम भूखे हो या उपवास पर हो, तो एक विशेष प्रकार का स्वप्न निर्मित होता है। यह भौतिक शरीर का स्वप्न है। यह भाव शरीर से संबंद्धित नहीं है।

भाव शरीर के अपने निजी तनाव हैं। हम भाव शरीर को सिर्फ स्वप्नों में जानते हैं इसलिए अगर भाव शरीर तनावग्रस्त है स्वप्न दुखस्वप्न बन जाता है। अब तुम अपने स्वप्न में भी तनावग्रस्त होओगे तनाव तुम्हारा अनुगमन करेगा।

भाव शरीर का पहला तनाव तुम्हारी इच्छाओं के पूरा होने से जुड़ा हुआ है। हम सभी प्रेम के बारे में स्वप्न देखते हैं। काम वासना शारीरिक है, प्रेम नहीं। प्रेम को भौतिक शरीर से कुछ लेना-देना नहीं है यह भाव शरीर से जुड़ा हुआ है, लेकिन अगर प्रेम परितृप्त न हो, तो तुम्हारा भौतिक शरीर भी इसके कारण परेशान हो सकता है। न सिर्फ तुम्हारे भौतिक शरीर के पास आवश्यकताएं हैं? जिनकी परितृप्ति होनी है बल्कि तुम्हारे भाव शरीर की भी जरूरतें हैं। इसकी अपनी भूखे हैं, इसे भी भोजन की जरूरत है प्रेम वह आहार है।

हम सभी प्रेम के स्वप्न देखते रहते हैं, लेकिन हम कभी प्रेम में नहीं होते। हरेक व्यक्ति प्रेम का स्वप्न देखता है–यह कैसा होना चाहिए, किसके साथ होना चाहिए—और हरेक व्यक्ति इसमें हताश है। या तो हम भविष्य के बारे में स्वप्न देख रहे हैं या हताश होकर अतीत के बारे में लेकिन हम कभी प्रेमपूर्ण नहीं होते।

भाव शरीर में और तनाव भी हैं लेकिन प्रेम उनमें से एक है जिसे सबसे आसानी से समझा जा सकता है। अगर तुम इसी क्षण में प्रेम कर सको तब भाव शरीर में तनाव-शून्य स्थिति निर्मित हो जाती है। लेकिन अगर तुम्हारी मांगें हैं अपेक्षाएं हैं प्रेम की शर्तें हैं तो तुम इस क्षण में प्रेम नहीं कर सकते क्योंकि मांगें अपेक्षाएं और शर्तें भविष्य से संबद्ध हैं।

वर्तमान हमारी अपेक्षाओं से परे है। यह जैसा है वैसा है। लेकिन तुम भविष्य के बारे में अपेक्षाएं रख सकते हो इसे कैसा होना चाहिए। प्रेम भी 'होना चाहिए' बन गया है, यह सदा ' जो होना चाहिए ' के बारे में होता है। तुम वर्तमान में केवल तभी प्रेमपूर्ण हो सकते हो जब कि तुम्हारा प्रेम एक अपेक्षा एक मांग न हो जब यह बेशर्त हो।

और अगर तुम केवल एक व्यक्ति विशेष को ही प्रेम कर रहे हो किसी और से नहीं तब तुम कभी वर्तमान में प्रेम नहीं कर पाओगे। अगर तुम्हारा प्रेम मात्र एक संबंध है और मन की एक दशा नहीं तुम वर्तमान में प्रेम नहीं कर सकते हो क्योंकि बहुत सूक्ष्म तल पर वह भी एक शर्त है। अगर मैं कहूं कि मैं सिर्फ तुम्हारे प्रति प्रेमपूर्ण हूं र तब जब तुम यहां नहीं होओगे तो मैं प्रेमपूर्ण नहीं होऊंगा। तो तेईस घंटों लिए मैं अप्रेमपूर्ण दशा में होऊंगा और बस एक घंटे के लिए जब मैं तुम्हारे साथ हूं तब मैं प्रेमपूर्ण होऊंगा। यह असंभव है। तुम किसी एक क्षण के लिए प्रेम की दशा में और दूसरे क्षण प्रेम न होने की दशा में नहीं हो सकते।

अगर मैं स्वस्थ हूं मैं चौबीस घंटों के लिए स्वस्थ हूं। ऐसा असंभव है कि एक घंटे के लिए मैं स्वस्थ होऊं और बाकी तेईस घंटे अस्वस्थ होऊं स्वास्थ्य संबंध नहीं है, यह होने की एक दशा है।

प्रेम दो व्यक्तियों के बीच का संबंध नहीं है। यह तुम्हारे भीतर के मन की दशा है। अगर तुम प्रेमपूर्ण हो तो तुम प्रत्येक के प्रति प्रेमपूर्ण हो। और न केवल व्यक्तियों के प्रति, साथ ही साथ तुम वस्तुओं के प्रति भी प्रेमपूर्ण

हो। प्रेम तुम से वस्तुओं की ओर भी बहता है। भले ही तुम जब अकेले हो, जब वहां कोई न हो तुम प्रेमपूर्ण होते हो। यह श्वास लेने की तरह है। अगर मैं कसम खा लूं कि मैं सिर्फ तभी श्वास लूंगा जब तुम्हारे साथ होऊं, तब केवल मौत ही आएगी। श्वास लेना संबंध नहीं है, यह किसी संबंध से नहीं बंधा है। और भाव शरीर के लिए प्रेम श्वास लेने की भांति है। यह इसकी श्वास है।

इसलिए या तो तुम प्रेमपूर्ण हो या तुम प्रेमपूर्ण नहीं हो। मानव-जाति ने जिस तरह का प्रेम निर्मित किया है वह बहुत खतरनाक है। रुग्णता ने भी इतनी पड़ता निर्मित नहीं की है जितनी इस तथाकथित प्रेम ने निर्मित कर दी है। प्रेम की गलत अवधारणा के कारण सारी मनुष्यता रुग्ण हो गई है।

अगर तुम प्रेम कर सको और बिना पात्र की चिंता में पड़े प्रेमपूर्ण हो सको तब तुम्हारा दूसरा शरीर प्रसन्नचित्तता की दशा में हो सकता है विधायक रूप से विश्रांत हो सकता है। तब दुखस्वप्न नहीं आते हैं। स्वप्न काव्य हो जाते हैं। तब तुम्हारे दूसरे शरीर में कुछ घटता है और इसकी सुगंध न सिर्फ तुम पर बल्कि दूसरों पर भी छा जाती है। तुम जहां कहीं भी होते हो, तुम्हारे प्रेम की सुगंध फैलती है। और निस्संदेह इसके अपने प्रति संवेदन, अपनी प्रतिध्वनिया होती हैं।

वास्तविक प्रेम अहंकार का कृत्य नहीं है। अहंकार सदा शक्ति मांगता है, इसलिए जब तुम प्रेम में भी होते हो–क्योंकि तुम्हारा प्रेम वास्तविक नहीं है, क्योंकि यह मात्र अहंकार का एक हिस्सा है, तो यह भी हिंसक होने के लिए बाध्य है। जब भी हम प्रेम करते हैं, तो यह हिंसा होता है, एक प्रकार का युद्ध होता है। पिता और पुत्र, मां और बेटी, पति और पत्नी—वे प्रेमी नहीं हैं, हमने उनको शत्रुओं में बदल दिया है। वे सदा झगड़ते रहते हैं, और जब वे लड़ते नहीं होते सिर्फ तब हम कहते हैं कि यह प्रेम है। यह परिभाषा नकारात्मक है। दो लड़ाइयों के बीच जो अंतराल है, शांति का समय है, हम उसे प्रेम कहते हैं।

लेकिन दो युद्धों के बीच वास्तव में शांति की कोई संभावना नहीं होती है। यह तथा कथित शांति बस आने वाले युद्ध की तैयारी है। पति और पत्नी के बीच कोई शांति नहीं है न प्रेम है। वह बीच का समय जिसे हम प्रेम कहते हैं आने वाली लड़ाई की तैयारी भर है। हम सोचते हैं कि जब हम दो बीमारियों के मध्य होते हैं, तो यह स्वास्थ्य है और हम सोचते हैं कि जब हम दो झगड़ों के बीच में होते हैं तो यह प्रेम है। यह प्रेम नहीं है। यह दो लड़ाइयों के बीच का अंतराल मात्र है। तुम चौबीसों घंटे लड़ते हुए नहीं रह सकते हो इसलिए किसी समय तुम अपने शत्रु को भी प्रेम करने लगते हो।

प्रेम किसी एक संबंध के रूप में कभी संभव नहीं है बल्कि यह मन की एक दशा के रूप में ही संभव है। अगर तुम पर प्रेम मन की एक दशा के रूप में आता है तब तुम्हारा दूसरा शरीर भाव शरीर विश्रांत, तनाव-शून्य हो जाता है। यह विश्रांत हो जाता है। दूसरे शरीर में तनाव के कई अन्य कारण भी हैं पर मैं उस एक कारण की बात कर रहा हूं जो सबसे आसानी से समझा जा सकता है। क्योंकि हम सोचते हैं कि हम प्रेम को जानते है तो इसके बारे में बात की जा सकती है।

तीसरा शरीर सूक्ष्म शरीर है। इसके पास अपने निजी तनाव हैं, वे न सिर्फ तुम्हारे इस जीवन से बल्कि पिछले जन्मों से भी संबद्ध हैं। वह प्रत्येक चीज जो तुम थे और जो तुम हो जाना चाहते हो उन सभी के इकट्ठा हो जाने के कारण तीसरे शरीर का तनाव है। तुम्हारी सारी अभिलाषा, हजारों-हजारों जन्म और उनकी बार-बार होने वाली अभिलाषाएं सूक्ष्म शरीर में हैं। और तुम सदा अभिलाषा करते रहे हो। इससे मतलब नहीं किस बात की अभिलाषा-अभिलाषा वहां है।

सूक्ष्म शरीर तुम्हारी सारी अभिलाषाओं, तुम्हारी सारी इच्छाओं का संग्रहालय है। यही कारण है कि तुम्हारे अस्तित्व का सर्वाधिक तनावग्रस्त भाग यही है। जब तुम ध्यान में जाते हो तब तुम सूक्ष्म शरीर के

तनावों के प्रति जागरूक हो जाते हो, क्योंकि ध्यान तीसरे शरीर से शुरू होता है। वे लोग जो ध्यान के माध्यम से इन तनावों के प्रति सजग होने लगते हैं, मेरे पास आते हैं और कहते हैं, 'जब से मैंने ध्यान करना शुरू किया है तनाव बढ़ गए हैं।' वे बढ़ नहीं गए हैं, लेकिन अब तुम उनके प्रति सजग हो गए हो। अब तुम कुछ ऐसा जानते हो जिसके प्रति तुम पहले जागरूक नहीं थे।

तो ये सूक्ष्म शरीर के तनाव हैं। क्योंकि वे बहुत सी जिंदगियों के परिणाम हैं, इसलिए उनको किसी विशेष शब्द के द्वारा परिभाषित नहीं किया जा सकता है। उनके बारे में ऐसा कुछ नहीं कहा जा सकता है जिसे समझा जा सके। उनको केवल जीया और जाना जा सकता है।

इच्छा करना अपने आप में एक तनाव है। हम कभी भी किसी न किसी चीज की इच्छा के बिना नहीं होते। ऐसे लोग भी हैं जो इच्छारहितता की भी इच्छा करते हैं। यह एक ऐसी बात बन जाती है जो पूरी तरह से असंगत है। तीसरे शरीर, सूक्ष्म शरीर में तुम इच्छारहितता की इच्छा कर सकते हो। वास्तव में, इच्छारहित होने की चाहत सर्वाधिक शक्तिशाली इच्छाओं में से एक है। यह इच्छा जो तुम हो और जो तुम हो जाना चाहते हो के बीच बड़ा अंतराल निर्मित कर सकती है।

इसलिए अपनी इच्छाओं को जैसी वे हैं स्वीकार कर लो और जान लो कि तुम्हारे पास अनेक जन्मों में अनेक इच्छाएं रही हैं। तुमने बहुत सारी इच्छाएं की हैं और सारी बातें एकत्रित हो गई हैं। इसलिए तीसरे शरीर, सूक्ष्म शरीर के लिए अपनी इच्छाओं को जैसी वे हैं स्वीकार कर लो। उनके साथ संघर्ष मत करो, इच्छाओं के विरुद्ध इच्छा मत निर्मित करो। बस उन्हें स्वीकार कर लो। जानो कि तुम इच्छाओं से भरे हुए हो और उनके साथ विश्रांत हो जाओ। तब तुम सूक्ष्म शरीर में तनाव-शून्य हो जाओगे।

अगर तुम अपने भीतर की इच्छाओं की अनगिनत भीड़ को बिना उन इच्छाओं के विरुद्ध इच्छा किए स्वीकार कर सको अगर तुम इच्छाओं की भीड़ में रह सकी—वे तुम्हारा सारा संचित अतीत हैं–और वे जैसी हैं उन्हें वैसा ही स्वीकार कर लो, अगर यह स्वीकृति समग्र हो जाए तब एक क्षण में सारी भीड़ खो जाती है। वे वहां और अधिक समय तक नहीं रहतीं, क्योंकि यह इच्छा की पृष्ठभूमि के साथ जो नहीं है, उसके लिए एक सतत इच्छा के विरोध में ही, अस्तित्व में बनी रह सकती है।

इच्छा के विषय से अंतर नहीं पड़ता यह असंगत है। इच्छारहितता की भी इच्छा करो और पृष्ठभूमि उपस्थित हो जाती है सारी भीड़ वहां होगी। अगर तुम अपनी इच्छा को स्वीकार कर लो, तो इच्छारहितता का एक क्षण निर्मित हो जाता है। अपनी इच्छा को जैसी वह है तुम स्वीकार कर लो। अब वहां पर इच्छा करने के लिए कुछ नहीं बचता है इच्छा वहां पर नहीं होती है। तुम हर चीज को वैसा ही स्वीकार कर लेते हो जैसी कि वह है अपनी इच्छाओं को भी स्वीकार कर लो। तब इच्छाएं वाष्पीभूत हो जाती हैं, उनके साथ कुछ नहीं किया जाना है। सूक्ष्म शरीर विश्रांत हो जाता है, यह विधायक प्रसन्नचित्तता की दशा में आ जाता है। केवल तब तुम चौथे शरीर की ओर बढ़ सकते हो।

चौथा शरीर मनस शरीर है। जैसे कि सूक्ष्म शरीर में इच्छाएं हैं, मनस शरीर में विचार होते हैं, परस्पर विरोधी विचार, उनकी सारी भीड़ हर विचार अपने को सभी कुछ की तरह प्रस्तुत करता हुआ हर विचार तुम्हारे ऊपर इस तरह से छाता हुआ जैसे कि यही सब-कुछ है। इसलिए चौथे शरीर में तनाव विचारों द्वारा निर्मित होता है। विचारों के बिना होना सोए हुए नहीं अचेत नहीं बल्कि एक विचार-शून्य चेतना चौथे शरीर का स्वास्थ्य है, इसकी प्रसन्नचित्तता है। लेकिन कोई सचेतन और विचार-शून्य कैसे हो सकता है?

हर क्षण नये विचार निर्मित हो रहे हैं। हर क्षण तुम्हारे अतीत का कुछ भाग तुम्हारे वर्तमान के कुछ हिस्से के साथ संघर्ष में है। तुम एक कम्युनिस्ट थे और अब तुम एक कैथोलिक हो और किसी अन्य बात में विश्वास

करते हो लेकिन तुम्हारा अतीत अब भी वहां है। तुम कैथोलिक हो सकते हो लेकिन तुम अपनी कम्युनिज्म को बाहर नहीं फेंक सकते। यह तुम्हारे भीतर बना रहता है। तुम अपने विचार बदल सकते हो लेकिन छोड़ दिए गए विचार सदा प्रतीक्षारत रहते हैं। उनको तुम अनसीखा नहीं बना सकते। वे तुम्हारे मन की गहराइयों में पहुंच जाते हैं, वे अचेतन में चले जाते हैं। अपने आप को वे तुम्हारे सामने प्रदर्शित नहीं करेंगे क्योंकि तुमने उनका परित्याग कर दिया है पर वे वहां मौजूद रहेंगे अपनी बारी आने की प्रतीक्षा करेंगे। और उनकी बारी आ जाएगी। चौबीस घंटे के समय में भी कुछ पल ऐसे भी होंगे जब तुम फिर से कम्युनिस्ट हो जाओगे और फिर तुम दुबारा से कैथोलिक हो जाओगे। इसी तरह चलता चला जाएगा पिछला फिर अगला और इसका कुल प्रभाव होगा-संशय। '

इसलिए मनस शरीर के लिए तनाव का अर्थ है विभ्रम, विरोधाभासी विचार, विरोधाभासी अनुभव विरोधाभासी अपेक्षाएं–और अंतिम रूप से इसका परिणाम होता है संशयग्रस्त मन। और संशयग्रस्त मन, अगर यह संशयग्रस्तता के पार जाने की कोशिश करे तो केवल और संशयग्रस्त हो जाएगा क्योंकि संशय की दशा में से असंशय को उपलब्ध नहीं किया जा सकता है।

तुम संशयग्रस्त हो। आध्यात्मिक खोज तुम्हारे संशय के लिए नये आयाम निर्मित करेगी। तुम्हारे दूसरे सभी संशय अभी भी वहां हैं और अब एक नया संशय जुड़ गया है। तुम इस गुरु से मिलते हो, फिर उस गुरु से, फिर किसी और से और हर गुरु तुम्हारे लिए नये संशय लेकर आता है। पुराने संशय वहां हैं और एक नया संशय और जुड़ जाएगा। तुम एक पागलखाना हो जाओगे। चौथे शरीर, मनस शरीर में जो घटित होता है वह यही है। वहां पर संशय ही तनाव है।

कोई व्यक्ति संशयग्रस्त होना कैसे रोके? तुम संशयग्रस्तता को केवल तभी मिटा सकते हो जब तुम किसी एक विशिष्ट विचार को, किसी एक विशिष्ट विचार के पक्ष में इनकार न करो, यदि तुम कुछ भी इनकार न करो–अगर तुम धार्मिकता का पक्ष लेकर कम्युनिज्म को इनकार न करो, अगर तुम नास्तिकता के पक्ष में ईश्वर को इनकार न करो। प्रत्येक उस बात को जिसे तुम सोचते हो अगर तुम स्वीकार कर लो, तब कोई चुनाव नहीं रहता और तनाव खो जाते हैं। अगर तुम चुनाव करते रहे, तो तुम अपने तनाव बढ़ाते चले जाओगे।

होश को चुनावरहित होना चाहिए। तुम्हें अपनी सारी विचार प्रक्रिया के प्रति, सारे संशय के प्रति होशपूर्ण होना पड़ेगा। जिस पल तुम इसके प्रति होशपूर्ण हो जाते हो तुम जान लोगे कि यह सब संशय है। कुछ चुना नहीं जाना है, पूरे घर को छोड़ना पड़ेगा। एक बार तुमने जान लिया कि यह बस एक संशय है तो सभी कुछ को किसी भी समय छोड़ा जा सकता है, इसे छोड़ने में कोई कठिनाई नहीं होती है।

इसलिए अपने पूरे मन के प्रति होशपूर्ण होना आरंभ करो। चुनो मत चुनावरहित हो जाओ। यह मत कहो मैं नास्तिक हूं या मैं आस्तिक हूं। यह मत कहो मैं ईसाई हूं या मैं हिंदू हूं। चुनी मत। बस होशपूर्ण हो जाओ कि किसी समय तुम एक आस्तिक हो और किसी समय नास्तिक किसी समय तुम ईसाई हो और किसी समय कम्युनिस्ट कभी संत और कभी पापी। किसी समय एक विचारधारा तुम्हें आकर्षित करती है और कभी दूसरी किंतु ये सभी क्षणिक आकर्षण हैं।

इसके प्रति पूरी तरह से होशपूर्ण हो जाओ। जिस पल तुम अपने मन की संपूर्ण प्रक्रिया के प्रति होश से भरते हो, यह अतादात्म्य का पल होता है। तब तुम अपने मन से तादात्म्य किए हुए नहीं होते। पहली बार तुम अपने को मन की भांति नहीं बल्कि चेतना की भांति जानते हो। मन भी अपने आप तुम्हारे लिए विषय वस्तु बन जाता है। जैसे कि तुम दूसरे लोगों के प्रति होशपूर्ण होते हो, जैसे कि तुम अपने घर के फर्नीचर के प्रति होशपूर्ण

हो जाते हो, अपने मन के प्रति मानसिक प्रक्रिया के प्रति तुम होशपूर्ण हो जाते हो। अब तुम यह होश हो जाते हो–अपने मन से अतादात्म्य किए हुए।

चौथे शरीर मनस शरीर के साथ कठिनाई यही है कि हम अपने मन से तादात्म्य किए हुए हैं। अगर तुम्हारा शरीर बीमार हो जाए और कोई कहे कि तुम बीमार हो तो तुम्हें अपमान महसूस नहीं होगा, लेकिन अगर तुम्हारा मन बीमार हो जाए और कोई कह दे कि तुम्हारा मन बीमार है ऐसा लगता है कि तुम पागल होने वाले हो,...तब तुम अपमानित महसूस करते हो। क्यों?

जब कोई कहता है, तुम्हारा शरीर बीमार मालूम पड़ता है तो तुम्हें लगता है कि उसने तुम्हारे साथ सहानुभूति की है। लेकिन अगर कोई मानसिक बीमारी के बारे में कुछ कहता है–कि जहां तक तुम्हारे मन का संबंध है, तुम असामान्य प्रतीत होते हो तुम विक्षिप्त जान पड़ते हो–तब तुम अपमानित महसूस करते हो, क्योंकि शरीर की तुलना में मन के साथ तुम्हारा कहीं गहरा तादात्म्य है।

तुम अपने आप को शरीर से अलग महसूस कर सकते हो। तुम कह सकते हो यह मेरा हाथ है। पर तुम यह नहीं कह सकते कि यह मेरा मन है। क्योंकि तुम सोचते हो, मेरे मन का अर्थ है 'मैं।' मैं तुम्हारे शरीर में कोई शल्य-क्रिया करना चाहें, तो तुम मुझे अनुमति दे दोगे पर तुम मुझे अपने मन की शल्य-क्रिया करने की अनुमति नहीं दोगे। तुम कहोगे नहीं यह बहुत हो गया। मेरी स्वतंत्रता खो जाएगी। मन के साथ तुम्हारा कहीं बहुत गहरा तादात्म्म है। हम यही हैं। इसके पार हम कुछ नहीं जानते हैं इसलिए हमने इससे तादात्म्म बना लिया है।

इस शरीर के पार हम कुछ जानते हैं मन। यही कारण है कि शरीर से तादात्म्य हटा लेने की संभावना होती है। पर मन के पार हम कुछ भी नहीं जानते हैं। अगर तुम विचारों के प्रति सजग हो जाओ केवल तब तुम यह जान सकोगे कि मन और कुछ नहीं बल्कि एक प्रक्रिया एक संचय एक यांत्रिकता है, एक भंडारग्रह है तुम्हारे पुराने अनुभवों, तुम्हारी पुरानी सीखों पुरानी जानकारी का संगणक है। यह 'तुम' नहीं हो तुम इसके बिना भी हो सकते हो। मन की भी शल्य-क्रिया हो सकती है। इसे बदला जा सकता है, इसे तुम्हारे भीतर से निकाल कर फेंका जा सकता है।

और अब नई संभावनाएं बन रही हैं। एक दिन तुम्हारा मन भी किसी और को प्रत्यारोपित किया जाने योग्य हो जाएगा। जैसे कि हृदय प्रत्यारोपित किया जा सकता है। आज नहीं तो कल स्मृति का प्रत्यारोपण भी संभव हो जाएगा। तब जो व्यक्ति मर रहा है वह पूरी तरह से नहीं मरेगा। कम से कम उसकी स्मृति बचाई जा सकती है और नये बच्चे में प्रत्यारोपित की जा सकती है। बच्चा उस व्यक्ति की सारी स्मृति को ग्रहण कर लेगा। वह उन अनुभवों की बात करेगा जिनसे वह होकर नहीं गुजरा है लेकिन वह कहेगा मैंने जान लिया है। जो कुछ भी वह मृत व्यक्ति जानता था वह बच्चा जान लेगा, क्योंकि मृत व्यक्ति का सारा मन उसको दे दिया गया है।

यह खतरनाक प्रतीत होता है और हो सकता है कि हम ऐसा होने की अनुमति न दें क्योंकि हमारी पहचान खो जाएगी। हम अपने मन ही तो हैं! लेकिन मेरे लिए इस संभावना में बहुत क्षमता है। इससे एक नई मानवता जन्म ले सकती है।

हम मन के प्रति बोधपूर्ण हो सकते हैं क्योंकि हम मन नहीं हैं, यह 'मैं' नहीं है। मेरा मन मेरे शरीर का उतना ही एक हिस्सा है जितना कि मेरा गुर्दा। जैसे कि मुझे एक नया गुर्दा दिया जा सकता है और मैं बिना कुछ परिवर्तित हुए वही व्यक्ति बना रहूंगा इसी तरह मैं एक प्रत्यारोपित मन के साथ बिना कुछ बदले रह सकता हूं। मैं पुराना 'स्व' रह सकता हूं जैसा कि मैं था, पर एक नये मन के साथ जो मुझमें जुड़ गया है। मन भी एक यांत्रिकता है। लेकिन इसके साथ हमारे द्वारा बना लिए गए तादात्म्य के कारण तनाव निर्मित होता है।

इसलिए चौथे शरीर के साथ होश स्वास्थ्य है और बेहोशी रुग्णता है, होश तनाव-शून्यता है और बेहोशी तनाव है। अपने विचारों के कारण, उनसे तुम्हारे तादात्म्य के कारण तुम अपने विचारों में जीते हो, और तुम तथा तुम्हारे अस्तित्वगत 'होने' के बीच एक अवरोध निर्मित हो जाता है।

तुम्हारी पहुंच के भीतर एक फूल हो, पर तुम इसे कभी नहीं जान सकोगे, क्योंकि तुम इसके बारे में सोच रहे हो। फूल मर जाएगा और तुम इसके बारे में सोचते ही रह जाओगे। सोचने ने तुम्हारे और अनुभव के बीच एक दीवाल निर्मित कर दी है–पारदर्शी, पर बहुत पारदर्शी नहीं, बस पारदर्शिता का एक भ्रम।

उदाहरण के लिए, तुम मुझे सुन रहे हो। लेकिन यह हो सकता है कि वास्तव में तुम मुझे न सुन रहे हो। जो मैं कह रहा हूं अगर तुम उसके बारे में सोच रहे हो, तो तुमने सुनना बंद कर दिया है। तब तुम या तो आगे चले गए या पीछे चले गए, तुम मेरे साथ नहीं हो। या तो यह अतीत है जो तुम अपने मन में दोहरा रहे हो या यह अतीत के माध्यम से प्रक्षेपित भविष्य होगा लेकिन यह वह नहीं होगा जो मैं कह रहा हूं।

यह भी संभव है कि मैंने जो कहा तुम उसे अक्षरश: दोहरा दो। तुम्हारी यांत्रिकता इसे अंकित कर रही है। जो मैंने कहा यह उसको दोहरा सकती है, फिर से प्रस्तुत कर सकती है। तब तुम दावा करोगे, अगर मैंने आपको नहीं सुना है, तो मैं इसे दुबारा प्रस्तुत कैसे कर सका? किंतु एक टेप-रिकॉर्डर मुझे नहीं सुनता है। तुम्हारा मन एक यंत्र की तरह काम करता रह सकता है। तुम उपस्थित हो सकते हो या तुम उपस्थित नहीं हो सकते हो। तुम्हारी जरूरत नहीं है। तुम सोचते रह सकते हो और फिर भी सुनते रह सकते हो। मन–चौथे शरीर, मनस शरीर का–अवरोध बन गया है।

'तुम' और वह जो 'है' के बीच एक अवरोध है। जिस पल तुम स्पर्श करने आते हो तुम अनुभव से परे हट जाते हो। जिस पल तुम देखते हो तुम दूर हो जाते हो। मैं तुम्हारा हाथ अपने हाथ में लेता हूं। यह एक अस्तित्वगत बात है। लेकिन यह हो सकता है कि तुम वहां न होओ। तब तुम चूक गए। तुमने जान लिया– तुमने छुआ और अनुभव किया है–पर तुम अपने खयालों में थे।

इसलिए चौथे शरीर पर व्यक्ति को अपनी विचार-प्रक्रिया संपूर्ण विचार-प्रक्रिया के प्रति बोधपूर्ण हो जाना है। बिना चुने बिना निश्चय किए, बिना फैसला किए बस उसके प्रति बोध। अगर तुम बोधपूर्ण हो जाते हो तो तुम तादात्म्य से मुक्त हो जाते हो। और मन की यांत्रिकता से अ-तादात्म्म तनाव-शून्यता है।

पांचवां शरीर आत्मिक शरीर है। जहां तक आत्मिक शरीर का संबंध है, अपना ज्ञान न होना ही तनाव है। सारे समय तुम होते हो, पर तुम यह अच्छी तरह से जानते हो कि तुम अपने आप को नहीं जानते। तुम जीवन से होकर गुजर जाओगे तुम यह करोगे और वह करोगे तुम इसे उपलब्ध कर लोगे और उसे उपलब्ध कर लोगे लेकिन आत्म-अज्ञान का भाव तुम्हारे साथ सतत रूप से रहेगा। यह तुम्हारे पीछे छिपा होगा, यह एक स्थायी साथी रहेगा चाहे तुम इसे भुलाने का कितना ही उपाय करो इससे भागने का तुम कितना ही प्रयास करो। तुम अपने अज्ञान से नहीं भाग सकते। तुम जानते हो कि तुम्हें नहीं पता है। यह पांचवें तल की रुग्णता है।

वे लोग जिन्होंने डेल्की के मंदिर के ऊपर लिखा था 'अपने आप को जान लो' पांचवें शरीर से संबंद्ध थे। वे इस पर कार्य कर रहे थे। सुकरात ने लगातार दोहराया 'अपने को जानो। 'वह पांचवें शरीर से संबद्ध था। पांचवें शरीर के लिए आत्म-ज्ञान—अपनी जानकारी ही एकमात्र ज्ञान है।

महावीर ने कहा 'अपने को जानने से व्यक्ति सर्वज्ञ हो जाता है।' पर ऐसा नहीं है। अपने को जान कर कोई सभी कुछ नहीं जान सकता है। पर उलटी बात सही है। अपने को जाने बिना कोई कुछ नहीं जान सकता। इसलिए इसको संतुलित करने के लिए महावीर ने कहा 'अपने को जान कर तुम सबको जान लोगे।' अगर मैं

सभी कुछ जानता हूं लेकिन अगर मैं अपने को नहीं जानता हूं तो इसका क्या प्रयोजन है? मैं मूलभूत को, आधारभूत को चरम को कैसे जान सकता हूं अगर मैंने अपने को भी नहीं जाना हो? यह असंभव है।

इसलिए पांचवें शरीर में तनाव ज्ञान और अज्ञान के मध्य है। लेकिन स्मरण रखो, मैं कह रहा हूं ज्ञान और अज्ञान मैं जानकारी और अनभिज्ञता नहीं कह रहा हूं। जानकारी शास्त्रों से एकत्रित की जा सकती है ज्ञान कहीं से भी एकत्रित नहीं किया जा सकता। बहुत से लोग इसी भ्रम में पड़े हैं यह ज्ञान और जानकारी के बीच की गलतफहमी है। ज्ञान सदा तुम्हारा होता है। मैं अपना ज्ञान तुम्हें स्थानांतरित नहीं कर सकता मैं सिर्फ अपनी जानकारी स्थानांतरित कर सकता हूं। शास्त्र जानकारी का संवहन करते हैं ज्ञान का नहीं। वे कह सकते हैं तुम दिव्य हो, तुम आत्मा हो तुम स्व हो पर यह ज्ञान नहीं है।

अगर तुम इस जानकारी से चिपकोगे बहुत तनाव उत्पन्न होगा। अनभिज्ञता वहां होगी झूठी सीखी हुई जानकारी, और सूचनाओं के साथ, उधार ज्ञान के साथ। तुम अनभिज्ञ होओगे पर तुम्हें लगेगा कि तुम जानते हो। तब वहां बहुत तनाव होता है। यह बेहतर है कि अनभिज्ञ रहो और ठीक से जान लो कि मैं एक अज्ञानी व्यक्ति हूं। तब तनाव होगा पर इतना अधिक नहीं। अगर तुम दूसरों से एकत्रित की गई जानकारी से अपने आप को धोखा न दो, तब तुम अपने भीतर खोज और अनुसंधान कर सकते हो, और ज्ञान संभव है।

क्योंकि तुम हो–इसलिए इतना तो निश्चित है कि जो भी हो तुम हो। इससे इनकार नहीं किया जा सकता है। दूसरी बात, तुम कुछ हो जो जानता है। यह हो सकता है कि तुम दूसरों को जानते हो यह भी हो सकता है कि तुम बस भ्रमों को जानते हो यह हो सकता है कि जो तुम जानते हो वह ठीक न हो लेकिन तुम जानते तो हो। इसलिए ये दो बातें तो हैं ही. तुम्हारा अस्तित्व और तुम्हारी चेतना।

लेकिन तीसरी चीज का अभाव है। मनुष्य का मूलभूत व्यक्तित्व तीन आयामों के माध्यम से समझा जा सकता है. अस्तित्व चेतना और आनंद-सत्-चित्-आनंद। हम जानते हैं कि हम स्वय अस्तित्व हैं हम जानते हैं कि कोई है जो जानता है–स्वयं चेतना है। बस आनंद की ही कमी है। लेकिन अगर तुम अपने भीतर खोजो तुम तीसरे को भी जानोगे। यह वहां है। आनंदमयता, अपने अस्तित्व का परमानंद, वहां है। और जब तुम उसे जानोगे तुम पूरी तरह से अपने को जान लोगे– अपने अस्तित्व को, अपनी चेतना को अपने आनंद को।

जब तक कि आनंद न जान लिया जाए तुम अपने आप को पूरी तरह से नहीं जान सकते, क्योंकि जो व्यक्ति आनंदमय नहीं है, अपने आप से भागता रहेगा। हमारा सारा जीवन अपने आप से पलायन है। दूसरे हमारे लिए महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि भागने में वे हमारी सहायता करते हैं। यही कारण है कि हम अन्य-उन्मुख हैं। अगर कोई धार्मिक भी हो जाता है, तो वह ईश्वर को अन्य की तरह निर्मित कर लेता है। फिर से वह अन्य-उन्मुख हो जाता है वही भ्रम दोहरा दिया जाता है।

इसलिए पांचवें तल पर व्यक्ति को भीतर से अपनी खोज में होना पड़ता है। यह खोज नहीं है बल्कि खोज में होना है। तुम्हारी जरूरत केवल पांचवें शरीर तक ही है। पांचवें शरीर के बाद चीजें आसान और स्वस्फूर्त हो जाती हैं।

छठवा शरीर ब्रह्म शरीर है। यहां पर तुम्हारी निजता की सीमाबद्धता की अनुभूतियों और असीम ब्रह्म के मध्य तनाव होता है। पांचवें तल पर भी तुम अपने आत्मिक शरीर में समाए हुए होगे। तुम एक व्यक्ति होगे। वह 'व्यक्ति' होना छठवें के लिए तनाव है। इसलिए ब्रह्म के साथ तनाव-शून्य अस्तित्व उपलब्ध करने के लिए, ब्रह्म के साथ उसी की लय में होने के लिए तुम्हें व्यक्ति होना बंद करना पड़ेगा।

जीसस कहते हैं 'जो अपने को खोता है वह अपने को पा लेगा।' यह वक्तव्य छठवें शरीर से संबंद्धित है। पांचवें तक इसे नहीं समझा जा सकता, क्योंकि यह पूरी तरह से गणित के खिलाफ है। लेकिन छठवें शरीर से, यही एक मात्र गणित, एकमात्र तर्कपूर्ण संभावना है अपने आप को खो देना।

हम अपने आप को बढ़ाते रहे हैं, क्रिस्टलाइजिंग करते रहे हैं। पांचवें शरीर तक क्रिस्टलाइजेशन आत्मपन निजता को ले जाया जा सकता है लेकिन अगर कोई व्यक्ति बने रहने पर जोर दे तो वह पांचवें शरीर के साथ रह जाता है। इसलिए बहुत सी आध्यात्मिक व्यवस्थाएं पांचवें पर समाप्त हो जाती हैं। वे सभी लोग जो कहते हैं कि आत्मा की अपनी निजता है और यह निजता मुक्त अवस्था में भी रहेगी–कि तुम एक व्यक्ति होओगे–अपने 'स्व' में सिमटे हुए–जो भी व्यवस्था ऐसा कहती है वह पांचवें पर ठहरी हुई है। इस तरह की व्यवस्था में ईश्वर की कोई अवधारणा नहीं होगी। इसकी जरूरत नहीं है।

ईश्वर की अवधारणा छठवें शरीर के साथ ही आती है। ईश्वर का अभिप्राय है ब्रह्मांडीय व्यक्ति या यह कहना उत्तम रहेगा ब्रह्मांडीय अ-व्यक्तित्व। ऐसा नहीं है कि 'मैं' अस्तित्व में हूं यह मेरे भीतर की समग्रता है जिसने मेरा अस्तित्व में हो पाना संभव किया है। मैं बस एक बिंदु हूं अस्तित्व के अनंत सूत्रों में से एक सूत्र। अगर कल सूर्य न उगे मैं नहीं होऊंगा। मैं अस्तित्व से मिट जाऊगा, मेरे जीवन की लौ बुझ जाएगी। मैं यहां पर हूं क्योंकि सूर्य का अस्तित्व है। यह बहुत अधिक दूर है लेकिन फिर भी यह मुझसे जुड़ा हुआ है। अगर पृथ्वी मर जाए जैसे कि बहुत से ग्रह मर चुके हैं तो मैं जी नहीं सकता, क्योंकि मेरा जीवन पृथ्वी के जीवन के साथ एक है। हर चीज का होना अस्तित्व की एक श्रृंखला में है। ऐसा नहीं है कि हम द्वीप हैं। हम सागर हैं।

छठवें शरीर पर सागर सी अनुभूति के विरुद्ध निजता का अनुभव एक मात्र तनाव है–बिना सीमाओं की एक अनुभूति एक ऐसी अनुभूति जिसका न आरंभ है और न ही अंत 'मुझ' की अनुभूति नहीं बल्कि 'हम' की अनुभूति। और इस 'हम' में सब-कुछ समाहित है। न केवल व्यक्ति न केवल जीवित जीवधारी, बल्कि वह सभी कुछ जिसका अस्तित्व है। 'हम' का अभिप्राय है स्वयं अस्तित्व।

इसलिए छठवें शरीर पर 'मैं' तनाव होगा। तुम 'मैं' को कैसे खो सकते हो? तुम अपने अहंकार को कैसे खो सकते हो? अभी तुम इस बात को समझने योग्य नहीं होओगे लेकिन अगर तुम पांचवें तल को उपलब्ध कर लो तो यह आसान हो जाएगा। इसे एक बच्चे के उदाहरण से समझो जो एक खिलौने से आसक्त है और कल्पना भी नहीं कर सकता कि वह इसे कैसे फेंक सकेगा। लेकिन जिस पल बचपन जाता है खिलौना फेंक दिया जाता है। वह बच्चा दुबारा कभी इस पर नहीं लौटता। पांचवें शरीर तक अहंकार बहुत महत्वपूर्ण है, लेकिन पाचवें के पार यह एक खिलौने की भांति हो जाता है, जिससे एक बच्चा खेलता रहा था। तुम बस इसे फेंक देते हो। कोई कठिनाई नहीं होती।

एक मात्र कठिनाई तब होगी जबकि तुमने पांचवें शरीर को क्रमिक प्रक्रिया द्वारा उपलब्ध किया हो न कि अचानक बोध द्वारा। तब छठवें शरीर में 'मैं' को पूरी तरह से फेंकना मुश्किल हो जाता है। इसलिए पांचवें शरीर के पार वे सभी विधियां जो अचानक विधियां हैं सहायक हो जाती हैं। पांचवें शरीर से पहले क्रमिक विधियां आसान प्रतीत होती हैं, लेकिन पांचवें के बाद वे रुकावट बन जाती हैं।

इसलिए छठे शरीर पर तनाव निजता और सागर जैसी चेतना के मध्य है। बूंद को सागर बनने के लिए स्वय को खो देना पड़ेगा। वास्तव में यह स्वयं को खोना नहीं है, लेकिन बूंद की दृष्टि से ऐसा लगता है। लेकिन इसके विपरीत जिस पल बूंद खो जाती है सागर उपलब्ध हो जाता है। वास्तव में बूंद ने स्वयं को खोया नहीं है। अब यह सागर हो गई है।

सातवां शरीर निर्वाण-शरीर है। सातवें शरीर में तनाव अस्तित्व और अनअस्तित्व के मध्य है। छठवें शरीर में खोजी ने 'स्वयं' को खो दिया है पर अस्तित्व को नहीं। वह है–व्यक्ति की भांति नहीं बल्कि ब्रह्मांडीय अस्तित्व की भांति। अस्तित्व वहां है। ऐसी तत्वमीमासाएं और व्यवस्थाएं हैं जो छठवें पर समाप्त हो जाती हैं। सातवें का अर्थ है अस्तित्व को भी अस्तित्वहीन में खो देना। यह स्वय को खो देना नहीं है। यह मात्र खो देना है। जो अस्तित्ववान था वह अस्तित्वहीन हो जाता है। तब तुम मूलस्रोत पर आ जाते हो, जिससे सारा अस्तित्व आता है और जिसमें यह चला जाता है। अस्तित्व इससे उत्सर्जित होता है, अनअस्तित्व फिर से इसमें विलीन हो जाता है।

अस्तित्व अपने आप में बस एक दशा है इसे वापस लौटना पड़ेगा। जैसे कि दिन आता है और रात उसका अनुगमन करती है जैसे कि रात जाती है और दिन उसका अनुगमन करता है। उसी तरह से अस्तित्व का आगमन होता है और अनअस्तित्व उसका अनुगमन करता है अनअस्तित्व आता है और उसके पीछे से अस्तित्व आ जाता है। अगर किसी को पूरी तरह से जानना हो तब उसे अनअस्तित्व से भागना नहीं चाहिए। अगर उसे समस्त वर्तुल को जानना हो तो उसको अस्तित्वविहीन होना पड़ेगा। ब्रह्मांडीय भी संपूर्ण नहीं है क्योंकि उसके पार अनअस्तित्व है। इसलिए भगवत्ता भी संपूर्ण नहीं है। भगवत्ता भी बस ब्रह्म का भाग है, भगवत्ता स्वयं ब्रह्म नहीं है। ब्रह्म का अर्थ है सभी कुछ एक साथ प्रकाश और अंधकार संयुक्त अस्तित्व और अनअस्तित्व संयुक्त। भगवत्ता मृत्यु नहीं है यह बस जीवन है। भगवत्ता अनअस्तित्व नहीं है भगवत्ता बस अस्तित्व है। भगवत्ता अंधकार नहीं है भगवत्ता केवल प्रकाश है। वह संपूर्ण अस्तित्व का बस एक भाग है, संपूर्ण नहीं।

समस्त को जानना ना-कुछ हो जाना है। केवल ना-कुछपन ही समग्र को जान सकता है। संपूर्णता ना-कुछपन है और ना-कुछपन एकमात्र संपूर्णता है–सातवें शरीर के लिए।

तो ये सातों शरीरों के तनाव हैं, भौतिक शरीर से शुरू होकर बाकी सभी शरीरों के। अगर तुम अपने भौतिक शरीर के तनाव को समझ लो इसकी विश्रांति को, इसकी प्रसन्नचित्तता को समझ लो तो तुम बहुत आसानी से सातों शरीरों को पार कर सकते हो। पहले शरीर की विश्रांति दूसरे शरीर के लिए सीढ़ी का पत्थर बन जाती है। और अगर तुम दूसरे शरीर में कुछ अनुभव कर लो–अगर तुम तनाव-शून्य भाव शरीर के एक क्षण का अनुभव कर लो, तो तीसरे शरीर की ओर कदम बढ़ा दिया गया है।

प्रत्येक शरीर में अगर तुम प्रसन्नचित्तता से आरंभ करो तो अगले शरीर के लिए द्वार स्वत: खुल जाता है। लेकिन अगर तुम पहले शरीर में ही मात खा गए, तो यह बहुत कठिन करीब-करीब असंभव ही हो जाता है कि आगे के द्वार खुले।

इसलिए पहले शरीर से शुरू करो और बाकी छह शरीरों के बारे में जरा भी मत सोचो। भौतिक शरीर में समग्रता से रहो, और अचानक तुम जानोगे कि एक नया द्वार खुल गया है। तब और आगे जारी रखो। लेकिन दूसरे शरीरों के बारे में मत सोचो अन्यथा यह रुकावटें पैदा करेगा और तनाव निर्मित कर देगा।

इसलिए जो भी मैंने कहा है–उसे भूल जाओ।

आज इतना ही

नौवां प्रवचन

ज्ञान का भ्रम

किसी सिद्धांत की शिक्षा देना अर्थहीन है। मैं कोई दर्शनशास्त्री नहीं हूं मेरा मन दर्शनशास्त्र का विरोधी है। क्योंकि दर्शनशास्त्र कहीं नहीं ले गया है और न कहीं ले जा सकता है। वह मन जो सोच-विचार करता है और वह मन जो प्रश्न उठाता है जान नहीं सकता है।

बहुत से सिद्धांत हैं और अन्य बहुत से सिद्धांतों के लिए अनंत संभावनाएं हैं। लेकिन सिद्धांत एक कल्पना है एक मानवीय कपोल-कल्पना। कोई खोज नहीं, बल्कि एक आविष्कार। आदमी का मन बहुत सी व्यवस्थाएं और सिद्धांत निर्मित करने में समर्थ है, लेकिन सत्य को सिद्धांतों के द्वारा जान पाना असंभव है। और जौ मन जानकारी से भरा हुआ है वह ऐसा मन है जो अज्ञानी ही बना रहेगा।

जिस पल जानना बंद हो जाता है तभी ज्ञान का आगमन होता है। अज्ञात के होने के लिए जाने हुए को मिट जाना चाहिए। और सत्य और वास्तविकता अज्ञात है। यहां पर दो संभावनाएं हैं या तो तुम इसके बारे में विचार कर सकते हो या हम अस्तित्वगत रूप से इसमें प्रवेश कर सकते हैं। सोच विचार करना उस के आस पास, उसके चारों ओर होता है, लेकिन यह कभी वास्तविकता नहीं होता। कोई युगों तक सोच-विचार करता रह सकता है। जितना अधिक तुम विचार करते हो उतना ही दूर तुम चले जाते हो। वह जो है यहीं और अभी है। और इसके बारे में विचार करना इससे संपर्क खो देना है।

इसलिए मैं क्या सिखाता हूं–मैं अ-सिद्धातीय अ-दर्शनशास्त्रीय, अ-परिकल्पित अनुभव सिखा रहा हूं। कैसे 'हुआ' जाए बस 'हुआ' जाए। इस पल में जो अभी और यहीं है कैसे हुआ जाए? खुला हुआ उपलब्ध उसके साथ एक। इसी को मैं ध्यान कहता हूं।

ओशो क्या आप सोचते हैं कि ज्ञान परिकल्पित ज्ञान सिद्धांत या नीति को अनुभव के साथ जोड़ पाना संभव है? क्या ऐसा हो सकता है कि दोनों ओर से प्रयास किया जाए और केवल एक और से नहीं?

दोनों ओर से प्रयास किया जाना संभव नहीं है क्योंकि वे दोनों परस्पर विरोधी दिशाएं हैं। तुम दोनों का एक साथ प्रयास नहीं कर सकते हो।

क्या यह संभव नहीं है कि ज्ञान को निम्नतर स्तर पर रख
दिया जाए? इसे अनुभव से निम्नतर माना जाए। लेकिन
मनवीय मन की एक सभावना के रूप इसे बाहर न रखा जाए?

यह एक संभावना है मानवीय मन की यह संभावना है लेकिन एक संभावना जो कपोल-कल्पना में ले जाती है।

अगर यह हावी हो जाए...

अगर यह सभी कुछ हो जाए! यह कपोल-कल्पना में ले जाता है। यह मन को वस्तुओं की कल्पना पर ले जाता है। यह स्वप्न की ओर ले जाता है यह कल्पना की ओर ले जाता है। इसलिए दोनों संभव नहीं हैं। लेकिन एक बार तुमने सत्य को जान लिया, तो तुम ज्ञान का उपयोग इसकी अभिव्यक्ति के लिए कर सकते हो– लेकिन यह सत्य को उपलब्ध करने का माध्यम नहीं हो सकता है। ज्ञान सत्य को उपलब्ध करने का वाहन नहीं हो सकता है किंतु जब सत्य को जान लिया गया है, तो यह वाहन बन सकता है। यह संवाद के माध्यम के रूप में उसका वाहन बन सकता है।

एक बार तुम किसी ऐसे व्यक्ति के साथ संवाद करना चाहो कुछ बांटना चाहो जो नहीं जानता है तब ही तुम्हारा ज्ञान तुम्हारे शब्द तुम्हारी भाषा तुम्हारी नीतियां और सिद्धांत माध्यम बन सकते हैं। किंतु अब भी ये पर्याप्त नहीं हैं। अब भी ये असमर्थ माध्यमहै, एक ऐसा माध्यम जो झूठा होने के लिए बाध्य है क्योंकि वह कुछ ऐसा है जिसे अस्तित्वगत रूप से जाना गया है उसे पूरी तरह से अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता है। केवल संकेत कर सकते हो। तुम इसकी प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति कर सकते तुम हो। लेकिन तब प्रतीक चला जाता है– प्रतीक का संवहन हो जाता है और अर्थ पीछे छूट जाता है। जो भी मैंने जान लिया है जिस पल मैं इसे अभिव्यक्त करता हूं शब्द तुम तक पहुंच जाता है। लेकिन अर्थ पीछे छूट जाता है–एक शब्द जो मुर्दा है एक अर्थ में अर्थहीन है, केवल ऊपर-ऊपर से अर्थपूर्ण है क्योंकि अर्थवत्ता तो स्वयं अनुभव थी।

इसलिए ज्ञान अभिव्यक्ति का माध्यम बन सकता है लेकिन उपलब्धि का, आत्म-साक्षात्कार का साधन नहीं बन सकता है। और दोनों एक साथ नहीं चल सकते हैं। जानने वाला मन अवरोध है। वह मन जो ज्ञान के संदर्भ में विचार करता है रुकावट बन जाता है। यह रुकावट बन जाता है क्योंकि जब तुम जान लेते हो तब तुम विनम्र नहीं रह पाते हो। जब तुम ज्ञान से भर जाते हो तो तुम्हारे भीतर अज्ञात को ग्रहण करने के लिए कोई स्थान नहीं होता। इसलिए मन को खाली शून्य, एक गर्भ की तरह, एक ग्राहकता, एक पूर्ण ग्राहक भाव दशा में होना चाहिए, जिसके पास कोई जानकारी न हो, जान लेने की कोई अभिवृत्ति न हो। जहां तक सत्य का अस्तित्वगत सत्य का संबंध है, तुम अपने अभी के ज्ञान के साथ वहां जी नहीं सकते हो।

तुम्हें संचित ज्ञान को इनकार कर देना चाहिए क्योंकि...यहां पर बहुत सी चीजें हैं पहली, ज्ञान तुम्हारा अतीत है। यह वह है जो तुमने जाना है। यह तुम्हारी स्मृति है, यह तुम्हारा संचय है, यह तुम्हारे स्वामित्व में है। यह संचय अवरोध बन जाता है। वह तुम और उस नये के बीच में जो तुम तक आ रहा है आ ही जाता है। इसे नकारना पड़ेगा। इसको तुम्हारे और अज्ञात के बीच में नहीं आना चाहिए।

तुम्हें अज्ञात के प्रति खुला होना चाहिए और तुम खुले हुए केवल तब हो सकते हो जब कि तुम अपने अज्ञान में विनम्र होओ। इसलिए अपने अज्ञान के प्रति, सजग हो जाओ लगातार सजग बने रहो, लगातार इस बात के प्रति सजग बने रहो कि अब भी कुछ है जिसे जाना नहीं गया है और मेरे और उस कृत्य के उस अशात के बीच जानकारी को नहीं आना चाहिए। लेकिन वह मन जिसने स्मृतियों सूचनाओं शास्त्रों सिद्धांतों मतों संप्रदायों पर स्वयं को आधारित कर रखा हो वह अहं-केंद्रित हो जाता है विनम्र नहीं होता है। जानकारी तुम्हें विनम्रता नहीं दे सकती है। केवल विराट अशात ही तुम्हें विनम्र बनाता है तुम्हें अपने प्रति ग्रहणशील बनाता है और तुम्हारा अपने प्रति समर्पण करवा सकता है।

इसलिए स्मृति को रुक जाना पड़ेगा। यह ऐसा नहीं है कि तुम बिना किसी स्मृति के हो जाओगे बल्कि जानने के क्षण में अनुभूति के क्षण में स्मृति को वहां नहीं होना चाहिए। उस क्षण में एक खुला मन, एक उपलब्ध मन की जरूरत होती है। खालीपन के इस क्षण में मेडिटेशन है, ध्यान है।

यहां पर बहुत सी बातें हैं। आप इस खालीपन को कैसे अनुभव करते हैं कैसे पहचानते हैं? प्रत्येक व्यक्ति के लिए इस प्रकार के अनुभव को कर पाने की संभावना है जिसको आप हमें ज्ञान के माध्यम से बता रहे हैं–सिद्धौत का प्रति- सिद्धौत ज्ञान को संवाद की भांति प्रयोग करना — और खतरनाक ढंग से जैसा कि आपने इसे बताया है। शब्दों के पीछे से शून्य मन का सत्य समझाना आप इसका साक्षात कैसे कर सकते हैं? क्या इसको शब्दों में समझाना संभव है?

जानकारी के नकारात्मक अर्थ निकल सकते हैं। शब्दों के माध्यम से भाषा के माध्यम से और प्रतीकों के माध्यम से विधायक अनुभव को बताया नहीं जा सकता है लेकिन नकारात्मक रूप से इसे समझाया जा सकता है। मैं यह नहीं कह सकता कि यह क्या है लेकिन मैं यह कह सकता हूं कि यह क्या नहीं है। जहां तक नकारात्मक का संबंध है भाषा इसे व्यक्त करने का साधन बन सकती है। जब मैं कहता हूं कि भाषा इसे अभिव्यक्त नहीं कर सकती तब भी मैं इसे अभिव्यक्त कर रहा हूं। जब मैं कहता हूं इसके बारे में कोई सिद्धांत संभव नहीं है, तब भी मैं सिद्धांत का उपयोग कर रहा हूं। लेकिन यह नकारात्मक है। मैं बस इनकार कर रहा हूं मैं कुछ कह नहीं रहा हूं। मैं कुछ नहीं कह रहा हूं मैं किसी बात से इनकार कर रहा हूं। इस ' न ' को तो कहा जा सकता है इस 'हां' को नहीं। इस 'हां' को तो उपलब्ध करना पड़ेगा इस न को कहा जा सकता है।।

एक बात संभावना की...यह पूछना बहुत व्यक्तिगत प्रश्न है शून्य का यह क्षण कैसे उपलब्ध किया जा सकता है? यह सर्वाधिक मूल्यवान और महत्वपूर्ण प्रश्न है। इस शून्य को उपलब्ध किया जा सकता है, तो सुस्पष्ट है कि जीवन-शैली के माध्यम से। पहले तो ज्ञान की व्यर्थता को इसकी पृष्ठभूमि के रूप में समझ लिया जाना चाहिए। अगर ज्ञान के प्रति मन में कोई विश्वास छाया हुआ है तो यह शून्य को उपलब्ध करने में बाधा बन जाएगा। इसलिए समझ लेने के लिए पहली बात है अतीत की, ज्ञात की, ज्ञान की व्यर्थता जो स्मृतियों से भरा हुआ है उस मन की व्यर्थता। जहां तक अज्ञात का संबंध है सत्य का संबंध है...यह हो सकता है यह बोधपूर्ण होना हो सकता है मन में जो कुछ भी जाना है उसके प्रति बोधपूर्ण हो जाना।

यहां पर दो संभावनाएं हैं।

या तो तुम जो तुमने जाना है उसके साथ तादात्म्य जोड़ सकते हो, या तुम, जो कुछ तुमने जाना है उसके प्रति साक्षी हो सकते हो। अगर तुम इसके साथ तादात्म्य जोड़ लेते हो–ऐसा नहीं है कि तुमने उसको जान लिया है बल्कि तुम जानकारी बन गए हो–तुम और तुम्हारी स्मृति तादात्म्म के कारण एक हो गए हैं। अगर मन ने तादात्म्य कर लिया है चेतना ने ज्ञान की विषय-वस्तु के साथ अपना तादात्म्य कर लिया है तो शून्य को जानना कठिन हो जाएगा। लेकिन अगर वहां पर कोई तादात्म्य नहीं है, अगर तुम अपनी स्मृतियों से भिन्न बने रहे वे स्मृतियां जो तुम्हारे संचय का एक भाग हैं, लेकिन तुम उनसे अलग भिन्न हो तुमने उनसे तादात्म्य नहीं किया हुआ है–अपनी स्मृतियों से कुछ अलग की भांति तुम सजग हो। यह सजगता शून्य की ओर एक पथ बन जाती है।

जितना अधिक तुम सजग हो जाते हो, उतना अधिक तुम अपने ज्ञान के प्रति साक्षी हो जाते हो। जितना कम तुम जानकार होते हो, उतनी ही कम संभावना है कि तुम्हारा अहकार जानने वाला, मालिक बन जाए। अगर तुम अपनी स्मृतियों से भिन्न हो, और व्यक्ति भिन्न है ही, तो स्मृतियां एक प्रकार से एकत्रित धूल की तरह हो जाती हैं। वे अनुभवों के माध्यम से आई हैं और हमारे मन का आधारभूत भाग बन गई हैं, लेकिन फिर भी चेतना अलग है। वह जो स्मरण करता है उससे अलग है जिसका स्मरण किया गया है। वह जिसने जाना है उससे अलग है जिसको जाना गया है। अगर यह भेद स्पष्ट हो जाता है और एक सुस्पष्टता उपलब्ध कर ली जाती है तो

शून्य निकटतर और निकटतर आ जाता है। बिना तादात्म्य के तुम खुल सकते हो तुम स्वयं अपने और अशात के बीच आने वाली स्मृति के बिना हो सकते हो।

शून्य को उपलब्ध किया जा सकता है, लेकिन इस शून्य को निर्मित नहीं किया जा सकता है। अगर तुम इसे बनाते हो तो यह तुम्हारे पुराने मन, तुम्हारे पुराने ज्ञान द्वारा बनाया जाने के लिए बाध्य होगा। इसलिए यहां पर कोई विधि नहीं हो सकती है क्योंकि कोई विधि केवल तुम्हारी संचित सूचना से ही आ सकती है, और शून्य को विकसित करने के लिए कोई अगर विधि होगी, तो यह तुम्हारे पुराने मन के सातत्य में होने के लिए बाध्य है। यह कोई ऐसा अनुभव नहीं होगा जो उसके सातत्य में न हो। और नये, अज्ञात को तुम तक एक सातत्य के रूप में नहीं आना चाहिए बल्कि एक सातत्यविहीन अंतराल के रूप में आना चाहिए। केवल तब ही यह तुम्हारी जानकारी से परे होता है।

इसलिए इस तरह की कोई विधि नहीं हो सकती, कोई विधि विज्ञान नहीं हो सकता, केवल एक समझ, केवल सजगता हो सकती है कि जिसको मैंने एकत्रित किया है उससे मैं अलग हूं। अगर इसे समझ लिया गया है तो शून्य को विकसित करने की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन चीजें घटित हो जाएंगी। मेरा तादात्म्य नहीं है इसलिए मैं ही शून्य हूं। अब इसे निर्मित करने की कोई जरूरत नहीं है।

और कोई शून्य को निर्मित नहीं कर सकता है क्योंकि बनाया गया शून्य, शून्य नहीं होगा, यह तुम्हारी रचना होगी। तुम्हारी रचना कभी शून्यता, रिक्तता खालीपन नहीं हो सकती है। यह वह आकाश नहीं हो सकती है जो अनंत है–क्योंकि मेरी रचना, तुम्हारी रचना एक सीमित रचना होगी कुछ ऐसी जिसकी सीमाएं हैं। मैंने इसे बनाया है।

शून्य को मुझ तक आना चाहिए। मैं केवल एक ग्राहक हो सकता हूं। और इसलिए मैं केवल एक नकारात्मक ढंग से तैयार हो सकता हूं–तैयार इस अर्थ में कि मैंने ज्ञान के साथ तादात्म्य नहीं बनाया हुआ है–तैयार इस अर्थ में कि जो कुछ मैंने जान लिया है, उसकी निरर्थकता, उसकी अर्थहीनता को मैं समझ गया हूं।

विचार-प्रक्रिया के प्रति केवल यही सजगता मुझको और दूसरों को–एक छलांग की ओर एक अंतराल की ओर ले जा सकती है, जहां पर 'वह जो है' मेरे ऊपर छा जाता है, वह जो, सदा उपस्थित है मुझ तक आता है और मैं उस तक पहुंच जाता हूं और मेरे तथा उसके बीच में अब कोई अवरोध नहीं है। अब यह एक अनंत क्षण एक शाश्वतता, एक असीम बन गया है।

लेकिन जिस क्षण तुमने इसको जान लिया है फिर से तुम इसको ज्ञान में रूपांतरित कर दोगे। फिर से यह तुम्हारी स्मृति का आधारभूत भाग बन जाएगा, फिर से यह खो जाएगा। इसलिए कोई कभी कह नहीं सकता कि ' मैंने जान लिया है। ' अशात सदा अनजाना बना रहता है। कोई इसे कितना ही जान ले, अज्ञात वैसा ही बना रहता है। इसका आकर्षण, इसका सौंदर्य इसका खिंचाव, इसकी पुकार में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

इसलिए जानने की प्रक्रिया शाश्वत है। कोई कभी उस बिंदु पर नहीं आ सकता, जहां पर वह कह सके, 'मैं पहुंच गया हूं।' और अगर कोई यह कहता है, तो वह स्मृति के जाल में, जानकारी के ढांचे में दुबारा से फंस जाता है जो उसका अंत बन जाता है। जिस क्षण कोई जानकारी का दावा करता है, यह उसकी मृत्यु का क्षण है। जीवन रुक जाता है क्योंकि जीवन सदा अशात से अज्ञात की ओर है। सदा और सदा, पार और पार। धार्मिक व्यक्ति को जानने का अर्थ उस व्यक्ति को जानना नहीं है जो ज्ञान का दावा करता हो। वह व्यक्ति जो ज्ञान का दावा करता है, वह धर्मशास्त्री हो सकता है, दर्शनशास्त्री हो सकता है, लेकिन उसके पास एक धार्मिक मन कभी नहीं होता है। धार्मिक मन परम रहस्य को, परम अशेयपन को, अज्ञान के आत्यंतिक आनंद को, परम प्रमुदिता को स्वीकार कर लेता है।

इस क्षण को निर्मित नहीं किया जा सकता, इसको प्रक्षेपित नहीं किया जा सकता है। तुम अपने मन को स्थिर नहीं बना सकते, अगर तुमने इसे स्थिर बना दिया है तो या तो तुमने इसे नशा दे दिया है या तुमने इसे सम्मोहित कर दिया है। लेकिन यह शून्य नहीं है। शून्य जो आता है, और उसे कभी लाया नहीं जा सकता।

इसलिए इस अर्थ में मैं कोई विधि नहीं सिखा रहा हूं कि विधियां, तरकीबें और नीतियां होती हैं। मैं कोई शिक्षक नहीं हूं।

सबसे पहले आपने नकारात्मक तैयारी की बात की ज्ञान का दर्शनशास्त्र और वह दूरी जो आपको इससे बना कर रखनी है सच्चे खोजी की ओर घूम जाना–नकली खोजी के विपरीत सच्चा खोजी आपने सच्चे खोजी की ओर इंगित किया। इसलिए जब आप ज्ञान के दर्शनशास्त्र के बारे में बात कर रहे हैं जो अप्रत्यक्ष रूप से ज्ञान की मृत्यु से जुड़ा हुआ है जो मैं सोचता हूं कि हम में से अधिकतम की समस्या हो सकती है वह है कि हम शब्दों को पहले से ही जानते हैं हम मंत्रों को जानते हैं हम बौद्धिक ज्ञान के खतरों के प्रति सजग हैं। बौद्धिक रूप से हो सकता है कि हम ज्ञान के खतरे के प्रति सजग हों परंतु यह अब भी बौद्धिक तल पर है।

उचित 'ज्ञान' को कैसे रूपांतरित किया जाए? आप कह रहे हैं और मैं आपके साथ सहमत हो सकता हूं कि ज्ञान खतरनाक है लेकिन आप किसी विश्वास को कैसे रूपांतरित कर सकते हैं?

मुझे यह दिखाई पड़ सकता है कि आप सही हैं लेकिन मेरे विश्वास को गहरे ज्ञान के रूप में या जो शब्द आप बोल रहे हैं 'शून्य' में कैसे रूपांतरित किया जाए? इन विश्वासों को सत्य के प्रति गहन ग्रहणशीलता में कैसे बदला जाए? शून्य से कैसे संबंधित हुआ जाए?

अगर तुम्हें भरोसा आ गया हो, तो किसी रूपांतरण की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन हमें भरोसा नहीं आया है और हमें भरोसा आ भी नहीं सकता है। हम भरोसा नहीं कर सकते हैं–किसी को कैसे भरोसा आ सकता है?

व्यक्ति जान सकता है और उसे भरोसा आ सकता है लेकिन भरोसा किसी और के माध्यम से मेरे माध्यम से कैसे आ सकता है। तुम्हें भरोसा कैसे आ सकता है? और अगर तुम्हें भरोसा आ गया है, तो इस भरोसे का अस्तित्व बौद्धिक होने के लिए बाध्य है। लेकिन एक बौद्धिक भरोसा वास्तव में कोई भरोसा नहीं है।

मैं तुम्हें भरोसा दिलाने का प्रयास नहीं कर रहा हूं। मैं तो बस तुम्हें कुछ बता रहा हूं मैं तुम्हें तथ्य संप्रेषित कर रहा हूं। मैं तुम्हें कोई भरोसा दिलाने का प्रयास नहीं कर रहा हूं।

विश्वास करने और अनुभव में क्या संबंध है? क्योंकि मैं आपसे सहमत हूं कि अगर आप पहले से ही किसी ऐसी चीज के बारे में बात नहीं कर रहे हैं जिसका आप अनुभव कर चुके हैं तो आपको विश्वास नहीं आ सकता है। इस प्रकार के सत्य का रूपांतरण कैसे किया जाए जिससे मैं कह सकूं : यह सत्य है?

मैं समझता हूं। यहां पर कोई 'कैसे' नहीं है। क्योंकि कैसे का अर्थ है कोई विधि है। यहां पर एक जागरण है। यहां पर कोई कैसे नहीं है। अगर तुम मुझे सुन रहे हो और तुम्हारे द्वारा कुछ अनुभव किया जाता है कि यह सत्य हो सकता है–अगर तुम्हारे साथ यह घटित हो जाता है, यह अनुभूति इसका अर्थ है कि यह सत्य हो सकता है। यह तुम्हारे साथ क्यों घटित होता है? क्योंकि यहां पर दो संभावनाएं है या तो तुम मेरे तर्क से संतुष्ट हो गए हो या तुम इसे अपने भीतर एक तथ्य के रूप में देखते हो। ये दो बातें हैं।

अगर मेरा तर्क एक संतुष्टि बन जाता है तो तुम पूछोगे कैसे? यदि जो मैं कह रहा हूं तुम्हारे द्वारा एक तथ्य के रूप में अनुभव किया जा चुका है कि हां ज्ञान मुझ से भिन्न कोई चीज है। मैं ज्ञान नहीं हूं। अगर यह एक अनुभव की तरह घटित होता है तो जब मैं यह बोल रहा हूं तब इसके घटने की संभावना है। यहां पर यह संभावना भी है कि मेरा तर्क तुम्हारे मन में जा रहा हो। अगर मेरा तर्क वहां चला जाता है तब किसी कैसे का कोई प्रश्न नहीं उठेगा।

जब बुद्धि संतुष्ट हो जाती है तो यह पूछती है ' कैसे? इसे जानने की क्या विधि है?' लेकिन मैं तुम्हें कोई तर्क नहीं दे रहा हूं। मैं तुम्हें सिद्धांत नहीं दे रहा हूं। मैं तो बस अपना अनुभव बता रहा हूं। और मैं भली भांति जानता हूं कि यहां पर दोनों संभावनाएं होती हैं।

जब तुम मुझे सुन रहे हो तो तुम मुझे ऐसे भी सुन सकते हो जैसे कि कोई व्यक्ति तुम से कोई बात कह रहा हो, या तुम इस तरह से सुन सकते हो जैसे कि तुम्हारे भीतर कुछ घटित हो रहा हो। जब मैं कहता हूं कि स्मृति एक संचय है जो मुझ. से भिन्न है कि स्मृति कुछ ऐसी है जो मृत है, यह अतीत की छाया मात्र है, वह जिसको मैंने जाना है कि अतीत से कुछ जो मेरे साथ लटका हुआ है लेकिन मैं इससे भिन्न हूं–जब मैं इसके बारे में बात कर रहा हूं अगर यही तुम्हें एक अनुभूति के रूप में घटित होता है, या तुम अपनी स्मृति की प्रक्रिया और अपने बारे में और अपनी चेतना के बारे में कोई झलक पा जाते हो—तब वहा पर कोई 'कैसे' नहीं होता है। तब कुछ घटित हो गया है, और यह 'कुछ' तुम्हारे भीतर प्रविष्ट होता चला जाएगा किसी विधि के द्वारा नहीं बल्कि तुम्हारी सजगता के माध्यम से दिन प्रतिदिन, पल-पल तुम्हारे ज्ञान के बारे में तुम्हारी स्मृति के बारे में और तुम्हारे स्व के बारे में–यह स्मरण यह सतत स्मरण, किसी ऐसी चीज के चारों ओर जो उससे अलग है जिसे मैं जान चुका हूं।

चेतना की विषय-वस्तु से चेतना कुछ भिन्न है। अगर यह हर पल का बोध बन जाता है–जब तुम चल रहे हो जब तुम बातचीत कर रहे हो जब तुम देख रहे हो, जब तुम खा रहे हो जब तुम सोने जा रहे हो– अगर यह सतत सजगता बन जाता है कि मैं उस स्मृति से जो निर्मित की गई संचित की गई है, अलग कुछ और हूं कि यह मन में बनाई गई है, यह मन एक कंप्यूटर है, कंप्यूटरीकृत पूर्व-निर्मित प्रणाली है... अगर यह एक सतत जागरूकता बन जाती है विधि नहीं, अगर तुम इसके प्रति सजग हो गए हो तो कुछ घटित हो जाएगा।

कोई नहीं कह सकता कि कब कोई नहीं कह सकता है कि कैसे, कोई नहीं कह सकता है कि कहां यह घटित होगा। अगर यह सजगता जारी रहे चलती रहे चलती चली जाए तो यह स्वत: ही गहरी से और गहरी हो जाती है। यह एक अपने आप चलने वाली प्रक्रिया है। यह और गहरी हो जाती है बुद्धि से यह तुम्हारे हृदय में चली जाती है, और बुद्धिमत्ता से यह तुम्हारे भाव मन पर चली जाती है, चेतन से यह धीरे- धीरे अवचेतन में चली जाती है। किसी दिन तुम पूरी तरह से जागे हुए होते हो। कुछ घटित हो गया है–विकास की भांति नहीं, बल्कि एक तथ्य के स्मरण की सह-उत्पत्ति के रूप में। किसी कपोल-कल्पना सिद्धांत नीति, उपाय के कल्टीवेशन संवर्धन से नहीं बल्कि भीतर के एक तथ्य भीतर के विभाजन के प्रति जाग जाने से जो तुम्हारे भीतर कुछ गहराई तक चला गया है।

जब यह क्षण आता है तो पूरी तरह से अप्रत्याशित अज्ञात एक विस्फोट की तरह आता है। और विस्फोट के उस क्षण में तुम पूरी तरह से खाली हो–तुम नहीं हो। तुम्हारा होना मिट चुका है। वहां कोई बुद्धि नहीं है वहां कोई तर्क नहीं है वहां कोई स्मृति नहीं है। वहां पर बस सरल चेतना है' 'ना-कुछ' के प्रति चेतना। और उस ना-कुछ में उसका साक्षात है उसी ना-कुछ में उपलब्धि है उसी ना-कुछ में ज्ञान है, लेकिन नितांत भिन्न अथई में

ज्ञान। अब वहां जानने वाला कोई नहीं है अब वहां जाना गया भी कुछ नहीं है। वहां पर बस सरल प्रवाहमान ज्ञान है केवल जानने का अस्तित्व है। यह अस्तित्वगत बात है।

और इसको बताया नहीं जा सकता है। ना-कुछ में क्या है वह ना-कुछ कैसा है इसे कहा नहीं जा सकता है। लेकिन उसके सिवाय सभी कुछ कहा जा सकता है। निस्संदेह यह कहना नकारात्मक होगा क्योंकि अंतर्तम, वह सर्वाधिक यथार्थ वह परम उसके बारे में बात नहीं की जा सकती है–केवल उस ओर का पथ प्रक्रिया को बताया जा सकता है। और उस प्रक्रिया की एक विधि के रूप में कल्पना नहीं की जा सकती है, क्योंकि विधि का अभ्यास करना पड़ता है। स्मरण का अभ्यास नहीं किया जा सकता है। या तो तुम्हे याद है, या तुम्हें याद नहीं है।

जैसा कि मुझे समझ में आया है : सजगता के द्वारा अनुभूति। जब आप नकारात्मक रूप से इसे वर्गीकृत करते हैं या इसे परिभाषित नहीं करते लेकिन नकारात्मक रूप से संकेत कर देते हैं तो सच्चे अनुभव से विचारों को हटा देने से आया परिणाम क्या होता है? कभी-कभी आप योग का उल्लेख करते हैं... क्या आप इस प्रकार के किसी अभ्यास को करते हैं या आप उसे करने का निर्देश देते हैं या यह पूरी तरह से अंतरात्मा की खोज का एक ढंग है? क्या आप सोचते हैं कि एक विशिष्ट प्रकार की जीवन- शैली या जीने का कोई विशेष ढंग इसकी उपलब्धि या इस ओर विकास के लिए आवश्यक है?

नहीं। विशिष्ट जीवन-शैली की जरूरत नहीं है, लेकिन जिस क्षण तुम सजग हो जाते हो तुम्हारा जीने का ढंग बदल जाता है तुम्हारा जीवन बदल जाएगा। लेकिन वे परिवर्तन तुम पर आएंगे उनका अभ्यास नहीं करना है। जिस पल तुम किसी बात का अभ्यास करते हो तो उसमें जो महत्वपूर्ण होता है वह खो जाता है। इसे सहज स्कूर्त रूप से तुम पर आना चाहिए।

लेकिन सहजस्कूर्त के साथ कैसे हुआ जाए क्योंकि कोई सजगता के प्रति सजगता रखने की इच्छा कर सकता है?

नहीं इच्छा मत करो। यहां पर इच्छा करने का कोई प्रश्न नहीं है। इच्छा मत करो। बस होओ इच्छा मत करो।

नहीं... क्योंकि जो आप कह रहे हैं इच्छा करना उससे विपरीत बात है। यह शब्दों में विरोधाभासी होगा ऐसी राय दे देना–कि अगर तुम ना-कुछ को चाहते हो तो उसकी इच्छा मत करो। इसलिए मैं आपसे पूरी तरह से सहमत हूं। लेकिन क्या थोड़ा-थोड़ा करके जानते रहना

और ना-कुछ को पा लेना ठीक होगा बिना उसकी इच्छा या चाहत के और बिना कुछ किए हुए? यह मुझे समझ में आता है। लेकिन इच्छा को किस प्रकार से रोकें?

नहीं नहीं नहीं। इच्छा को रोकने का यहां कोई सवाल ही नहीं है। यहां पर केवल समझ का सवाल है। यहां पर किसी चीज को रोक देने या किसी बात का अभ्यास करने का कोई सवाल ही नहीं है। सवाल तो बस यह समझ लेने का है कि तुम ना-कुछ की इच्छा नहीं कर सकते। यह कोई शब्दों का विरोधाभास भर नहीं है,

बल्कि यह अस्तित्वगत विरोधाभास भी है। अगर यह केवल शब्दों का विरोधाभास होता तो इस बात की पूरी संभावना थी कि यह इतना गंभीर मामला न होता लेकिन अगर यह अस्तित्वगत रूप से विरोधाभासी है तो

तुम इसकी इच्छा नहीं कर सकते, क्योंकि इच्छा कैसे भी आए यह तुम्हारे पुराने मन, तुम्हारी जानकारी से आती है–यह इच्छा तुम से आती है। और तुम्हें वहां नहीं होना चाहिए। इसलिए तुम इच्छा नहीं कर सकते। तुम केवल समझ सकते हो, और समझ के द्वारा तुम्हारा होना मिट सकता है। तुम बस यही समझ सकते हो कि यह एक तथ्य है कि मैं इसके लिए इच्छा नहीं कर सकता मैं इसके लिए अभीप्सा नहीं कर सकता, मैं इसको चाह नहीं सकता। वह सब-कुछ जो मैं कर सकता हूं वह है 'मैं क्या हूं' के प्रति सजग होना।

अगर मैं इसके प्रति सजग हो जाऊं कि मैं क्या हूं तो मैं दो बातों के प्रति सजग हो जाता हूं। एक जो मैं सोच रहा था कि मैं हूं वह मैं नहीं हूं। और दो यह मैंने कभी नहीं जाना था। जब मैं अपने प्रति जैसा मैं इस क्षण में था सजग हो गया तो, वहां एक बंटवारा, एक अलगाव, एक विभाजन घटित हो जाता है। मेरे भीतर के कुछ के प्रति मैं तादात्म्य रहित हो जाता हूं।

तब वहां पर दो होते हैं मैं और मेरा। यह 'मेरा' स्मृति है, वह मेरा मन है और वह 'मैं' चेतना है वह मैं आत्मा है। इसलिए मुझे कुछ नहीं करना है मुझे जो मैं इस क्षण में हूं उसके प्रति सजग हो जाना है। बिना किसी विधि के बस सजग।

कोई तुम्हारे पास आ सकता है और वह तुम्हारी छाती पर छुरा रख सकता है। उस क्षण में–उस क्षण के एक छोटे से अंश में– तुम सजग हो जाते हो उसके प्रति जो है। उसकी कोई विधि नहीं है। तुम नहीं पूछते हो मैं इसके प्रति सजग कैसे हो सकता हूं? तुम बस उस परिस्थिति के प्रति सजग हो जाते हो। और उस क्षण में वहां पर कोई ध्यान नहीं है। उस क्षण में वहां पर अ-मन है। उस क्षण में वहां पर कोई मैं नहीं है। उस क्षण में मैं है और वह छुरा है, और वह परिस्थिति है, और बीच में कुछ भी नहीं है। लेकिन यह क्षण सेकंड के एक भाग के लिए रहता है–और फिर मेरा भीतर आ जाता है और कार्य करने लगता है क्या किया जाए?

खतरे के क्षणों में कभी-कभी तुम सहजस्कूर्त रूप से सजग हो जाते हो। इस बात की पूरी संभावना है कि इसी के कारण खतरे में एक आकर्षण हो जाएगा। तब खतरे की खोज की जाएगी उस क्षण के कारण इस क्षण के उस अंश के कारण उस सजगता के कारण खतरे की तलाश की जाती है।

अगर तुम मुझे सुन रहे हो और इस बारे में नहीं सोच रहे हो कि बाद में क्या किया जाना है, बल्कि बस मुझे सुन रहे हो तो कुछ समय बाद तुम सजग हो जाते हो। और यह मत पूछो कि कैसे क्योंकि एक असंभव बात है यह। जो मैं कह रहा हू उसके प्रति एक आंतरिक प्रक्रिया की भांति सजग हो जाओ– तब तुम इसे देखते रहो तब यह एक विश्वास बन जाता है, मेरे तर्क के माध्यम से नहीं बल्कि एक तथ्य के तुम्हारे द्वारा किए गए स्मरण के माध्यम से।

तुम्हें मुझे सुनना चाहिए और साथ ही साथ अपने अंतर्मन को भी सुनना चाहिए। यह प्रक्रिया पूरे समय चलती रहनी चाहिए। जो मैं कह रहा हूं वह तुम्हारे 'मैं' का भाग बन रहा है, यह तुम्हारे मैं का भाग बन रहा है–यह तुम्हारी जानकारी का भाग बन रहा है। यह जानकारी पूछेगी कि रूपांतरण कैसे हो, यह जानकारी और अधिक जानकारी की मांग करेगी–'कैसे' के बारे में, विधि के बारे में। और अगर कोई विधि बता दी जाती है) तो वह भी तुम्हारी जानकारी का हिस्सा बन जाती है। तुम्हारा 'मैं' मजबूत हो जाएगा यह और अधिक जानकार बन जाएगा।

मेरा जोर तुम्हारे 'मैं' पर नहीं है। मैं तुम्हारे 'मैं' से बात नहीं कर रहा हू। अगर तुम्हारा 'मैं' बीच में आ जाता है तो वार्तालाप संप्रेषण नहीं बन सकता है। यह बस एक वार्तालाप है एक परिचर्चा है संवाद नहीं। यह

संवाद बन जाता है अगर वहां पर कोई 'मैं न हो। यदि तुम वहां पर हो–नहीं अगर तुम अपने मैं' के माध्यम से यहां पर नहीं हो, तब वहां पर 'कैसे' का कोई प्रश्न नहीं उठता। जो मैं कह रहा हूं वह यह है कि या तो इसे एक सत्य की भांति देखा जा सकेगा या असत्य की भांति या तो एक तथ्य के रूप में या किसी अनर्गल सिद्धांत के रूप में। अगर यह एक तथ्य है तो कुछ घटित हो चुका है अगर यह एक कपोल कल्पना भर है तो इसका कोई प्रश्न ही नहीं उठता है।

इसलिए मेरी रुचि तो बस एक स्थिति निर्मित करने में है–या तो बोल कर या मौन के द्वारा या तुम्हें इस प्रकार से शिक्षित करके ऐसी स्थिति निर्मित कर देनी है जहां तुम्हारा 'मैं' किसी प्रकार से बाहर आ जाए...तुम्हारा 'मैं' बाहर निकल आए तुम्हारा मैं तुम्हारे 'मेरे' को पार कर ले। इसलिए मैं अपने मित्रों के साथ जो कर रहा हूं वह है अनेक स्थितियां निर्मित करने का प्रयास।

किस प्रकार की स्थितियां?

यह भी एक प्रकार की स्थिति है; यह भी एक तरह की स्थिति है। मैं तुमसे असंगत बातें कह रहा हूं, वेबूझ बातें। क्योंकि मैं कुछ उपलब्ध करने के लिए कह रहा हूं और फिर भी किसी विधि से इनकार कर रहा हूं। यह बात असंगत है। अब मैं कुछ कह रहा हू और फिर भी यह कह रहा हूं कि इसे नहीं कहा जा सकता है जो कि असंगत बात है।

लेकिन क्या यही एक मात्र संभव उपाय है?

यही एक मात्र संभव उपाय है। यही एक मात्र संभव उपाय है क्योंकि यह अपने आप में खुद ही एक असंगत बात है जो स्थिति को निर्मित कर सकती है। अगर मैं तुम्हें समझा कर संतुष्ट कर दूं, तो इससे यह परिस्थिति निर्मित नहीं होगी। यह तुम्हारे 'मेरा' का तुम्हारी जानकारी का हिस्सा बन जाएगा। नहीं। मुझे इस प्रकार से तुम्हें संतुष्ट कर देना पड़ेगा कि तुम्हारा मेरा संतुष्ट न हो। तुम्हारा ' मेरा ' पूछता रहे कैसे? रास्ता क्या है? मैं रास्ते को इनकार कर दूंगा और फिर भी रूपांतरण की बात करूंगा। केवल तब यह स्थिति असंगत हो जाती है स्थिति इतनी अतर्क्य हो जाती है कि तुम्हारा मन संतुष्ट नहीं होता है। तभी उस पार का कुछ जाग्रत हो सकता है और अर्थवत्ता को उपलब्ध किया जा सकता है।

इसलिए मैं स्थितियां निर्मित कर रहा हूं। सारे समय मैं स्थितियां निर्मित कर रहा हूं। जैसे कि किसी बौद्धिक व्यक्ति से परिचित होता हूं तो बौद्धिक व्यक्ति के लिए, असंगतता ऐसी स्थिति होनी चाहिए। कोई व्यक्ति जो...

एक बौद्धिक व्यक्ति और असंगत यह तो विरोधाभास हुआ?

नहीं वह एक संभावना है वह एक संभावना है उसमें एक आकर्षण होना ही चाहिए उसमें अभिरुचि उत्पन्न होना चाहिए।

गैर-बौद्धिक व्यक्ति के साथ असंगतता में कोई अर्थ नहीं है। उसे कुछ और आकर्षित करेगा। इसलिए यह व्यक्ति-व्यक्ति के साथ अलग-अलग होता है। जब कोई व्यक्ति मेरे पास आता है इसका अर्थ है कि अगर मैं उससे

प्रेम करता हूं तो उसे असंगत परिस्थिति में डाल दिया जाता है। जिससे कि वह सजग हो जाता है। हम केवल तभी सजग होते हैं जब कुछ असंगत घटित हो गया हो, कुछ ऐसा जिसे सातत्य में न रखा जा सके–कुछ ऐसा जिससे एक अंतराल निर्मित हो ही जाए कुछ ऐसा जो झकझोरने वाला हो उलझाने वाला। इसलिए कि यह उलझन–एक उलझन जो तुम्हारे लिए उलझन है, हो सकता है कि मेरे लिए या किसी और के लिए उलझन न हो।

मुझे बुद्ध के जीवन की एक घटना याद आती है।

एक सुबह कोई उनसे पूछता है क्या ईश्वर है? मैं विश्वास करता हूं मैं विश्वासी हूं और मैं सर्वशक्तिमान ईश्वर में भरोसा करता हूं।

बुद्ध ने इससे पूरी तरह इनकार कर दिया, 'कोई ईश्वर नहीं है। कभी कोई ईश्वर नहीं था और उसके होने की कोई संभावना भी नहीं है। तुम कैसी व्यर्थ की बेतुकी बातें कर रहे हो।' वह व्यक्ति हक्का-बक्का रह गया। लेकिन स्थिति निर्मित हो गई।

दोपहर बाद एक और व्यक्ति बुद्ध के पास आता है और कहता है 'मैं एक नास्तिक हूं। मैं किसी ईश्वर में विश्वास नहीं करता हूं। क्या कहीं कोई ईश्वर है? आप क्या कहते हैं?'

बुद्ध कहते हैं 'केवल ईश्वर है। उसके सिवाय किसी और का अस्तित्व ही नहीं है।' वह व्यक्ति हक्काबक्का रह जाता है।

लेकिन वह भिक्षु जो सदा बुद्ध के साथ रहा करता है और भी अधिक हक्काबक्का रह गया क्योंकि उसने दोनों उत्तर सुने थे। वह समय की तलाश में रहता है कि जब बुद्ध अकेले हों तो उसकी जिज्ञासा शांत हो सके। वह भिक्षु बेचैन है–सुबह बुद्ध ने कहा कोई ईश्वर नहीं है। दोपहर के बाद कहा : केवल ईश्वर है।

शाम को एक तीसरा व्यक्ति आता है और बुद्ध से पूछता है 'मैं अज्ञानी हूं! मैं न तो विश्वास करता हूं और न ही अविश्वास करता हूं। आप क्या सोचते हैं? ईश्वर है या नहीं है? बुद्ध चुप रहे। वह व्यक्ति चौंक गया। लेकिन वह भिक्षु और भी अधिक हक्काबक्का हो गया।

उस रात वह भिक्षु आनंद बुद्ध से पूछता है? हे बुद्ध! कृपया पहले मुझे उत्तर दें। आपने मेरा परम सत्य छीन लिया है। मैं मुसीबत में पड़ गया हूं। इन असंगत उत्तरों से आपका क्या आशय है? ये विरोधाभासी उत्तर?

बुद्ध कहते हैं 'उनमें से कोई भी उत्तर तुम्हें नहीं दिया गया था। तुमने उन्हें क्यों ले लिया है! वे उत्तर उन व्यक्तियों को दिए गए थे जिन्होंने उन्हें पूछा था। तुमने क्यों सुन लिया है?

उस भिक्षु आनंद ने कहा आप मुझे और भी अधिक उलझन में डाल रहे हैं। मैं आपके साथ था इसलिए मैंने दोनों उत्तरों को सुन लिया है, लेकिन इन उत्तरों ने मुझे उलझन में डाल दिया है।

बुद्ध ने कहा. तो अब मैं सोने जा रहा हूं। अपनी उलझन में बने रहो। (यह तुम्हारे लिए उत्तर है।)

एक परिस्थिति निर्मित की जा सकती है। यहां पर यही संभावना है 'एक परिस्थिति निर्मित की जा सकती है। झेन फकीर उसे अपने निजी ढंग से निर्मित करता है। वह तुम्हें दरवाजे से बाहर धक्का दे सकता है, या तुम्हारे चेहरे पर चौटा मार सकता है और एक स्थिति निर्मित हो जाती है जो असंगत है। तुमने कुछ पूछा है और वह कुछ और उत्तर देगा। कोई पूछता है, 'मार्ग क्या है?' और झेन फकीर उत्तर दे देता है–यह। उत्तर मार्ग से जरा भी संबंद्धित नहीं होता। वह कहता है ' नदी को देखो!' या 'वृक्ष को देखो!' यह कितना ऊंचा है! या जरा पत्तियों को देखो, कैसे वे (धूप और हवा) छान रही हैं। यह असंगत है। मन सातत्य खोजता है। यह असंगतता से भयभीत है। यह अतर्क्य से और अज्ञात से और जो उससे परे है उन सभी से डरा हुआ है। यह घुमक्कड़ है। और

सत्य बुद्धिकरण का सह-उत्पाद नहीं है। सत्य न तो कुछ घटाना है और न ही कुछ बढ़ाना है। यह तर्क नहीं है। यह कोई तार्किक निष्पत्ति भी नहीं है।

इसलिए मैं तो बस यह कह सकता हूं कि मैं एक परिस्थिति निर्मित कर रहा हूं। मैं तुम्हें कुछ संप्रेषित नहीं कर रहा हूं। मैं बस एक परिस्थिति निर्मित कर रहा हूं और यदि परिस्थिति निर्मित हो जाती है तो कुछ ऐसा जो संप्रेषित नहीं हो सकता है, संप्रेषित किया जा सकता है।

इसलिए मत पूछो, कैसे! बस हो रहो। यदि तुम हो सको तो सजग हो जाओ, यदि तुम न हो सको तो अपने न हो सकने के प्रति सजग हो जाओ। होशपूर्ण हो रहो, यदि तुम होशपूर्ण न हो सको तो अपनी बेहोशी के प्रति होशपूर्ण हो जाओ। जो है उस पर अवधान दो। यदि तुम ऐसा न कर सको तो अपने अवधान न दे पाने के प्रति अवधान दो। और घटना घटेगी। घटना घटती है।

जब आप इसको घटित होते हुए देखते हैं तो आप अनुभव के कैसा होने की अपेक्षा रखते हैं? क्या ऐसा हो सकता है कि वहां जो अनुभूति निर्मित होती हो वह अच्छे प्रकार की न हो जैसा कि आप कह चुके हैं कि यह पहले से ही पूरी तरह से असंगत है। यह दूसरे लोगों को उलझा देने की संभावना है–क्या यह एक खतरा नहीं है?

नहीं-नहीं लोग पहले से ही उलझे हुए हैं। लेकिन क्योंकि वे पहले से ही उलझे हुए हैं, इसलिए उन्होंने अपनी उलझनों से तादात्म्य कर लिया है। वे इनके साथ आराम में हो गए हैं। ये उनकी आदत बन चुका है। यह सभी कुछ हो गया है। हम पहले से ही उलझे हुए हैं क्योंकि ऐसा कैसे संभव हो सकता है कि कोई व्यक्ति उलझा हुआ न हो और सत्य को न जानता हो। उलझन हमारी परिस्थिति है। जब मैं तुम्हें उलझाता हूं तुम्हारी उलझन उलझ जाती है। इसीलिए ठीक उलटा प्रतीत होता है। उलझन का उलझ जाना नकारात्मक है। तब पहली बार तुम शांत हो जाते हो। कारण यह है कि अब वहां उलझन नहीं है। यह कोई परिणाम नहीं है बल्कि यह उस संदेश को संप्रेषित करने का एक ढंग है, जिसको मूलत: संप्रेषित नहीं किया जा सकता।

तुम क्या पूछ रहे हो, तुम पूछ रहे हो : 'क्या उपलब्ध होगा? परिणाम क्या होगा?' कुछ कहा जा सकता है इस शर्त के साथ कि उसे सत्य न समझ लिया जाए। इसे केवल एक प्रतीकात्मक की, काव्य की, पुराण की भांति ग्रहण कर लिया जाए। अगर तुमने इसे एक पुराण कथा के रूप में ग्रहण कर लिया है तो यह संभव है कि किसी चीज की ओर संकेत किया जा सके। अगर तुमने इसे सत्य की भांति ग्रहण कर लिया है तो इस बात की पूरी संभावना है कि उस चीज को जानने में रुकावट आ सकती है।

पुराण के साथ बात यह है कि हर वह शास्त्र जो धार्मिक है उसे पुराण माना जाता है पर हर वह स्वीकारोक्ति जो उस व्यक्ति से आई है जो इस घटना से होकर गुजरा है तो उन अर्थों में यह बात असत्य है–जब तक कि तुम यह न समझ लो कि यह बात केवल संकेत कर सकती है। यह सत्य नहीं है बल्कि केवल एक संकेत है। और इसके पहले कि सत्य को जाना जा सके संकेत को भुला देना चाहिए।

तीन शब्द हैं जो अंतिम रेखा, सीमा रेखा हैं। उनके पार मौन आ जाता है। सीमा के ये तीन शब्द हैं सत्-चित्-आनंद। सत्-चित्-आनंद अस्तित्व-शुद्ध अस्तित्व चैतन्य- शुद्ध चैतन्य; आनंद-शुद्ध आनंद। ये तीन शब्द हैं जो एक को निर्मित करते हैं।

ये तीन शब्द इसके आयाम हैं या आयाम भी नहीं हैं। जब हम इसकी धारणा बनाते हैं तो यह तीन भागों में बंट जाता है। यह एक की भांति अनुभव किया जाता है लेकिन तीन की भांति समझाया जाता है।

ये तीन पूर्ण अस्तित्व परम अस्तित्व, प्रमाणिक है-पन है-पन की प्रमाणिकता। तुम हो केवल तुम हो। न यह है न वह है। मात्र है-पन-तुम न यह हो, न वह। तुम हो, अस्तित्व किसी भी चीज से तादात्म्य के बिना। इसीलिए यह शुद्ध है।

दूसरा आनंद। प्रसन्नता नहीं हर्ष नहीं आनंद। प्रसन्नता में अप्रसन्नता की एक छाया एक स्मृति एक पृष्ठभूमि है। हर्ष में भी एक बिखरता हुआ सा तनाव होता है आराम नहीं लगातार बना रहने वाला तनाव जिसे कम होने के लिए बाहर निकलना ही पड़ता है। लेकिन आनंद आनंद है ऐसी प्रसन्नता जिसमें अप्रसन्नता की कोई भी छाया नहीं है। आनंद है हर्ष जिसके चारों ओर कोई ऐसी घाटी नहीं है जिसमें नीचे उतरना हो। आनंद द्वैत रहित प्रसन्नता है सच्चा हर्ष है। आनंद के विपरीत कोई शब्द नहीं है। यह मध्य-बिंदु है।

विपरीत शब्द सदा अतियां होते हैं–या तो एक छोर की अति या दूसरे छोर की। हर्ष एक है विषाद दूसरी अति है। आनंद उनके बीच का बिंदु है या उनके पार का बिंदु है, या उनका अतिक्रमण है। इसमें विषाद की गहराई और हर्ष की ऊंचाई दोनों हैं। हर्ष कभी भी गहरा नहीं होता है। यह सतह से ऊपर-ऊपर रहता है। इसमें ऊंचाई है, कोई गहराई नहीं है। विषाद गहरा है इसमें गहराई है घाटी जैसी गहराई लेकिन कोई शिखर नहीं है। आनंद दोनों है हर्ष का प्रकाश और विषाद का अंधकार गहराई और ऊंचाई दोनों एक साथ। इसलिए यह दोनों का अतिक्रमण कर लेता है। यह प्रकाश शुद्ध है। केवल अन-अति का मध्य-बिंदु ही अतिक्रमण का बिंदु बन सकता है।

और तीसरा है चैतन्य, चित्त। चित्त हमारा चेतन मन नहीं है। क्योंकि हमारा चेतन मन किसी बड़े अचेतन मन का हिस्सा है। यह कोई ऐसी चेतना नहीं है जिसके साथ में अचेतनता हो। जब तुम चेतन होते हो, तो तुम किसी के प्रति चेतन होते हो। हमारी चेतना सदा वस्तु की ओर है यह किसी के बारे में है। चित्त चेतना बस चैतन्य होना है कुछ नहीं के प्रति चैतन्य। यह चैतन्य होना है और किसी वस्तु के प्रति चैतन्य नहीं होना बस प्रकाश की तरह। हम कभी प्रकाश को नहीं देखते हैं। हम केवल प्रकाशित वस्तुओं को देखते हैं। हम प्रकाश को कभी नहीं देखते हैं प्रकाश को कभी देखा नहीं गया है–केवल वस्तुओं को प्रकाश के द्वारा देखा जाता है। जिस वस्तु पर प्रकाश पड़ता है उसे देखा जाता है प्रकाश को जैसा वह है वैसे कभी नहीं देखा गया है। इसलिए हम कभी चेतना को नहीं जानते हैं हम एक चेतना को जानते हैं जो कि सदा किसी के प्रति होती है। चित्त परम चेतना है, प्रकाश जैसी चेतना प्रकाशित वस्तुओं जैसी चेतना नहीं। चेतना किसी की ओर उन्मुख ही नहीं है। बल्कि यह उन्मुख ही नहीं है। वह प्रकाश अनंत और शुद्ध हो सकता है। इसमें कोई विषय वस्तु नहीं है। कुछ भी इसे अशुद्ध नहीं कर सकता है। यह है और यही है, और बस यही है।

ये तीन शब्द सत्-चित्-आनंद ये शब्द सकारात्मक हैं। तो ये सीमा रेखा के शब्द हैं यह वह अधिकतम बात है जिसे कहा जा सकता है। लेकिन यह अल्पतम है जिसकी अनुभूति की गई है। यह अभिव्यक्ति की अंतिम सीमा है, और अन-अभिव्यक्त में पहली छलांग है। यहां से ऐसा नहीं है कि यहा पर अंत है। यहां से आरंभ है। इस बिंदु से हमारे मन को झलक मिल सकती है। यह झलक भी हमारे संसार की हमारी जानकारी की हमारे मनों की होती है।

तो यह अभिव्यक्ति है वास्तविकता नहीं है। अगर इसे याद रखा जा सके तो कोई हानि नहीं पहुंचती है। लेकिन हमारा मन इसे भूल जाता है और यह अभिव्यक्ति सत्-चित्-आनंद एक सच्चाई बन जाती है। तो हम इसके चारों ओर सिद्धांत और नीतियां निर्मित कर लेते हैं और मन बंद हो जाता है। तब वहां कोई छलांग नहीं लगती है। यह दुर्भाग्य भारत में घटित हो गया है। इस देश में सारी परंपरा इन तीन शब्दों के चारों ओर बना दी गई है–सारे उपनिषद और वेदांत और सांख्य, ये सभी इन तीन शब्दों के चारों ओर हैं। और ये सीमा के शब्द हैं

मन की सीमा रेखा। इसलिए वास्तविकता सत्-चित्-आनंद नहीं है यह उसके पार है। लेकिन शब्दों से कितना कुछ कहा जा सकता है तो इसे एक रूपक की भांति समझा जाना चाहिए। सारा धार्मिक साहित्य एक रूपक है, कुछ कहा गया है और उसे शब्द का रूप दिया गया है–उसका शब्दीकरण कर दिया गया है–जिसे आत्यंतिक रूप से शब्दों द्वारा नहीं बताया जा सकता है।

मैं तो सदा इन शब्दों का उपयोग एक पुराणकथा के रूप में करते हुए डरता हूं क्योंकि जिस पल मन जान लेता है कि क्या होने वाला है यह सिद्धांत निर्मित करने लगता है, यह उसकी अभिलाषा करने लगता है। यह उसकी चाह मांग और इच्छा करने लगता है। जब यह सत्-चित्-आनंद को चाहता है, जब यह सत्-चित्-आनंद की मांग करता है, तो ऐसे शिक्षक हैं जो इस मांग की पूर्ति करते हैं। इसमें मंत्र, तंत्र, उपाय और विधियां आ जाती हैं और इन सभी के शिक्षक हैं। हर मांग की पूर्ति कर दी जाएगी। निरर्थक मांग की पूर्ति निरर्थकता से होगी, असंगत मांग की पूर्ति असंगता से होगी। इसी तरह से सारे धर्मशास्त्र और सारी गुरु परंपराएं निर्मित हो जाती हैं।

इसलिए व्यक्ति को सारे समय इस बात के प्रति सजग रहना पड़ेगा कि वह परम को चाहत की वस्तु न बना ले उसे वस्तु की तरह पाने की इच्छा न बना ले उसे दूर की कोई चीज न बना ले कि जिसे उपलब्ध किया जाना है और जहां पर यात्रा करनी है। यह बस अभी और यहीं है। और अगर हम दूसरी आंतरिक प्रक्रियाओं के प्रति सजग हो सकें तो विस्फोट घटित हो सकता है। यह पहले से ही पास में है यह हमारे निकटतम है लेकिन हम बहुत दूर चले जाते हैं। यह ठीक हमारी बगल में है और हम लंबी तीर्थयात्रा पर जाते हैं। यह सदा हमारा छाया की भांति अनुगमन करता है, लेकिन हम इसे कभी नहीं देखते, क्योंकि हमारी आंखें दूर पर लगी हैं। हमारी आंखें बहुत दूर देख रही हैं। हम सदा दूर की कामना किए रहते हैं।

अगर व्यक्ति होना हो जाता है, और इच्छा मिट जाती है, जीवन वर्तमान में होना बन जाना चाहिए। लाओत्सु का एक वचन है : 'खोजो और तुम खो दोगे। मत खोजो और पा लो। 'वह जो खोजता है दूर चला जाता है। वह व्यक्ति जो है और खोज नहीं रहा है पास में ही पा लेता है। 'पास में भी' कहना असंगत है, क्योंकि पास में भी दूरी है। यह मैं है, पड़ोसी भी नहीं है, बल्कि खुद घर का मालिक है। पड़ोसी भी दूरी पर है। यह आतिथेय है। और आतिथेय बाहर चला गया है।

आज इतना ही

दसवां प्रवचन

सत्यम्, शिवम्, सुंदरम् दिव्यता के झरोखे

ओशो भारतीय दर्शन में परम सत्य की प्रकृति को सत्य 'सत्यम् सौंदर्य सुंदरम: और शुभपन 'शिवम्' के रूप में परिभाषित किया गया है। क्या ये भगवत्ता के लक्षण हैं?

ये भगवत्ता के गुण नहीं हैं। बल्कि हमारे द्वारा किए गए इसके अनुभव हैं। वे गुण जैसे कि वे हैं उस तरह भगवत्ता से संबद्ध नहीं हैं, वे हमारी अनुभूतियां हैं। भगवत्ता स्वयं में अज्ञेय है। या तो प्रत्येक गुण इसी का है या कोई गुण इसका नहीं है। लेकिन मानवीय मन का निर्माण जिस तरह से हुआ है यह भगवत्ता को तीन झरोखों के माध्यम से अनुभव कर सकता है तुम उसकी झलक या सौंदर्य के माध्यम से या सत्य के माध्यम से या शुभ के माध्यम से पा सकते हो। मनुष्य के मन के ये ही तीन आयाम हैं। ये हमारी सीमाएं हैं। ढांचा हमारे द्वारा दिया गया है भगवत्ता अपने आप में रूप के परे है।

यह इस तरह से है। हम आकाश को खिड़की के माध्यम से देख सकते हैं।

खिड़की आकाश के चारों ओर एक चौखटे की भांति दिखाई पड़ती है लेकिन आकाश के चारों ओर कोई चौखटा नहीं है। यह अनंत है। केवल खिड़की ही इसे चौखटा दे देती है। इसी प्रकार से सौंदर्य सत्य और शुभ तीन झरोखे हैं जिनसे हम भगवत्ता की झलक पा सकते हैं।

मनुष्य का व्यक्तित्व तीन पर्तों में बंटा हुआ है। अगर बुद्धि अधिक प्रभावी हो तो भगवत्ता सत्य का रूप ग्रहण कर लेती है। बौद्धिक रुझान सत्य का झरोखा सत्य का चौखटा निर्मित करती है। अगर मन भावुक है- अगर कोई वास्तविकता की ओर सिर से नहीं बल्कि हृदय के माध्यम से आता है-तो भगवत्ता सौंदर्य बन जाती है। काव्यात्मक गुण तुम्हारे द्वारा दिया गया है। यह बस चौखटा है। बुद्धि सत्य का चौखटा देती है भाव इसे सौंदर्य का चौखटा देता है। और अगर व्यक्तित्व न भावुक हो न बौद्धिक- अगर कर्म प्रभावी हो- तो यह चौखटा शुभ बन जाता है।

इसलिए यहां भारत में हम भगवत्ता के लिए इन तीन शब्दों का प्रयोग करते हैं। भक्ति योग का अभिप्राय है भक्ति का मार्ग और यह भावुक प्रकार के व्यक्ति के लिए है। भगवत्ता को सौंदर्य की भांति देखा गया है। ज्ञान योग शान का मार्ग है। भगवत्ता को सत्य की भांति देखा गया है। और कर्म योग कर्म का मार्ग है। भगवत्ता शुभ है।

गॉड शब्द भी 'गुड' से आता है। इस शब्द का अधिकतम प्रभाव रहा है क्योंकि अधिकतम मानवता, मुख्यत: कर्मप्रधान है, न बौद्धिक न भावुक। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि वहां पर कोई बुद्धि या भाव नहीं है, वरन वे प्रभावशाली कारक नहीं हैं। बहुत कम लोग बौद्धिक हैं और बहुत कम लोग भावुक हैं। मानव-जाति की अधिक संख्या मुख्यत: कर्म प्रधान है। कर्म के माध्यम से गॉड 'गुड' (शुभ) बन जाता है।

लेकिन विपरीत ध्रुव का भी अस्तित्व होना चाहिए इसलिए अगर ईश्वर को 'शुभ' के रूप में देखा गया है, तो शैतान को 'अशुभ' के रूप में समझा जाएगा। क्रियाशील मन शैतान को ' अशुभ ' की भांति देखेगा, भावुक मन शैतान को कुरूप की भांति देखेगा और बौद्धिक मन शैतान को असत्य भ्रम की भांति देखेगा।

ये तीनों विशेषताएं-सत्य शुभ और सौंदर्य, मानवीय श्रेणियां हैं, जो उसने दिव्यता के चारों ओर बना दी है जोकि अपने आप में निराकार है। वस्तुत: वे भगवत्ता की विशेषताएं नहीं हैं। अगर मनुष्य का मन भगवत्ता को

किसी चौथे आयाम से देख सके तो यह चौथा आयाम भी भगवत्ता का गुण बन जाएगा। मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि भगवत्ता शुभ नहीं है। मैं तो केवल यह कह रहा हूं यह शुभ एक गुण है जो हमारे द्वारा चुना और देखा गया है। अगर संसार में मनुष्य का अस्तित्व न होता तो भगवत्ता शुभ नहीं होती तो भगवत्ता सौंदर्यवान नहीं होती तो भगवत्ता सत्य नहीं होती। भगवत्ता जैसी है वैसी ही होती, लेकिन ये गुण जो कि हमारे द्वारा चुने गए हैं उसमें नहीं होते। ये बस मानवीय दृष्टियां हैं। हम भगवत्ता में अन्य गुणों को भी देख सकते हैं।

हम नहीं जानते कि पशु दिव्यता को किस प्रकार से देखा करते हैं। हमें नहीं पता कि वे चीजों को किस तरह से अनुभव करते हैं, लेकिन एक बात तो निश्चित है कि वे दिव्यता को मानवीय शब्दावली में नहीं समझेंगे। अगर वे दिव्यता को किसी भी रूप में देखते हैं तो वे इसको हमारे ढंग से नितांत अलग ढंग से समझेंगे और जानेंगे। दिव्यता के जो गुण वे समझेंगे वे वही नहीं होंगे जो हमारे लिए हैं।

अगर कोई व्यक्ति मुख्यत: बौद्धिक है, तो वह यह कल्पना भी नहीं कर सकता कि तुम कैसे कह सकते हो कि भगवत्ता सुंदर है। उसके मन के लिए यह धारणा ही बिलकुल बाहरी है। और कोई कवि यह कल्पना भी नहीं कर सकता कि सत्य का सौंदर्य के अतिरिक्त कोई और भी अर्थ हो सकता है। उसके लिए इसका कोई और अर्थ नहीं हो सकता। सत्य सौंदर्य है, बचा हुआ सभी कुछ बस बौद्धिक है। किसी कवि के लिए, किसी चित्रकार के लिए, उस व्यक्ति के लिए जो संसार को हृदय की भावनाओं से समझता है, सौंदर्य के बिना सत्य एक नग्न वस्तु है। यह मात्र एक बौद्धिक व्यवस्था है।

इसलिए अगर कोई विशेष मन मुख्यत: बौद्धिक है तो यह भावुक मन को नहीं समझ सकता है और इसका उलटा भी सच है। यही कारण है कि इतनी अधिक गलत फहमियां और इतनी सारी परिभाषाएं हैं। सारी मनुष्य-जाति द्वारा कोई एक परिभाषा स्वीकार नहीं की जा सकती है। भगवत्ता को तुम्हारे पास तुम्हारी खुद की शब्दावली में आना चाहिए। जब तुम भगवत्ता को परिभाषित करते हो, तो तुम उस परिभाषा का एक हिस्सा हो जाओगे। वह परिभाषा तुम से आएगी, अपने आप में तो वह अपरिभाष्य है। इसलिए उन लोगों ने, जो इस को इन तीन झरोखों के द्वारा देखते हैं, एक प्रकार से अपने आप को, अपनी निजी परिभाषाओं को दिव्यता के ऊपर थोप दिया है।

दिव्यता को देखने के लिए उस व्यक्ति के पास एक चौथे रास्ते की भी संभावना है जिसने अपने व्यक्तित्व के इन तीन आयामों का अतिक्रमण कर लिया है। भारत में हमारे पास चौथे के लिए कोई शब्द नहीं है। हम इसको बस तुरीय, चौथा कहते हैं। चेतना की एक ऐसी अवस्था होती है जहां पर तुम न तो बौद्धिक होते हो न भावुक न सक्रिय, बल्कि मात्र चैतन्य होते हो। तब तुम आकाश को किसी खिड़की के द्वारा नहीं देख रहे हो। तुम अपने मकान से बाहर आ गए हो और तुम खिड़की रहित आकाश को जानते हो। वहां पर कोई ढांचा कोई चौखटा नहीं है।

केवल उसी प्रकार की चेतना जिसने चौथे को जान लिया है, अन्य तीनों की सीमाओं को समझ सकती है। यह दूसरों के द्वारा समझ पाने की कठिनाई को समझ सकती है और सौंदर्य, सत्य और शुभ में अंतर्निहित समानताओं को भी समझ सकती है। केवल चौथे प्रकार की चेतना ही समझ सकती है और सहन कर सकती है। अन्य तीनों प्रकार के लोग सदा झगड़ते रहेंगे।

सारे धर्म इन तीनों श्रेणियों में से किसी एक से संबंधित हैं। और वे सदा से झगड़ते आए हैं। बुद्ध इस संघर्ष में भाग नहीं ले सकते। वे चौथे प्रकार से संबंधित हैं। वे कहते हैं ' यह सब मूर्खता है। तुम दिव्यता के गुणों के बारे में नहीं झगडू रहे हो, तुम अपनी खिड़कियों के बारे में झगड़ रहे हो। किसी भी खिड़की से देखा गया हो परंतु आकाश तो वही है। '

इसलिए ये दिव्यता के गुण नहीं हैं। ये दिव्यता के वे गुण हैं जैसा कि हमने उनको अनुभव किया है। अगर हम खिड़कियां नष्ट कर सकें तो हम भगवत्ता को गुण-विहीन, निर्गुण के रूप में जान सकते हैं। तब हम गुणों के पार जा सकते हैं। केवल तब उसके बारे में मनुष्य द्वारा बनाई गई छवि का हस्तक्षेप नहीं रहता है।

लेकिन तब कुछ भी कहना बहुत कठिन हो जाता है। दिव्यता के बारे में जो कुछ भी कहा जा सकता है वह केवल झरोखों के माध्यम से कहा जा सकता है क्योंकि जो कुछ भी कहा जा सकता है वह वास्तव में झरोखों के बारे में कहा जा रहा है इस आकाश के बारे में नहीं। जब हम झरोखों के पार से देखते हैं तो आकाश इतना विराट, इतना असीम है कि इसे परिभाषित नहीं किया जा सकता है। सारे शब्द असमर्थ हैं सारे सिद्धांत अपर्याप्त हैं।

इसलिए वह व्यक्ति जो चौथे में है, सदा इसके बारे में मौन रहता है, और दिव्यता की परिभाषाएं पहले तीनों से आई हैं। इसलिए वह व्यक्ति जो चौथे में है, अगर बोला भी है, तो उसने जो कुछ भी कहा है वह असंगत अतर्क्य, तर्कातीत प्रतीत होता है। वह अपना खंडन कर देता है। विरोधाभास के माध्यम से वह कुछ दिखाने का प्रयास करता है, कुछ कहने का नहीं, कुछ दिखाने का।

विटगिंस्टीन ने इस अंतर को स्पष्ट किया है। उसने कहा ऐसे सत्य हैं जो कहे जा सकते हैं, और ऐसे सत्य हैं जो दिखाए जा सकते हैं पर कहे नहीं जा सकते। किसी चीज को परिभाषित किया जा सकता है क्योंकि इसका अस्तित्व अन्य वस्तुओं के साथ है। इसका अन्य वस्तुओं के साथ संबंध स्थापित किया जा सकता है इसकी उनसे तुलना की जा सकती है। उदाहरण के लिए हम सदा कह सकते हैं कि एक मेज, कुर्सी नहीं है। किसी अन्य के संदर्भ में हम इसकी परिभाषा कर सकते हैं। इसकी एक सीमा है, जहां तक यह फैली हुई है, और उसके बाद कुछ और शुरू हो जाता है। वास्तव में केवल सीमा को परिभाषित किया गया है। परिभाषा का अर्थ है वह सीमा जहां से अन्य सभी कुछ शुरू हो जाता है।

लेकिन हम दिव्यता के बारे में कुछ नहीं कह सकते हैं। दिव्यता सभी कुछ है इसलिए वहां पर कोई सीमा नहीं है, वहां पर ऐसा कोई सीमांत नहीं है जहां से और कुछ शुरू होता हो। वहां पर कोई और कुछ नहीं है। दिव्यता सीमा-विहीन है इसलिए इसे परिभाषित नहीं किया जा सकता है।

चौथे प्रकार का व्यक्ति केवल दिखा सकता है यह बस संकेत कर सकता है। यही कारण है कि चौथे प्रकार का व्यक्ति रहस्यपूर्ण रहा है। और चौथे प्रकार का व्यक्ति ही सर्वाधिक प्रमाणिक है, क्योंकि वह मानवीय दृष्टियों द्वारा रंगा नहीं गया है। सारे महान संतों ने संकेत दिए हैं, उन्होंने कुछ कहा नहीं है। भले ही वे जीसस, बुद्ध, महावीर या कृष्ण हों, इससे कोई भेद नहीं पड़ता है। वे कुछ कह नहीं रहे हैं, वे तो बस किसी चीज की ओर इंगित कर रहे हैं–बस चंद्रमा की ओर संकेत करती एक अंगुली।

लेकिन ऐसी कठिनाई सदा से रही है कि तुम अंगुली से आसक्त हो जाओ। यह अंगुली अर्थहीन है, यह किसी और की ओर संकेत कर रही है। तुम्हारी आंख को इसे पकड़ नहीं लेना चाहिए। अगर तुम चांद की ओर देखना चाहते हो, तो अंगुली को पूरी तरह से भूल जाना पड़ेगा।

जहां तक दिव्यता का संबंध है, यही महानतम कठिनाई रही है। तुम संकेत को देखते हो और तुम महसूस करते हो कि यह संकेत स्वयं ही सत्य है। तब सारा प्रयोजन नष्ट हो जाता है। अंगुली चंद्रमा नहीं है, वे पूरी तरह से अलग हैं। चंद्रमा को अंगुली के माध्यम से दिखाया जा सकता है, लेकिन व्यक्ति को अंगुली से चिपकना नहीं चाहिए। अगर कोई ईसाई बाइबिल को न भूल पाए, अगर कोई हिंदू गीता को न भूल पाए, तो सारा प्रयोजन नष्ट हो जाता है। सारी बात उद्देश्य विहीन, अर्थहीन और एक प्रकार से अधार्मिक, धर्म-विरोधी हो जाती है।

जब भी कोई व्यक्ति दिव्यता की ओर उन्मुख होता है तो उसे अपने मन के प्रति बोधपूर्ण होना चाहिए। अगर कोई व्यक्ति दिव्यता की ओर मन के माध्यम से उन्मुख होता है तो दिव्यता इस मन के द्वारा रंग दी जाती है। अगर तुम दिव्यता की ओर बिना मन के बिना तुम्हारे बिना मनुष्य को भीतर लिए उन्मुख होते हो अगर तुम दिव्यता की ओर एक खालीपन की भांति, एक शून्य की भांति एक ना-कुछपन की तरह किसी पूर्व धारणा के बिना चीजों को एक खास ढंग से देखने के रुझान के बिना उन्मुख होते हो तो तुम दिव्यता की गुणों के पार की अवस्था को जान लोगे वरना नहीं। वरना वे सभी गुण जो हम दिव्यता को दे देते हैं हमारी मानवीय खिड़कियों से संबंधित हैं। हम दिव्यता पर उनको थोप देते हैं।

क्या आप यह कह रहे हैं कि आकाश को देखने के लिए हमें खिडकी का प्रयोग करने की कोई जरूरत नहीं है?

हां। बिलकुल न देखने की तुलना में खिड़की के द्वारा देख लेना बेहतर है, लेकिन खिड़की से देखने की तुलना खिड़की विहीन आकाश से नहीं की जा सकती है।

लेकिन कोई खिड़की के बिना कमरे से आकाश की ओर कैसे जा सकता है?

आकाश की ओर जाने के लिए तुम खिड़की से होकर गुजर सकते हो लेकिन तुम्हें खिड़की पर रुके नहीं रहना चाहिए। वरना खिड़की सदा वहां रहेगी। खिड़की को पीछे छूट जाना चाहिए। इससे होकर गुजरना पड़ेगा और इसे पीछे छोड़ कर आगे बढ़ना पड़ेगा।

एक बार कोई आकाश में हो तो वहां कोई शब्द नहीं होते–जब तक कि वह कमरे में वापस नहीं लौटता। तब कहानी आ जाती है...

हां व्यक्ति वापस लौट सकता है। लेकिन तब वह वैसा ही नहीं हो सकता है जैसा कि वह पहले था। उसने अरूप को अनंत को जान लिया है। तब खिड़की से देखते हुए भी वह जानता है कि आकाश की कोई रूपरेखा नहीं है, वह खिड़की जितना नहीं है। खिड़की के पीछे खड़ा होकर भी वह धोखा नहीं खा सकता है। अगर खिड़की को बंद कर दिया जाए और कमरा अंधकारमय हो जाए तो भी वह जानता है कि अनंत आकाश वहां पर है। अब वह फिर से वही नहीं हो सकता है।

एक बार तुमने अनंत को जान लिया, तो तुम अनंत हो गए हो। हम वही हैं जो हमने जाना है, जो हमने अनुभव किया है। एक बार तुमने बंधन रहित, सीमा रहित को जान लिया तो एक प्रकार से तुम अनंत हो गए हो। किसी चीज को जान लेना वही हो जाना है। प्रेम को जानना, प्रेम हो जाना है प्रार्थना की भावदशा को जानना, प्रार्थनामय जाना है दिव्यता को जान लेना दिव्य हो जाना है। जानना साक्षात करना है, जानना हो जाना है।

क्या सभी तीनों खिड़कियां एक हो जाती हैं?

नहीं। प्रत्येक खिड़की वैसी ही रहेगी जैसी यह थी। खिड़की नहीं बदली है तुम बदल गए हो। अगर व्यक्ति भावुक है, तो वह उसी खिड़की के माध्यम से बाहर जाएगा और भीतर आएगा, किंतु अब वह दूसरी खिड़कियों से इनकार नहीं करेगा अब वह उनके प्रति शत्रुता पूर्ण नहीं होगा। अब वह दूसरों के प्रति भी समझ से भरा होगा। वह जान लेगा कि दूसरी खिड़कियां भी उसी आकाश में ले जाती हैं।

एक बार तुम आकाश के नीचे जा खड़े हुए, तो तुम जान लेते हो कि दूसरी खिड़कियां भी उसी घर का हिस्सा हैं। अब तुम दूसरी खिड़कियों तक जा सकते हो या नहीं भी जा सकते हो। यह तुम पर निर्भर करता है। तुम्हें जरूरत नहीं है एक खिड़की पर्याप्त है। अगर कोई व्यक्ति रामकृष्ण की भांति है तो वह यह देखने के लिए कि क्या वही आकाश उनके द्वारा भी दिखता है, अन्य खिड़कियों से भी होकर गुजर सकता है! यह उस व्यक्ति पर निर्भर करता है। कोई दूसरी खिड़कियों से होकर भी देख सकता है या नहीं भी देख सकता है।

और वास्तव में इसकी कोई जरूरत नहीं है। आकाश को जानना पर्याप्त है। लेकिन कोई खोज-बीन कर सकता है जिज्ञासु हो सकता है। तब वह अन्य खिड़कियों द्वारा देखेगा। ऐसे लोग हुए हैं जिन्होंने अलग- अलग खिड़कियों से झांक कर देखा है और ऐसे भी हैं जिन्होंने ऐसा नहीं किया है। लेकिन एक बार किसी व्यक्ति ने खुला आकाश जान लिया हो तो वह अन्य खिड़कियों से इनकार नहीं करेगा वह अन्य रास्तों से इनकार नहीं करेगा। वह सुनिश्चित कर देगा कि उनकी खिड़कियां भी उसी आकाश की ओर खुलती हैं। इसलिए वह व्यक्ति जिसने आकाश को जाना धार्मिक हो जाता है सांप्रदायिक नहीं। सांप्रदायिक मन खिड़की के पीछे ही रहता है धार्मिक मन खिड़की के उस पार होता है।

वह व्यक्ति जिसने आकाश को देख लिया है, भ्रमण कर सकता है वह अन्य खिड़कियों पर भी जा सकता है। अनंत खिड़कियां हैं। ये मुख्य प्रकार हैं लेकिन ये ही एकमात्र खिड़कियां नहीं हैं। बहुत से संयोजन संभव हैं।

क्या हर चेतना के लिए हर व्यक्ति के लिए अलग खिडकी है?

हां। एक प्रकार से हर व्यक्ति दिव्यता तक अपनी निजी खिड़की से ही पहुंचता है। और हर खिड़की अन्य किसी दूसरी से मुलत: भिन्न है। अनंत खिड़कियां हैं, अनंत पंथ हैं। हर व्यक्ति का अपना निजी पंथ होता है। दो ईसाई समान नहीं हैं। एक ईसाई दूसरे से इतना अधिक भिन्न हो सकता है जितनी कि हिंदू धर्म से ईसाईयत भिन्न है।

एक बार तुम आकाश तक आ गए तो तुम जानते हो कि सारी भिन्नताएं घर से संबंधित हैं। वे तुमसे कभी संबद्ध नहीं थीं। वे उस घर से संबंधित हैं जिस में तुम रहे हो जिससे तुमने देखा जिसके द्वारा तुमने अनुभव किया है लेकिन वे तुमसे कभी संबद्ध नहीं थीं।

जब तुम आकाश के नीचे आते हो, तो तुम जान लेते हो कि तुम भी आकाश का एक हिस्सा थे–बस दीवालों में रह रहे थे। घर के भीतर का आकाश, घर के बाहर के आकाश से भिन्न नहीं है। एक बार हम बाहर आ जाएं तो हमें पता लग जाता है कि रुकावटें वास्तविक नहीं थीं। यहां तक कि कोई दीवाल भी आकाश के लिए रुकावट नहीं है, इसने आकाश को किसी भी तरह से बांटा नहीं है। इससे ऐसा आभास निर्मित हो जाता है कि आकाश बंट गया है–कि यह मेरा मकान है और वह मकान तुम्हारा है, कि जो आकाश मेरे मकान में है वह मेरा है, और जो आकाश तुम्हारे मकान में है वह तुम्हारा है–लेकिन एक बार तुमने आकाश को जैसा यह है वैसा ही जान लिया, तो कोई अंतर नहीं रहता। तब वहां व्यक्ति नहीं बचते हैं। तब लहरें खो जाती हैं और केवल सागर बचता है। तुम फिर से घर के भीतर लौट आओगे, लेकिन अब तुम आकाश से अलग नहीं होगे।

ऐसा लगता है कि कुछ ईसाई हुए हैं जो आकाश में गए और इस धारणा के साथ वापस आए?

कुछ हैं–संत फ्रांसिस, इकहार्ट, बोहमे.....

उन्होंने हमें नहीं बताया कि यह वही आकाश था क्या उन्होंने बताया?

वे नहीं बता सकते थे। आकाश हमेशा से वही है, लेकिन वे एक ही ढंग से आकाश के बारे में नहीं बता सकते हैं। आकाश के बारे में सूचनाएं तो अलग होंगी ही, लेकिन जिसकी सूचना दी जा रही है वह अलग नहीं है। उन लोगों के लिए जिन्होंने बताई गई चीज के बारे में स्वयं कुछ भी न जाना हो यह सूचना ही सभी कुछ होगी। तब अंतर और भी स्पष्ट हो जाते हैं। लेकिन वह सभी कुछ जो सूचित किया गया है मात्र एक चयन है, एक चुनाव है। समग्रता को नहीं कहा जा सकता, समग्रता के एक हिस्से के बारे में ही बताया जा सकता है। और जब इसके बारे में बता दिया जाता है, तो यह मृत हो जाता है।

संत फ्रांसिस वैसी ही सूचना दे सकते हैं जैसी कि एक संत फ्रांसिस दे सकता है। वे मोहम्मद की भांति सूचना नहीं दे सकते क्योंकि सूचना आकाश से नहीं आती है। यह सूचना व्यक्तित्व से, उसके रंग ढंग से आती है। यह मन से आती है : स्मृति, शिक्षा, अनुभवों से आती है, यह शब्दों से, भाषा, संप्रदाय, जीवन-शैली से आती है। इन सभी से सूचना आती है। यह संभव नहीं है कि सिर्फ संत फ्रांसिस से ही संवाद आए, क्योंकि सूचना कभी निजी नहीं हो सकती है। इसे संप्रेषण के योग्य होना चाहिए वरना यह पूरी तरह से असफल हो जाएगी।

अगर मैं अपनी निजी भाषा में बताऊं तो कोई इसे नहीं समझेगा। जब मैंने आकाश को अनुभव किया था तो मैंने इसे समाज के बिना अनुभव किया था। जानने के उस क्षण में मैं बिलकुल अकेला था। वहां कोई भाषा नहीं थी वहां पर कोई शब्द नहीं थे। लेकिन जब मैं सूचना देता हूं तो मैं उनको सूचित करता हूं जिन्होंने जाना नहीं है। मुझे उनकी भाषा में बोलना चाहिए। मुझे ऐसी भाषा का उपयोग करना चाहिए जो कि अपने ज्ञान से पहले मुझको पता थी।

संत फ्रांसिस ईसाई भाषा का उपयोग करते हैं। जहां तक मेरा संबंध है, धर्म केवल विभिन्न भाषाएं ही हैं। मेरे लिए ईसाईयत वह विशिष्ट भाषा है जो जीसस क्राइस्ट से निकली है। हिंदू धर्म एक दूसरी भाषा है, बौद्धधर्म एक दूसरी भाषा है। अंतर हमेशा भाषा का है। लेकिन अगर कोई केवल भाषा को जानता है और उसने अनुभव को अपने आप में नहीं जाना है, तो अंतर विशाल होगा ही।

जीसस ने कहा ' प्रभु का राज्य। ' क्योंकि वे उन शब्दों का उपयोग कर रहे थे जो वहां के सुनने वालों को समझ में आ सके। ' राज्य ' शब्द कुछ लोगों के द्वारा समझा गया और दूसरे लोगों द्वारा गलत समझा गया। तो क्रास आ गया और उनको सूली पर चढ़ाया गया। जिन लोगों ने जीसस को समझा था वे समझ गए कि 'प्रभु के राज्य' का क्या अभिप्राय है, लेकिन वे लोग जो नहीं समझे उन्होंने समझा कि वे पृथ्वी पर के किसी राज्य की बात कर रहे हैं।

लेकिन जीसस बुद्ध के शब्दों का उपयोग नहीं कर सकते थे। बुद्ध ने कभी राज्य शब्द का उपयोग नहीं किया। इस अंतर के बहुत से कारण हैं। जीसस एक गरीब परिवार से आते हैं, उनकी भाषा निर्धन व्यक्ति की भाषा है। निर्धन व्यक्ति के लिए राज्य शब्द बहुत भावों से भरा हुआ है लेकिन बुद्ध के लिए इस शब्द के बारे में

कुछ भी महत्वपूर्ण नहीं था, क्योंकि बुद्ध स्वयं एक राजकुमार थे। यह शब्द बुद्ध के लिए अर्थहीन था पर जीसस के लिए अर्थपूर्ण था।

बुद्ध भिक्षु बन गए और जीसस राजा बन गए। यह होना ही था। दूसरा छोर अर्थपूर्ण बन जाता है। वह अनजाना छोर अज्ञात के लिए अभिव्यक्ति का साधन बन जाता है। बुद्ध के लिए भीख मांगना सर्वाधिक अनजानी बात थी इसलिए उन्होंने अज्ञात का रूप, भिखारी का रूप ग्रहण कर लिया। उनके लिए मिक्स, भिखारी सर्वाधिक महत्वपूर्ण शब्द बन गया।

भारत में भिक्खु शब्द कभी प्रयोग नहीं किया गया था, क्योंकि यहां वैसे ही बहुत से भिखारी हैं। इसके स्थान पर हमने स्वामी, मालिक शब्द का प्रयोग किया था। जब कोई संन्यासी हो जाता है, जब वह त्याग कर देता है, तो वह स्वामी, मालिक बन जाता है। लेकिन जब बुद्ध ने त्याग किया तो वे एक भिक्खु एक भिखारी बन गए। बुद्ध के लिए इस शब्द में कुछ ऐसा था जो इस शब्द में जीसस के लिए नहीं हो सकता था।

जीसस केवल उन्हीं शब्दों में बोल सकते थे जो यहूदी संस्कृति से लिए गए थे। उन्होंने इसमें थोड़ा बहुत इधर उधर परिवर्तन किया, लेकिन पूरी भाषा को वे नहीं बदल सके वरना उनकी बात को कोई भी समझ नहीं पाता। इसलिए एक अर्थ में वे ईसाई नहीं थे। जिस समय तक संत फ्रांसिस का आगमन हुआ, अपनी निजी भाषा के साथ एक ईसाई संस्कृति विकसित हो चुकी थी। इसलिए खुद क्राइस्ट की तुलना में संत फ्रांसिस अधिक ईसाई थे। क्राइस्ट एक यहूदी बने रहे, उनका सारा जीवन यहूदीपन का था। यह और कुछ हो भी नहीं सकता था।

अगर तुम एक जन्मजात ईसाई हो, तो ईसाइयत तुम्हारे लिए भावपूर्ण नहीं हो पाएगी, शायद यह तुम्हें छू भी न सके। तुमने इसे जितना अधिक जाना है, यह उतनी ही अधिक अर्थहीन हो जाती है। रहस्य खो जाता है। ईसाई के लिए हिंदू दृष्टिकोण अधिक अर्थपूर्ण, अधिक महत्वपूर्ण लग सकता है। क्योंकि यह अनजाना है यह अज्ञेय के लिए अभिव्यक्ति हो सकता है।

जहां तक मेरा संबंध है, यह बेहतर होगा कि व्यक्ति अपने जन्म के धर्म के साथ न बना रहे। जन्म के समय उसे जो अभिवृत्तियां और विश्वास दिए गए हैं उन्हें कभी न कभी इनकार करना पड़ता है वरना साहसिक यात्रा कभी आरंभ नहीं होगी। व्यक्ति को वहीं नहीं बने रहना चाहिए जहां उसका जन्म हुआ था। व्यक्ति को अनजाने छोरों तक जाना चाहिए और उसका आनंद अनुभव करना चाहिए।

कभी-कभी हम उसी बात को नहीं समझ पाते हैं जिसे हम सोचते हैं कि हमने सबसे अधिक समझा हुआ है। एक ईसाई सोचता है कि वह ईसाईयत को समझता है। यही रुकावट बन जाता है। एक बौद्ध सोचता है कि वह बौद्ध धर्म को समझता है क्योंकि वह इसको जानता है लेकिन जानने का यही भाव एक रुकावट बन जाता है। केवल अज्ञात ही चुंबकीय, गुप्त रहस्यमय बन सकता है।

व्यक्ति को अपनी जन्मजात परिस्थितियों का अतिक्रमण कर लेना चाहिए। यह मात्र परिस्थिति से हुआ है कि कोई जन्म से ईसाई है। यह मात्र परिस्थिति से हुआ है कि कोई जन्म से हिंदू है। व्यक्ति को अपने जन्म के संस्कारों से बंध कर नहीं रहना चाहिए। जहां तक धर्म का संबंध है उसे दुबारा जन्म लेना चाहिए। व्यक्ति को अनजाने छोरों तक जाना चाहिए। तब वहां रोमांच होता है। अन्वेषण का आरंभ होता है।

धर्म एक अर्थ में एक-दूसरे के पूरक हैं। उन्हें एक दूसरे के लिए कार्य करना चाहिए, उन्हें दूसरे धर्मों को स्वीकार करना चाहिए। एक ईसाई या एक हिंदू या एक यहूदी को धर्मांतरण के रोमांच को जानना चाहिए। धर्मांतरण का यह रोमांच रूपांतरण के लिए पृष्ठभूमि का निर्माण करता है। जब कभी पश्चिम से कोई व्यक्ति पूरब को आता है तो इसमें कुछ नयापन है। पूरब का दृष्टिकोण इतना भिन्न है कि इसको जानी पहचानी श्रेणियों

में नहीं रखा जा सकता है। सारा दृष्टिकोण तुम जिससे परिचित हो उससे इतना अलग है कि अगर तुम इसे समझना चाहो तो तुम्हें खुद अपने आपको ही बदलना पड़ जाएगा।

यही घटना उस व्यक्ति के साथ घटती है जो पूरब से पश्चिम को जाता है– इसे घटना ही चाहिए। व्यक्ति को खुला होना चाहिए जिससे कि यह घट सके। यह अज्ञात अपरिचित ही है जो परिवर्तन निर्मित करेगा।

भारत में हम ईसाइयत जैसा धर्म निर्मित नहीं कर सके। हम धर्मशास्त्र निर्मित नहीं कर सके। हम वेटिकन चर्च निर्मित नहीं कर सके। यहां पर मंदिर हैं लेकिन कोई चर्च नहीं है। पूरब का मन आधारभूत रूप से तर्कातीत है। इसलिए एक अर्थ में यह अराजक होगा ही। यह व्यक्तिगत होने के लिए बाध्य है, यह संगठनात्मक नहीं हो सकता है।

एक कैथोलिक पादरी होना बहुत अलग बात है। उसे एक संगठन का भाग होने के लिए प्रशिक्षित किया गया है। वह किसी स्तर पर धर्मसत्ता की श्रेणियों से जुड़ा हुआ है। और यह कार्य करता है। एक व्यवस्था, एक श्रेणीयुक्त धर्मसत्ता तर्कयुक्त है इसलिए ईसाइयत सारे विश्व में फैल पाने में समर्थ हो पाई।

हिंदू धर्म ने कभी किसी की आस्था को बदलने की कोशिश नहीं की। अगर किसी ने अपने आप को बदल भी लिया तो हिंदू धर्म को उसके साथ सहज नहीं लगता है। यह धर्म परिवर्तन न करने वाला, संगठन विहीन धर्म है। जिन अर्थों में कैथोलिक धर्म में पुरोहितवाद है ऐसा पुरोहितवाद इसमें नहीं है। हिंदू साधु बस एक घुमक्कड़ व्यक्ति है–बिना किसी धर्मसत्ता के बिना किसी व्यवस्था से जुड़े हुए। वह आत्यंतिक रूप से जड़-विहीन है। जहां तक बाहरी संसार का संबंध है यह रंगा-ढंग असफल होना ही है, लेकिन जहां तक व्यक्ति का संबंध है, जहां तक भीतरी गहराई का संबंध है, इसे सफल होना ही है।

विवेकानंद ईसाइयत से बहुत आकर्षित थे। उन्होंने रामकृष्ण-मिशन की व्यवस्था कैथोलिक पादरियों की प्रणाली पर आधारित की। पूरब के लिए यह बहुत अपरिचित, बहुत बाहरी है। यह पूरी तरह से पश्चिमी है। विवेकानंद का मन जरा भी पूरब का नहीं है। और जैसे कि मैं कहता हूं कि विवेकानंद पश्चिमात्य थे उसी तरह से मैं कहता हूं कि इकहार्ट और संत फ्रांसिस पूरब के थे। मूलत: वे पूरब से जुड़े हुए थे।

जीसस खुद भी पूरब से जुड़े हुए थे। लेकिन ईसाइयत पूरब से नहीं जुड़ी है यह पश्चिम से जुड़ी हुई है। जीसस मूलत: पूरब के थे वे चर्च-विरोधी संगठन-विरोधी थे। यही तो संघर्ष था।

पश्चिमी मन तर्क कारण, व्यवस्था युक्ति के रूप में सोचता है। यह बहुत गहरा नहीं जा सकता है यह सतह पर ही रहेगा। यह बहिर्गामी होगा अंतर्गामी कभी नहीं होगा।

तो संगठित धर्म हमारे लिए पर्दा हैं। उन्हें विदा होना पड़ेगा जिससे कि हम आकाश को देख सकें?

हां, वे खिड़की को ढ़के हुए हैं। वे रुकावटें हैं।

क्या पश्चिमी मन को पूरब की तरह विस्तीर्ण होना पड़ेगा?

जहां तक विज्ञान का संबंध है, पश्चिमी मन सफल हो सकता है, लेकिन धार्मिक चेतना में यह सफल नहीं हो सकता है। जब कभी किसी धार्मिक मन का जन्म होता है, भले ही यह पश्चिम में हो, वह पूरब का है। इकहार्ट में, बोहेमे में, मन की गुणवत्ता पूरब की है। और पूरब में जब कभी कोई वैज्ञानिक मन जन्म लेता है यह पश्चिम का होने के लिए बाध्य है। पूरब और पश्चिम भौगोलिक स्थितियां नहीं हैं। पश्चिम का अभिप्राय है, अरस्तुवादी

और पूरब का अभिप्राय है गैर-अरस्तुवादी। पश्चिम का अर्थ है साम्य और पूरब का अर्थ है अ-साम्य। पश्चिम का अर्थ है तार्किक और पूरब का अर्थ है अतार्किक। तुलियन पश्चिम के सर्वाधिक पूर्वीय मनों में से एक था। उसने कहा 'मैं ईश्वर में विश्वास करता हूं क्योंकि विश्वास करना असंभव है। मैं ईश्वर में विश्वास करता हूं क्योंकि यह असंगत है।' यह पूरब का मूलभूत दृष्टिकोण है 'क्योंकि यह असंगत है। पश्चिम में कोई इसे नहीं कह सकता है। पश्चिम में वे कहते हैं, तुम्हें किसी बात में केवल तब विश्वास करना चाहिए जब कि यह तर्कयुक्त हो। वरना यह बस एक विश्वास, एक वहम हैं।

इकहार्ट भी एक पूर्वीय मन है। वह कहता है : अगर तुम संभव में विश्वास करते हो तो यह कोई विश्वास नहीं है। अगर तुम तर्क में विश्वास करते हो तो यह कोई धर्म नहीं है। ये तो विज्ञान के हिस्से हैं। केवल अगर तुम असंगत में विश्वास करो, तो ही कुछ ऐसा जो मन के पार है तुम तक आता है। यह धारणा पश्चिम की नहीं है, यह पूरब की है। दूसरी ओर कनक्यूशियस एक पश्चिमी मन है। पश्चिम में वे लोग हैं जो कनक्यूशियस को समझ सके हैं लेकिन वे लाओत्सु को कभी नहीं समझ सकते हैं। लाओत्सु कहता है : ' तुम मूर्ख हो क्योंकि तुम केवल तर्कयुक्त हो। तर्कयुक्त होना, युक्तिपूर्ण होना पर्याप्त नहीं है। तर्कातीत को अस्तित्व के लिए अपना स्वयं का स्थान चाहिए। केवल अगर कोई व्यक्ति तर्कयुक्त और अतर्क्य दोनों है तभी वह उचित है।'

पूरी तरह से तर्कपूर्ण व्यक्ति कभी उचित नहीं हो सकता है। तर्क में अतर्क्य के अपने अंधेरे कोने होते हैं। बच्चे का जन्म अंधेरे गर्भ में होता है। फूल अंधेरे में, जमीन में छिपी जड़ों में जन्म लेता है। अंधेरे से इनकार नहीं किया जाना चाहिए, यह आधार है। यह सबसे अधिक महत्वपूर्ण, सबसे अधिक जीवन देने वाली चीज है।

पश्चिमी मन के पास संसार को देने के लिए कुछ है यह विज्ञान है धर्म नहीं। पूर्वीय मन केवल धर्म दे सकता है, टेक्नालॉजी या विज्ञान नहीं। विज्ञान और धर्म पूरक हैं। अगर हम उनकी भिन्नताओं और उनके पूरक होने को दोनों को जान सकें तो इससे एक बेहतर विश्व संस्कृति का जन्म हो सकता है।

अगर किसी को विज्ञान की जरूरत हो, उसे पश्चिम चले जाना चाहिए। लेकिन अगर पश्चिम कोई धर्म निर्मित करता है तो यह धर्मशास्त्र से अधिक कभी नहीं हो सकता। पश्चिम में तुम परमात्मा को सिद्ध करने के लिए अपने आप को तर्क देते हो। परमात्मा को सिद्ध करने के लिए तर्क! पूरब में यह अकल्पनीय है। तुम भगवत्ता को सिद्ध नहीं कर सकते हो। यह प्रयास ही अर्थहीन है। वह जिसको सिद्ध किया जा सके कभी परमात्मा नहीं होगा, यह एक वैज्ञानिक निष्पत्ति होगी। पूरब में हम कहते हैं दिव्यता को सिद्ध नहीं किया जा सकता है। जब तुम अपने प्रमाणों से ऊब जाओ, तब इस अनुभव में छलांग लगा दो स्वयं दिव्यता में छलांग लगा दो।

पूरब का मन केवल छद्म वैज्ञानिक हो सकता है ठीक वैसे ही जैसे कि पश्चिम का मन केवल छद्म धार्मिक हो सकता है। तुमने पश्चिम में एक महत धर्मशास्त्र निर्मित कर लिया है, धार्मिक परंपरा नहीं। ठीक इसी प्रकार से पूरब में जब कभी हम विज्ञान की ओर प्रयास करते हैं हम केवल टेक्नीशियंस निर्मित करते हैं वैज्ञानिक नहीं। 'कैसे करें' यह जानकारी रखने वाले लोग, कुछ नया करने वाले, सृजन करने वाले लोग नहीं।

इसलिए पश्चिमी मन के साथ पूरब मत आओ वरना तुम केवल गलत समझोगे। तब तुम अपनी गलत फहमी को अपनी समझ की भांति साथ लिए रहोगे। पूरब का दृष्टिकोण पूरी तरह से विपरीत है। केवल विपरीत ही पूरक होते हैं–स्त्री और पुरुष की भांति।

पूरब का मन स्त्रैण है, पश्चिम का मन पुरुष है। पश्चिम का मन आक्रामक है। तर्क को आक्रामक हिंसक होना पड़ता है। धर्म ग्रहणशील है, ठीक एक स्त्री की भांति। भगवत्ता को केवल ग्रहण किया जा सकता है, इसका कभी अन्वेषण या आविष्कार नहीं किया जा सकता है। व्यक्ति को स्त्री की भांति हो जाना पड़ता है पूरी तरह से ग्रहणशील, बस खुला हुआ और प्रतीक्षारत। यही है ध्यान का अभिप्राय– खुला और प्रतीक्षारत होना।

रामकृष्ण ने कहा था कि इस युग के लिए भक्ति-योग सर्वाधिक उचित मार्ग है। क्या ऐसा है?

नहीं। रामकृष्ण ने कहा था कि भक्ति-योग सर्वाधिक उचित मार्ग है क्योंकि उनके लिए यह सर्वाधिक उचित था। यही वह मौलिक खिड़की थी जिसके द्वारा वे आकाश के नीचे आए थे। यह किसी विशेष युग के लिए किसी मार्ग के उचित या अनुचित होने का सवाल नहीं है। हम युगों के हिसाब से नहीं सोच सकते हैं।

शताब्दियां समकालिकता में जी सकती हैं–हम इसी समय में जीते हुए प्रतीत हो सकते हैं ऐसा नहीं भी हो सकता है। हो सकता है कि मैं बीस शताब्दी पूर्व में जी रहा होऊं। कुछ भी आत्यंतिक रूप से अतीत नहीं है। किसी के लिए यह वर्तमान है। कुछ भी आत्यंतिक रूप से भविष्य नहीं है। किसी के लिए यह वर्तमान है। और कुछ भी आत्यंतिक रूप से वर्तमान भी नहीं है। किसी के लिए यह अतीत है और किसी के लिए यह अभी आने वाला है। इसलिए किसी युग के लिए इस तरह कोई सुनिश्चित वक्तव्य नहीं दिया जा सकता है।

रामकृष्ण एक भक्त थे। वे प्रार्थना और प्रेम के माध्यम से, भाव के माध्यम से भगवत्ता तक पहुंचे थे। उन्होंने उस ढंग से साक्षात किया था इसलिए उनको ऐसा लगा कि हर व्यक्ति के लिए यही सहायक हो सकता है। वे समझ नहीं सके कि दूसरों के लिए उनके वाला मार्ग कठिन कैसे हो सकता है। हम कितने भी सहानुभूतिपूर्ण क्यों न हों हम सदा दूसरों को अपने निजी अनुभवों के प्रकाश में देखते हैं। इसलिए रामकृष्ण के लिए यह भक्ति योग उपासना का मार्ग प्रतीत होता है।

अगर हम युगों के रूप में सोचना चाहें, तो हम कह सकते हैं कि यह युग सर्वाधिक बौद्धिक सर्वाधिक वैज्ञानिक सर्वाधिक तकनीकों का, सबसे कम भक्ति का सबसे कम भावात्मक युग है। रामकृष्ण जो कह रहे थे वह उनके लिए उचित था जो लोग उनके साथ थे उनके लिए भी उचित हो सकता है लेकिन रामकृष्ण कभी भी संसार के एक बड़े हिस्से को प्रभावित नहीं कर पाए। मूलत: वे गांव से, गैर-तकनीकी अवैज्ञानिक मन से जुड़े हुए थे। वे एक ग्रामीण थे–अशिक्षित, वृहत्तर संसार से अपरिचित–इसलिए उन्होंने जो कहा उसे उनकी ग्रामीण भाषा के अनुसार समझा जाना चाहिए। वे इन दिनों की कल्पना भी नहीं कर सकते थे जो अब हैं। वे मूल रूप से किसानों की दुनिया का हिस्सा थे जहां बुद्धि कुछ भी नहीं थी और भाव सभी कुछ था। वे इस युग के व्यक्ति भी नहीं थे। वे जो कुछ कह रहे थे वह उस जगत के लिए बिलकुल उचित था जिसमें वे रहते थे लेकिन इस संसार के लिए उचित नहीं है जो अब है।

ये तीन प्रकार सदा से रहे हैं बौद्धिक सक्रिय भावुक। इनके बीच सदा एक संतुलन रहेगा, बिलकुल वैसे ही जैसे कि पुरुषों और स्त्रियों के बीच एक संतुलन बना रहता है। यह संतुलन लंबे समय के लिए मिटता नहीं है। अगर यह खो जाता है तो जल्दी ही इसे दुबारा से उपलब्ध कर लिया जाएगा।

पश्चिम में तुम संतुलन खो चुके हो। बुद्धि सबसे अधिक प्रभावशाली बन चुकी है। यह तुम्हें आकर्षित लग सकता है कि रामकृष्ण कहते हैं 'इस युग के लिए भक्ति मार्ग है क्योंकि तुम संतुलन खो चुके हो। लेकिन विवेकानंद इससे उलटी बात कहते हैं। क्योंकि पूरब भी संतुलन खो चुका है वे मुख्यत: बौद्धिक व्यक्ति थे। यह बस वर्तमान अतियों को संतुलित करने के लिए है। यह एक अर्थ में पूरक है।

रामकृष्ण भावुक प्रकार के थे और उनका मुख्य शिष्य बौद्धिक प्रकार का था। उसे ऐसा होना ही था। यह जोड़ा बनाना है पुरुष और स्त्री। रामकृष्ण पूरी तरह से स्त्रैण थे अनाक्रामक ग्रहणशील। लिंग भेद केवल जीव-विज्ञान में ही नहीं होता यह हर स्थान पर होता है। प्रत्येक क्षेत्र में जहां ध्रुवीयता है वहां लिंग भेद है और विपरीत आकर्षित हो जाता है।

विवेकानंद कभी किसी बौद्धिक व्यक्ति से आकर्षित न हो पाए। वे हो ही नहीं सकते थे वे उनके ध्रुवीय विपरीत नहीं थे। बंगाल में असाधारण बौद्धिक लोग थे। वे उन लोगों से मिलने गए थे और खाली हाथ लौट आए थे। वे उनसे आकर्षित न हो सके। रामकृष्ण कम से कम संभव बौद्धिक व्यक्ति थे। वे वह सब-कुछ थे जो विवेकानंद नहीं थे वह सब-कुछ जिसको वे खोज रहे थे।

विवेकानंद रामकृष्ण से विपरीत थे इसलिए रामकृष्ण के नाम से उन्होंने जो पढ़ाया, वह वही नहीं था जो स्वयं रामकृष्ण की शिक्षा थी। इसलिए रामकृष्ण के पास जो विवेकानंद के माध्यम से आता है वह रामकृष्ण के पास जरा भी नहीं आता है। जो भी विवेकानंद के द्वारा दी गई रामकृष्ण की व्याख्या को समझता है, वह कभी स्वयं रामकृष्ण को नहीं समझ सकता। यह व्याख्या विपरीत ध्रुव से आ रही है।

जब लोग कहते हैं 'विवेकानंद के बिना हमने रामकृष्ण के बारे में कभी जाना भी न होता।' तो एक अर्थ में यह बात सही है। वृहत्तर संसार ने विवेकानंद के बिना रामकृष्ण के बारे में कभी न सुना होता। लेकिन विवेकानंद के साथ रामकृष्ण के बारे में जो भी जाना गया, मूलत: गलत है। यह मिथ्या व्याख्या है। ऐसा इसलिए है कि उनका प्रकार रामकृष्ण के प्रकार का बिलकुल उलटा है। रामकृष्ण ने कभी तर्क नहीं किया विवेकानंद तर्कशील थे। रामकृष्ण अज्ञानी थे विवेकानंद ज्ञानवान व्यक्ति थे। विवेकानंद ने रामकृष्ण के बारे में जो भी कहा वह विवेकानंद के दर्पण के माध्यम से कहा गया था। यह कभी प्रामाणिक नहीं था। यह प्रमाणिक हो भी नहीं सकता है।

ऐसा सदा से होता रहा है। यह होता रहेगा। बुद्ध उन लोगों को आकर्षित करते हैं जो उनसे विपरीत ध्रुव के हैं। महावीर और जीसस उन लोगों को आकर्षित करते हैं जो आध्यात्मिक रूप से विपरीत लिंग के हैं। ये विपरीत लोग उनके बाद संगठन, व्यवस्था का निर्माण करते हैं। ये लोग व्याख्या करेंगे। ये शिष्य ही गलत रूप में प्रस्तुतिकरण करेंगे।

लेकिन यह ऐसा ही है। इसमें कुछ किया नहीं जा सकता है।

आज इतना ही।

ग्यारहवां प्रवचन

सम्यक प्रश्न

सैद्धौर्तिक प्रश्न मत पूछो। क्योंकि सिद्धांत हल कम करते हैं और उलझाते अधिक हैं। अगर कोई सिद्धांत न हों तो समस्याएं कम होंगी। ऐसा नहीं है कि सिद्धांत प्रश्नों या समस्याओं को हल करते हों बल्कि इसके विपरीत सिद्धांतों से प्रश्न उठ खड़े होते हैं। और दार्शनिक प्रश्न भी मत पूछो क्योंकि दार्शनिक प्रश्न बस प्रश्न जैसे प्रतीत होते हैं। वे प्रश्न हैं नहीं। यही कारण है कि कोई उत्तर संभव नहीं हो पाया है। अगर कोई प्रश्न वास्तव में एक प्रश्न है तो वह उत्तर देने योग्य है। अगर कोई प्रश्न झूठा है, बस एक भाषा शास्त्रीय संशय है तब इसका उत्तर नहीं दिया जा सकता है। यही कारण है कि दर्शनशास्त्र उत्तर देता रहा है और किसी भी बात का उत्तर नहीं दिया जा सका है। दर्शनशास्त्री लोग सदियों-सदियों से उत्तर दिए चले जा रहे हैं, और प्रश्न अब भी जैसा था वैसा बना हुआ है। इसलिए किसी दार्शनिक प्रश्न का तुम किसी भी तरह से उत्तर दे दो तुम इसका उत्तर कभी नहीं दे पाते हो क्योंकि प्रश्न झूठा है। प्रश्न उत्तर दिए जाने के लिए था भी नहीं अंतर्तम रूप से प्रश्न है ही ऐसा कि उसका कोई उत्तर संभव नहीं है।

उदाहरण के लिए अगर तुम पूछते हो? संसार को किसने बनाया, तो यह कुछ ऐसा प्रश्न है जिसका उत्तर संभव नहीं है। यह असंगत है। और तत्व मीमांसा के प्रश्न मत पूछो ऐसा नहीं है कि वे असली प्रश्न नहीं हैं–वे वास्तविक प्रश्न हैं–लेकिन उनका उत्तर नहीं दिया जा सकता है उनका आयाम उस पार का है। इसलिए तुम प्रश्न पूछ सकते हो लेकिन उन का उत्तर नहीं दिया जा सकता है। उनको हल किया जा सकता है लेकिन उनका उत्तर नहीं दिया जा सकता है।

उन प्रश्नों को पूछो जो व्यक्तिगत अंतरंग अस्तित्वगत हों। बात यह है कि व्यक्ति को इस बात के प्रति सजग होना चाहिए कि वह क्या पूछ रहा है, और क्या जिज्ञासा कर रहा है–क्या यह कुछ ऐसा है जिसका तुम्हारे लिए वास्तव में कुछ अर्थ है? अगर इसका उत्तर दे दिया गया तो क्या तुम्हारे लिए कोई नया आयाम खुल जाएगा? क्या तुम्हारे अस्तित्व में कुछ जुड़ जाएगा? क्या इसके द्वारा तुम्हारा अस्तित्व किसी भी ढंग से रूपांतरित हो जाएगा? क्या वास्तव में यह कुछ ऐसी बात है जिसके उत्तर की तुम्हें जरूरत है? केवल ऐसे प्रश्न ही धार्मिक हैं।

धर्म वास्तविक रूप से समस्याओं से संबंधित है मात्र प्रश्नों से नहीं। प्रश्न बस एक कौतुहल हो सकता है लेकिन एक समस्या कुछ अंतरंग, व्यक्तिगत होती है जिससे तुम जुड़े हो। यह तुम ही हो। प्रश्न तुम से कुछ अलग है समस्या– यह तुम हो। इसलिए पूछने से पहले भीतर गहरे में उतरो और कुछ ऐसा पूछो जो अंतरंग और व्यक्तिगत हो, जिससे तुम संशय में पड़ गए हो, जिसमें तुम संलग्न हो। केवल तभी तुम्हारी सहायता हो सकती है।

अब प्रश्न पूछो।

ओशो मेरे पास अनेक संशय हैं लेकिन मेरा मुख्य संशय यह है जिसे मैं जानना चाहता हूं कि क्या वह सभी कुछ जो मैं करता हूं? मेरा पूरा जीवन क्या यह पूर्व-निर्धारित है? इससे कोई भेद नहीं पड़ता कि मैं क्या

करता हूं! लेकिन क्या यह भी किसी अन्य सत्ता से संचालित है? क्या इस कृत्य में मेरी कोई भूमिका है–यहां पर संशय है।

यह दोनों है हां और न दोनों।

मैं यह जानना चाहता हूं कि हमारे जीवन पूर्व-निर्धारित होते हैं या नहीं?

यह दोनों हैं–हां और नहीं, दोनों–और जीवन की समस्याओं के लिए सदा ऐसा ही है। एक अर्थ में हर बात पूर्व-निर्धारित है–एक ढंग से ऐसा ही है। तुम्हारे भीतर जो कुछ भी भौतिक है, तुम्हारे भीतर जो कुछ भी पदार्थ का है तुम्हारे भीतर जो कुछ भी मानसिक है वह पूर्व-निर्धारित है। और वह सभी कुछ जिसका कहीं भी कोई कारण हो पूर्व-निर्धारित होता है। लेकिन फिर भी तुम्हारे पास कुछ ऐसा है जो सदा अनिर्धारित रहता है और जिसकी भविष्यवाणी कभी नहीं की जा सकती है और वह है तुम्हारी चेतना।

इसलिए यह निर्भर करता है–अगर तुमने अपने शरीर और अपने भौतिक अस्तित्व से बहुत अधिक तादात्म्य कर रखा है तो उसी अनुपात में तुम्हारा निर्धारण कारण के नियम से होता है। तब तुम एक यत्र होते हो—जैव-वैज्ञानिक यंत्र। लेकिन अगर तुमने अपने भौतिक शारीरिक–इसमें मन और शरीर दोनों शामिल हैं अस्तित्व के साथ तादात्म्य नहीं किया हुआ है अगर तुम अपने आप को थोड़ा सा भिन्न अलग, ऊपर इनके पार का अनुभव कर सको–तो उस पार की वह चेतना कभी पूर्व-निर्धारित नहीं होती। यह सहजस्फूर्त मुक्त होती है। चेतना का अर्थ है स्वतंत्रता और पदार्थ का अर्थ है : परतंत्रता। पदार्थ परतंत्रता का क्षेत्र है और चेतना स्वतंत्रता का। इसलिए यह तुम पर निर्भर करता है कि तुम अपने आप को कैसे परिभाषित करते हो। अगर तुम कहते हो कि 'मैं सिर्फ शरीर हूं' तो मैं कह दूंगा हां तुम्हारे बारे में हर बात पूर्व-निर्धारित है।

इसलिए वह व्यक्ति जो कहता है कि मनुष्य मात्र केवल एक शरीर है, कभी यह नहीं कह सकता है कि मनुष्य का जीवन पूर्व-निर्धारित नहीं है। यह बात थोड़ी सी विचित्र लग सकती है क्योंकि आमतौर से वे लोग जो चेतना में विश्वास नहीं करते, पूर्व-निर्धारण में भी विश्वास नहीं करते हैं। और आमतौर पर वे लोग जो धार्मिक हैं, और चेतना में विश्वास करते हैं, वे लोग पूर्व-निर्धारित जीवन में भी विश्वास रखते हैं। इसलिए मैं जो कुछ कह रहा हूं वह बहुत विरोधाभासी दिखाई देगा। लेकिन मेरा कहना है कि यही बात है।

वह व्यक्ति जिसने चेतना को जान लिया है, उसने स्वतंत्रता को जान लिया है। इसलिए कोई आध्यात्मिक व्यक्ति ही कह सकता है कि कहीं भी किसी तरह का कोई पूर्व- निर्धारण नहीं है। लेकिन यह बोध सिर्फ तब आता है जब तुम्हारा अपने भौतिक अस्तित्व शरीर से तादात्म्य पूरी तरह से टूट चुका हो। इसलिए तुम जो भी हो–अगर तुम अपने आप को बस एक भौतिक अस्तित्व के रूप में अनुभव करते हो, तो कोई स्वतंत्रता संभव नहीं है। पदार्थ के साथ स्वतंत्रता संभव नहीं है। पदार्थ का अर्थ है वह जो स्वतंत्र नहीं हो सकता है। इसे तो कारण और परिणाम की शृंखला में बंध कर रहना ही है। इसीलिए मैं कहता हूं दोनों बातें हैं और यह तुम्हारे ऊपर निर्भर करेगा।

एक बार कोई चैतन्य को संबोधि को उपलब्ध कर ले, तो वह कारण और परिणाम के नियम से पूरी तरह से बाहर हो जाता है और पूर्व-निर्धारण को पार कर लेता है। वह पूरी तरह से भविष्यवाणियों के पार हो जाता है। तुम उसके बारे में कुछ भी नहीं कह सकते हो। वह हर क्षण को जीने लगता है इसे दूसरे शब्दों में कहा जाए तो उसका अस्तित्व परमाणु जैसा हो जाता है।

तुम्हारा अस्तित्व एक क्रमबद्धता है नदी के समान क्रमबद्धता जिस में हर कदम अतीत के द्वारा निर्धारित होता है। तुम्हारा भविष्य वास्तव में भविष्य नहीं है यह बस तुम्हारे अतीत की सह-उत्पत्ति है। तुम्हारा भविष्य जरा भी भविष्य नहीं है। यह तो बस अतीत के द्वारा मन को संस्कारित कर देना उसे सूत्रबद्ध करना उसे विकसित करना और उसे एक आकार दे देना है। इसलिए तुम्हारा भविष्य–यही कारण है कि तुम्हारा भविष्य पहले से बताया जा सकता है।

अमरीका में एक आधुनिक विचारक और मनोवैज्ञानिक हुआ है बी. एफ. स्किनर। वह भी कहता है कि किसी और चीज की तरह मनुष्य के बारे में भी भविष्यवाणी की जा सकती है। मुख्य कठिनाई यह नहीं है कि मनुष्य के बारे में कुछ नहीं बताया जा सकता है बल्कि समस्या यह है कि मनुष्य के सारे अतीत को जान लेने का कोई प्रामाणिक उपाय अभी तक हमारे पास नहीं है। इसलिए जिस पल हम उसके अतीत के बारे में जान लें हम भविष्य बता सकते हैं– सभी कुछ बताया जा सकता है। और एक अर्थ में वह सही है। उसने अपनी प्रयोगशाला में जितने लोगों के साथ कार्य किया था वे इसी प्रकार के थे। कभी कोई बुद्ध उसकी प्रयोगशाला में उसके अध्ययन के लिए नहीं पहुंचा था, इसलिए स्किनर सही है। वह सैकड़ों लोगों के साथ प्रयोग करता रहा था और उसने देखा कि वे सभी यांत्रिक अस्तित्व हैं उनके भीतर ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे स्वतंत्रता कहा जा सके।

लेकिन वह गलत है क्योंकि वह अध्ययन सीमित है। और अगर केवल एक व्यक्ति भी स्वतंत्र है, तो इससे कोई अंतर नहीं पड़ता है–पूरा सिद्धांत व्यर्थ हो जाता है। इस बात से कोई अंतर नहीं पड़ता है कि अगर मनुष्य-जाति के पूरे इतिहास में एक मनुष्य भी स्वतंत्र है और उसकी भविष्याणी नहीं की जा सकती तो मनुष्य स्वतंत्र है और उसकी भविष्याणी नहीं की जा सकती।

लेकिन पूरी बात इसी पर निर्भर करेगी कि जोर किस पर है–तुम्हारा जोर तुम्हारे शरीर पर है या तुम्हारा जोर तुम्हारी चेतना पर है। तुम किससे संबंधित हो? तुम्हारी संबद्धता कहां से है? शरीर से है या चैतन्य से है। क्या तुम बस जीवन का एक बहिर्गामी प्रवाह हो? तब सभी कुछ निर्धारित है। क्या तुम भीतर भी कुछ हो? कोई ऐसा उत्तर मत दो जो पहले से तय कर लिया गया हो। मत कहो ' ही भीतर से मैं एक आत्मा हूं।' यह मत कहो अगर तुम महसूस करते हो मेरे भीतर कुछ भी नहीं है। तब ईमानदार रहो, क्योंकि चेतना की आंतरिक स्वतंत्रता की ओर यह ईमानदारी पहला कदम होने जा रहा है।

इसलिए अगर तुम अनुभव करते हो कि भीतर कुछ नहीं है तो कहो मेरे भीतर कुछ भी नहीं है। और वास्तव में अगर तुम भीतर जाते हो, तो तुम अनुभव करोगे कि सभी कुछ बाहर का हिस्सा भर है तुम्हारा शरीर बाहर से आया है तुम्हारे विचार बाहर से आए हैं तुम्हारा 'स्व' तुम्हें दूसरों के द्वारा दिया गया है। यही कारण है कि तुम दूसरों की राय के प्रति इतने भयभीत रहा करते हो– क्योंकि वे कभी भी अपनी राय बदल सकते हैं। वे कह सकते हैं आप भले आदमी हैं। लेकिन अगर तुम उनके अनुसार व्यवहार न करो तो वे अपनी राय वापस ले सकते हैं और तुम कमतर हो जाओगे और तुम्हारा अच्छा स्व कहीं नहीं रहेगा।

यही कारण है कि प्रत्येक व्यक्ति भय में है दूसरों से लगातार भयभीत है क्योंकि वे तुम्हारे स्व में योगदान करने वाले लोग हैं। वे पीछे लौट सकते हैं, कम से कम वे अपना योगदान तो वापस ले सकते हैं। तुम्हारा स्व दूसरों द्वारा दिया योगदान है तुम्हारा शरीर दूसरों से मिला अंशदान है, तुम्हारे विचार दूसरों के द्वारा किया गया योगदान है तो भीतर कहां है? तुम बाहर से लिए गए संचयों की बस परत दर परत हो। अगर तुम्हारा इस व्यक्तित्व से तादात्म्य है तो प्रत्येक बात पूर्व-निर्धारित है।

इसलिए जब तक कोई उन सभी बातों के प्रति सजग नहीं हो जाता जो बाहर से आती हैं और लगातार उनसे अपने तादात्म्य को तोड़ता चला जाता है तो एक क्षण ऐसा आता है, जब इनकार करने के लिए कुछ भी

नहीं बचता है। जब तुम्हारे छोड़ देने के लिए कुछ भी न बचे तो तुम एक खालीपन में पहुंच जाते हो। यह खालीपन बाहर और भीतर के जगत के बीच एक रास्ता है यही द्वार है। लेकिन हम खालीपन से डरते हैं। हम खाली हो जाने से भयभीत हैं इसलिए हम बाहर के संचय से चिपक जाते हैं।

इसलिए व्यक्ति को इतना साहसी हो जाना चाहिए कि वह तादात्म्य न करे और जब बाहर कुछ भी न बचे तो खालीपन में ठहरा रहे। जब बाहर पूरी तरह से गिर जाता है तो तुम खालीपन में होते हो। अगर तुम खालीपन में ठहरे रहने के लिए पर्याप्त साहसी नहीं हो तो तुम फिर से बाहर चले जाओगे और किसी चीज से चिपकोगे और इससे भर जाओगे। तो यह क्षण, खालीपन का यह क्षण ध्यान है। अगर तुम पर्याप्त साहसी हो और अगर तुम इस खालीपन में रुके रहे तो जल्दी ही तुम्हारा संपूर्ण अस्तित्व अपने आप ही भीतर की ओर मुड़ जाएगा। क्योंकि जब वहां पर बाहर से आसक्त हो जाने के लिए कुछ भी नहीं है तब तुम्हारा अस्तित्व भीतर की ओर मुड़ जाता है। तब पहली बार तुम यह जानते हो कि तुम 'कुछ ऐसा' हो जो उस सभी को पार कर लेता है जिसे तुम सोचते रहे थे कि तुम बस वही भर हो।

अब तुम 'हो जाने' से अलग कुछ और हो, अब तुम अस्तित्व हो। यह अस्तित्व स्वतंत्र है इसका पूर्व-निर्धारण कोई नहीं कर सकता। यह परिपूर्ण स्वतंत्रता है। यहां पर किसी कारण और किसी प्रभाव की कोई श्रृंखला संभव नहीं है। इसलिए एक बार कोई व्यक्ति भीतर रहना आरंभ कर दे तो वह अति सूक्ष्म हो जाता है। अब उसके कृत्यों में एक अलग प्रकार का अंतर संबंध होता है।

आमतौर से हमारे कृत्य हमारे अतीत के कर्मों से जुड़े हुए हैं। वे एक श्रृंखला में आते हैं क ख, ग। 'क' हमारे अतीत का कृत्य था, उसने एक ऐसी परिस्थिति निर्मित कर दी जिसमें 'ख' संभव हो सका, तब 'ख' अतीत का ऐसा कृत्य हो गया जो 'क' से जुड़ा हुआ है, तब इसने एक ऐसी परिस्थिति निर्मित कर दी जिसमें 'ग' एक संभावना बन जाता है, और यह साकार हो जाता है। इस प्रकार तुम्हारे कृत्य तुम्हारे द्वारा अतीत में किए गए पिछले कृत्यों की एक श्रृंखला हैं और यह श्रृंखला आरंभहीन आरंभ और अंतहीन अंत तक बनी रहती है। केवल तुम्हारे कृत्य ही नहीं, तुम्हारी माता और तुम्हारे पिता के कृत्य भी, तुम्हारे कृत्यों से एक श्रृंखला में जुड़े हुए हैं, न केवल तुम्हारे माता-पिता, तुम्हारा समाज, तुम्हारा इतिहास वह सभी कुछ जो तुम्हारे होने से पहले हो चुका है, वह भी किसी रूप में तुम्हारे कृत्य से अंतर संबंधित है, वह कृत्य जो इस क्षण में हो रहा है। सारा इतिहास तुम्हारे इस कृत्य में पुष्पित होने को आ गया है।

वह सभी कुछ जो कभी भी घटित हुआ है तुम्हारे कृत्य से जुड़ा हुआ है इसलिए यह स्पष्ट है कि तुम्हारा कृत्य पूर्व-निर्धारित है–क्योंकि तुम्हारा कृत्य बस एक छोटा सा भाग है और सारा इतिहास एक प्रबल जीवंत शक्ति है। तुम इसका निर्धारण नहीं कर सकते हो यह तुम्हारा निर्धारण करेगा।

यही कारण है कि मार्क्स ने कहा है : समाज की परिस्थितियों का निर्धारण चेतना नहीं करती है। यह समाज ही है और समाज की परिस्थितियां हैं जो चेतना का निर्धारण करती हैं। ऐसा नहीं है कि महान व्यक्तियों ने महान समाज निर्मित किए हों। मार्क्स कहता है ये महान समाज ही हैं जिन्होंने महान लोगों का निर्माण किया है। और एक अर्थ में वह सही है क्योंकि जहां तक कृत्यों का संबंध है तुम उनके मालिक नहीं हो। सारा इतिहास उनका मालिक है। तुम तो केवल किसी चीज को लिए हुए हो।

उदाहरण के लिए तुम्हारे भीतर जैविक कोशिकाएं हैं। वे व्यक्ति बन सकती हैं लेकिन वे कोशिकाएं तुम्हारी नहीं। वे तुमको दी गई हैं, किसी एक के द्वारा नहीं, बल्कि सारे जीवशास्त्रीय विकास के द्वारा। सारे विकास ने तुम्हारी जैविक कोशिका को बनाया है, जो किसी बच्चे को जन्म दे सकती है। तो तुम इस आनंददायक अज्ञान में जीते रह सकते हो कि तुम एक पिता हो, तुम केवल एक माध्यम थे जिसके द्वारा सारे इतिहास ने यह

खेल खेला है सारे जीवशास्त्रीय विकास ने यह खेल खेला है और तुम्हें ऐसा करने के लिए बाध्य कर दिया है। यही कारण है कि कामवासना इतनी प्रबल है। यह तुम से परे है। तो यह एक ढंग है कि कृत्य किस प्रकार से अतीत के कृत्यों से, अतीत से संबंधित होकर घटित हुआ करते हैं। लेकिन जब कोई व्यक्ति संबुद्ध हो जाता है तो एक नई घटना घटित होने लगती है। उसका कोई कृत्य अतीत के कृत्यों से जुड़ा हुआ नहीं होता, उसका प्रत्येक कृत्य उस व्यक्ति से उसकी चेतना से जुड़ा हुआ होता है। अब यह कृत्य उसकी चेतना से आता है। यह उसके अतीत के कृत्यों से नहीं आता है। यही कारण है कि तुम उसकी भविष्यवाणी नहीं कर सकते हो–जब कि उसके पिछले कृत्यों की तुम्हें जानकारी है। अगर मैंने तुम्हें अनेक परिस्थितियों में क्रोधित होते हुए देखा हो, तो मैं यह भविष्यवाणी कर सकता हूं कि इस परिस्थिति में तुम क्रोधित हो जाओगे।

स्किनर कहता है कि हम निर्धारित कर सकते हैं, मैंने तुम्हारी प्यास को जान लिया है, तो इस प्यास को निर्मित किया जा सकता है। स्किनर कहता है कि अब पुरानी कहावत गलत हो चुकी है, कि तुम घोड़े को नदी तक ला सकते हो लेकिन तुम उसे पानी पीने के लिए बाध्य नहीं कर सकते हो। स्किनर कहता है कि हम घोड़े को पानी पीने के लिए बाध्य कर सकते हैं। हम वैसी परिस्थिति निर्मित कर सकते हैं। हम परिस्थिति का निर्माण कर सकते हैं हम सारे माहौल को इतना गर्म कर सकते हैं कि घोड़े को पानी पीना ही पड़े। और हम जानते हैं कि वह कब पानी पीता है इसलिए हम परिस्थिति का निर्माण कर सकते हैं और कृत्य हो जाएगा।

इसीलिए मैं कहूंगा हां, वह कहावत गलत हो चुकी है कि तुम घोड़े को नदी तक ला सकते हो, लेकिन तुम उसे पानी पीने के लिए मजबूर नहीं कर सकते। घोड़े को मजबूर किया जा सकता है और तुम्हें भी मजबूर किया जा सकता है, क्योंकि तुम्हारे कृत्य परिस्थिति से निर्मित होते हैं। लेकिन मैं कहता हूं कि तुम किसी बुद्धपुरुष को नदी तक ला सकते हो, पर तुम उसे पानी पीने के लिए बाध्य नहीं कर सकते। वस्तुत: जितना तुम उसे बाध्य करते हो उतना ही यह असंभव होता चला जाता है, ठीक उसका उलटा हो जाएगा। वह पानी पी सकता है, लेकिन अगर तुम उसे बाध्य करोगे, तो वह नहीं पीएगा। कोई गर्मी काम नहीं आएगी, अगर तुम उसके चारों ओर हजार सूरज भी ले आओ, तो उनसे भी मदद नहीं मिलेगी, इससे मदद न होगी। बल्कि इसके विपरीत यह असंभव हो जाएगा, और-और असंभव हो जाएगा–क्योंकि अब इस व्यक्ति के पास अपने कृत्यों के लिए एक अलग ही स्रोत है। यह दूसरे कृत्यों से संबंधित नहीं है, यह चेतना से सीधे ही जुड़ा हुआ है।

यही कारण है कि मेरा जोर इस बात पर इतना अधिक रहता है सचेतन रूप से कृत्य करो। तब धीरे-धीरे जब तुम सचेतन रूप से कृत्य करते हो, तो तुम्हारे कृत्य अपने संपूर्ण संगठन को बदल देते हैं, पूरी संरचना अलग हो जाती है। यह कृत्य चेतना से जुड़ जाता है, अन्य कृत्यों से नहीं। तब तुम मुक्त हो। अब हर पल तुम कृत्य करते हो, तब ऐसा नहीं होता कि पिछले कृत्यों से नये कृत्य का जन्म हो। तुम कृत्य करते हो। तुम कृत्य करना शुरू कर देते हो और कोई कह नहीं सकता कि तुम कैसे कृत्य करोगे। क्योंकि आदतें यांत्रिक होती हैं, चेतना नहीं। आदतें यांत्रिक हैं और ऐसा कहने से मेरा अभिप्राय यह है कि आदतें अपने आप को दोहराती हैं। और तुम जितना अधिक उन्हें दोहराते हो, दोहरा कर तुम उतने ही अधिक दक्ष हो जाते हो।

इसलिए इस बात को समझ लिया जाना चाहिए तुम किसी चीज को जितनी बार दोहराओगे तुम उतने ही अधिक कार्यकुशल हो जाआगे और कार्यकुशल हो जाने से तुम्हारा क्या अभिप्राय है? कार्यकुशल हो जाने का अर्थ है कि अब चेतना की जरूरत न रही। कोई व्यक्ति है जो एक कुशल टाइपिस्ट है तो कुशल टाइपिस्ट से तुम्हारा क्या अभिप्राय है? तुम्हारा अभिप्राय है कि अब उसे किसी सचेतन प्रयास की आवश्यकता नहीं है। वह यह कार्य अचेतन रूप से यहां तक कि बंद आंखों से भी कर सकता है। वह कुछ और सोचते हुए भी टाइप करता रह सकता है वह गीत गा सकता है, वह धूम्रपान कर सकता है और टाइप करना जारी रहता है। अब टाइप

करना शरीर के अचेतन केंद्र में चला गया है। अब शरीर टाइप कर रहा है उस व्यक्ति की जरूरत न रही। यही दक्षता है। दक्षता का अभिप्राय है कि यह कार्य इतना सुनिश्चित है कि कोई गलती संभव न रही। स्वतंत्रता में गलती की संभावना है। कोई यंत्र गलती नहीं कर सकता है। क्योंकि गलती करने के लिए व्यक्ति को चेतन होना पड़ता है।

इसलिए कृत्य तुम्हारे पिछले कृत्यों से श्रृंखला के रूप में संबंधित हो सकते हैं। तब वे पूर्व-निर्धारित होते हैं। तब तुम्हारा बचपन तुम्हारी युवावस्था को निर्धारित करता है, और तुम्हारी युवावस्था तुम्हारी वृद्धावस्था को निर्धारित करती है और प्रत्येक बात पूर्व- निर्धारित होती है। तुम्हारा जन्म तुम्हारी मृत्यु का निर्धारण करता है। बुद्ध लगातार कहते रहे, उन्होंने अनेक बार दोहराया 'ऐसा कर दो, तो यह हो जाता है। कारण को उत्पन्न करो और प्रभाव वहां आ जाएगा।' यह कारण और परिणाम का संसार है जिसमें हर चीज सुनिश्चित है। चाहे तुम इसे जानते हो या तुम इसे न जानते हो।

कृत्यों का दूसरा एकीकरण चेतना के साथ होता है। तब यह क्षण प्रतिक्षण घटित होता है क्योंकि चेतना एक प्रवाह है। यह कोई रुकी हुई चीज नहीं है। यह अपने आप में जीवन है। यह बदलती है। यह जीवित है। यह विस्तीर्ण होती चली जाती है। यह नवीन ताजी युवा होती रहती है। यह कभी अतीत नहीं होती है। यह सदा वर्तमान है, इसलिए कृत्य सहजस्फूर्त होगा।

मुझे एक झेन कथा याद आती है। एक झेन गुरु अपने शिष्य से एक खास प्रश्न पूछता है। प्रश्न का उत्तर ठीक उसी ढंग से दिया गया जैसे कि दिया जाना चाहिए था।

अगले दिन गुरु ने वही प्रश्न पूछा, दुबारा वही प्रश्न और शिष्य ने कहा 'लेकिन मैं इस प्रश्न का उत्तर कल दे चुका हूं मैंने इसका उत्तर दे दिया है।'

गुरु ने कहा 'अब मैं तुम से पुन: पूछ रहा हूं।' शिष्य ने वही उत्तर दोहरा दिया। गुरु ने कहा, 'तुम नहीं जानते हो।'

किंतु शिष्य ने कहा 'पर कल मैंने इसी प्रकार उत्तर दिया था और ये शब्द भी ठीक वही हैं–और आपने अपना सिर सहमति में हिलाया था। और मैंने समझा था कि उत्तर सही था। लेकिन अब आपने अपना मन क्यों बदल लिया है?'

गुरु ने कहा कोई भी बात जिसे दोहराया जा सके वह तुमसे नहीं आ रही है। कोई भी बात जिसे दोहराया जा सकता है वह तुम से नहीं आ रही है। यह उत्तर तुम्हारी स्मृति से आया है तुम्हारी चेतना से नहीं। स्मृति अतीत की है। अगर तुमने वास्तव में जाना होता तो उत्तर अलग हो गया होता क्योंकि इतना कुछ विदा हो गया है, इतना कुछ बदल चुका है। मैं वही व्यक्ति नहीं हूं जिसने तुमसे उस दिन पूछा था। मेरा रंग-ढंग बदल गया है मेरी आंखें बदली हुई हैं, सारी परिस्थिति बदली हुई है। तुम बदले हुए हो, लेकिन उत्तर वही का वही है। तुम्हें उत्तर पता नहीं है। और बस यही देखने के लिए कि क्या तुम उसी उत्तर को दोहराओगे, मुझे दुबारा पूछना पड़ गया है। कुछ भी पुनरुक्त नहीं किया जा सकता है।

तुम जितना अधिक जीवंत होगे उतना ही तुम कम दोहराओगे। केवल एक मरा हुआ व्यक्ति ही संगत हो सकता है। जीवन असंगतता है, क्योंकि जीवन स्वतंत्रता है। स्वतंत्रता संगत नहीं हो सकती है। किसके साथ संगत होना है–अतीत के साथ?

इसलिए संबुद्ध व्यक्ति केवल अपनी चेतना के साथ संगत हो सकता है, वह कभी अतीत के साथ संगत नहीं होता है। वह सदा अपने कृत्य के साथ पूर्ण रूप से रहता है। कुछ भी पीछे नहीं छोड़ा जाता है; कुछ भी पीछे नहीं छूटता है। वह पूरी तरह से इसमें होता है, किंतु यह क्षण भर के लिए है, यह क्षणिक है। अगले ही पल

कृत्य विदा हो चुका है चेतना दुबारा वापस लौट गई है। जब कोई परिस्थिति आती है, तो यह दुबारा सक्रिय हो जाएगी और फिर से यह कृत्य भी अतीत से मुक्त होगा जैसे कि यह व्यक्ति पहली बार इस परिस्थिति का सामना कर रहा हो, यह परिस्थिति पहले कभी भी उसके सामने नहीं आई थी।

यही कारण है कि मैंने हां और न दोनों कहा है। यह तुम पर निर्भर करता है—कि तुम एक चेतना हो या तुम बस एक मिल जुल कर बना हुआ शारीरिक अस्तित्व ही हो।

धर्म स्वतंत्रता देता है क्योंकि धर्म चेतना देता है। विज्ञान और-और परतंत्रता की ओर बढ़ता चला जाएगा क्योंकि विज्ञान का पदार्थ से संबंध है। इसलिए पदार्थ के बारे में विज्ञान जितना अधिक जानता चला जाएगा उतना ही संसार को परतंत्र बनाया जा सकेगा। क्योंकि यह सारा मामला कारण और प्रभाव का है। यदि वे जानते हैं कि ऐसा करने पर वैसा हो जाता है तब प्रत्येक बात का पूर्व-निर्धारण किया जा सकता है।

जल्दी ही बहुत जल्दी इस सदी के पूरा होने से पहले ही हम देख लेंगे कि मानव- जाति को अनेक उपायों से नियंत्रित किया जा रहा है। इसका पूर्व-निर्धारण पहले से ही किया जा चुका है। अब सरकार अच्छी तरह से जानती है कि तुम्हें कैसे नियंत्रित किया जाए किस भांति तुम्हारे भीतर प्रतिक्रिया को उत्पन्न किया जाए एक कारण को कैसे निर्मित किया जाए और प्रतिक्रिया उत्पन्न हो जाएगी। अब जो सबसे बड़ा दुर्भाग्य संभव हो सकता है वह कोई हाइड्रोजन बम नहीं है। यह तो केवल नष्ट कर सकता है। वास्तविक दुर्भाग्य मनोविज्ञानों के द्वारा आएगा। और वह यह होगा कि मनुष्य को पूरी तरह से नियंत्रित कैसे किया जाए। और इसे नियंत्रित किया जा सकता है, क्योंकि हम चेतन नहीं हैं–इसलिए हमारे व्यवहार को निर्धारित किया जा सकता है। अभी भी जैसे हम हैं, हमारे बारे में सभी कुछ निर्धारित है। कोई व्यक्ति हिंदू है, यह पूर्व-निर्धारण है। यह स्वतंत्रता नहीं है। कोई व्यक्ति मुसलमान है यह पूर्व-निर्धारण है।

माता-पिता निश्चित कर रहे हैं, समाज निश्चित कर रहा है। कोई व्यक्ति डॉक्टर है और कोई व्यक्ति इंजीनियर है–यह पूर्व-निर्धारण है। किसी ने निर्धारित कर दिया है।

तो इस तरह हमें लगातार निर्धारित किया जा रहा है, लेकिन अब भी हमारे उपाय बहुत आदिम हैं। लेकिन अब नये उपाय इतनी कुशलता से मनुष्य का पूर्व-निर्धारण कर सकते हैं कि अब वस्तुत: यह कहा जा सकता है कि कोई आत्मा नहीं होती है। अगर तुम्हारी हर प्रतिक्रिया का प्रत्येक प्रतिक्रिया का पूर्व-निर्धारण किया जा सकता हो, तो अपने आप को आत्मा कहने का क्या मतलब है?

यह सभी कुछ शरीर के रसायन के द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है। अगर तुम्हें अल्कोहल पिला दी जाए, तुम और ढंग से व्यवहार करोगे। तुम्हारे शरीर का रसायन बदल गया है इसलिए तुम और ढंग से व्यवहार करोगे। तुम्हारे व्यवहार का निर्धारण अल्कोहल का उपयोग करके किया जा सकता है।

प्राचीनकाल में तंत्र-विज्ञान में साधक की परीक्षा करने का परम उपाय था उसे नशीले पदार्थ दे देना और यह देखना कि क्या वह अब भी सचेत है नशीले पदार्थ लेकर भी क्या वह सचेत है। अगर कोई अभी भी चेतन है, जब कि उतने पदार्थ का सेवन करके कोई भी अचेतन हो जाता, केवल तब तंत्र-विज्ञान कहेगा कि यह व्यक्ति परम जागरण को उपलब्ध हो गया है अन्यथा नहीं– क्योंकि अगर शरीर का रसायन तुम्हारी चेतना को बदल दे तो ऐसी चेतना का क्या अर्थ हुआ? अगर केवल एक इंजेकशन तुम को अचेतन कर सकता है तो ऐसे चेतन रहने का क्या मतलब हुआ? तब वह इंजेकशन, वह रासायनिक द्रव्य तुम्हारी खुद की चेतना से, तुम्हारी आत्मा और तुम्हारे सभी कुछ से अधिक महत्वपूर्ण अधिक शक्तिशाली है। इसलिए यह बहुत साहसपूर्ण प्रयोग था, लेकिन ऐसा संभव है यह संभव है कि हरेक नशीले पदार्थ के प्रभाव का अतिक्रमण कर लिया जाए और चेतन रहा

जाए। तुम को उत्तेजक पदार्थ दे दिया गया है लेकिन वहां पर उससे किसी प्रकार की प्रतिक्रिया नहीं हो रही है, कारण निर्मित कर दिया गया है लेकिन प्रभाव नहीं हो रहा है।

प्रत्येक ढंग से प्रत्येक क्षण में प्रत्येक कृत्य में और-और सचेत होकर कार्य करो। लेकिन अगर बाहर से कुछ दे दिया जाए तो हम और सजग हो जाते हैं भीतर कुछ प्रवाहित हो जाता है लेकिन भीतर से हम सजग नहीं हैं। उदाहरण के लिए कामवासना। यह तो बस... बस एक रासायनिक घटना है शरीर में प्रवाहित होते हुए कुछ हार्मोंस। एक विशेष हार्मोन की एक विशेष मात्रा तुम्हारे भीतर कामेच्छा को उत्पन्न कर देती है। जब यह हार्मोन निर्मित होता है तो तुम वहां पर नहीं रहते। तुम वासना बन जाते हो। जब वह हार्मोन विदा हो जाएगा, तो तुम पछता सकते हो, जब शरीर के रासायनिक द्रव्यों का अनुपात अपनी सामान्य अवस्था में लौट आएगा, तो तुम पछता सकते हो परंतु यह पछतावा अर्थहीन है। यह पछतावा अर्थहीन है, क्योंकि दुबारा से वे हार्मोंस वहां आ जाएंगे और तुम वही कृत्य करोगे। तंत्र-विज्ञान ने कामवासना के साथ भी कार्य किया है पूरी परिस्थिति को निर्मित कर दिया जाए और फिर भी कोई कामेच्छा उत्पन्न न हो तब तुम मुक्त हो। अब शरीर पर रसायनों के प्रभाव की अवस्था बहुत पीछे छूट चुकी है। अब शरीर तो वहां पर होगा, परंतु तुम शरीर नहीं हो।

क्रोध भी एक रासायनिक घटना है और कुछ भी नहीं है। इसलिए जल्दी ही रसायनशास्त्री विशेष रूप से जैव-रसायन के विशेषश तुम्हें क्रोध-रोधक बना देंगे। जैसे कि जल-रोधक होता है इसी तरह से आदमी को क्रोध-रोधक या कामवासना-रोधक बनाया जा सकता है। तुम्हारे शरीर के रसायनों में थोड़ा बहुत परिवर्तन किया जा सकता है और तुम क्रोध-रोधक हो जाओगे, किंतु तुम बुद्धपुरुष नहीं होओगे क्योंकि अंतर बना रहेगा।

बुद्ध क्रोध करने में असमर्थ नहीं थे–वे क्रोध कर सकते थे। कारण उत्पन्न कर दो और जैव-वैज्ञानिक प्रभाव वहां नहीं होगा–तुम क्रोध कर पाने में असमर्थ हो जाओगे। क्योंकि जैव-रासायनिक अवस्था वहां पर नहीं है, इसलिए प्रभाव भी वहां नहीं है।

अगर तुम्हारे कामवासना वाले हार्मोंस शरीर से हटा दिए जाए, तो तुम कामुक नहीं होओगे लेकिन ऐसा नहीं है कि तुम वासना के पार चले गए हो। इसलिए असली बात यह है कि उस परिस्थिति में किस प्रकार से होशपूर्ण हुआ जाए जहां तुम्हारी बेहोशी की जरूरत होती है उस अवस्था में कैसे चेतन हुआ जाए जो हमेशा अचेतनता में घटित होती है।

इसलिए जब कभी भी ऐसी परिस्थिति हो उसमें ध्यान करो। तुमको एक महान अवसर दिया गया है। अगर तुम ईर्ष्या को अनुभव करते हो तो उस दशा में ध्यान करो क्योंकि यही उचित समय है। तुम पर शरीर का रसायन शास्त्र कार्य कर रहा है। यह तुम्हें अचेतन कर देगा तुम इस तरह से व्यवहार करोगे जैसे कि तुम पागल हो। अब चेतन हो जाओ। ईर्ष्या को वहां रहने दो उसका दमन मत करो। ईर्ष्या को होने दो लेकिन चेतन हो जाओ इसके साक्षी हो जाओ।

क्रोध वहां पर है इसके साक्षी हो जाओ। कामवासना वहां पर है उसके साक्षी हो जाओ। शरीर जो कुछ भी करता हो और जो भी हो रहा हो उसे होने दो। इस सारी परिस्थिति में ध्यान करना शुरू कर दो। और धीरे-धीरे तुम्हारी जागरूकता जैसे-जैसे गहराती है, तुम्हारे व्यवहार के पूर्व-निर्धारण की संभावना उतनी ही कम होती जाती है। तुम मुक्त हो जाते हो। और मोक्ष स्वतंत्रता का अभिप्राय इसके अलावा और कुछ भी नहीं है। इसका अर्थ है कि बस एक चेतना है जो इतनी मुक्त है कि कोई भी इसका पूर्व-निर्धारण नहीं कर सकता है।

और जो कुछ तुम पूछना चाहो पूछ सकते हो।

ओशो क्या आप समझा सकते हैं कि दिव्य प्रेम क्या है? या कि दिव्य ढंग से अनुभव किया गया प्रेम क्या है?

पहले प्रश्न को देखो–क्या यह प्रश्न इसी क्षण उठा है या प्रश्न तुम्हारे मन में पहले से ही तैयार था, तुम बस इसको पूछने की प्रतीक्षा कर रहे थे।

यह तैयार रखा था–क्योंकि यह ठीक अभी नहीं उठ सकता है इसलिए यह पूर्व- निर्धारित है। यह तैयार था। तुमने इसे पूछने का निश्चय कर रखा था। यह पूछे जाने की प्रतीक्षा कर रहा था। यह तुम्हें पूछे जाने के लिए बाध्य कर रहा था। इसलिए तुम्हारी स्मृति ने इसे पूछने का निर्णय लिया है, तुम्हारी चेतना ने नहीं। अगर तुम इसी क्षण में चेतन हो तो यह प्रश्न इस तरह से नहीं आ सकता था। इसने पूरी तरह से अलग आकार ले लिया होता। यह गुणात्मक रूप से अलग हो गया होता क्योंकि मैं जो कुछ भी कह रहा हूं अगर तुम यहां पर होते, इसी समय में पूरी तरह से उपस्थित होते तो ऐसे प्रश्न का पूछा जाना असंभव हो गया होता।

और दूसरी बात अगर यह प्रश्न तुम्हारे भीतर मौजूद था, तो सुन पाना असंभव है, क्योंकि यह प्रश्न लगातार भीतर से द्वार खटखटाता होगा जिससे कि उसे पूछे जाने का एक अवसर मिल पाए उसको पूछ लिया जाए। इसलिए यह प्रश्न जो मन में सतत रूप से मौजूद था एक तनाव निर्मित कर देगा और इस तनाव के कारण तुम यहीं पर मौजूद नहीं हो पाओगे। और यही कारण है तुम्हारी चेतना स्वतंत्रता पूर्वक अपने आप से कार्य नहीं कर पाती है। यह प्रश्न मानसिक बंधन से आता है। इसलिए पहले इस बात को समझ लो, और फिर हम प्रश्न को ले सकते हैं।

प्रश्न अपने आप में बुरा नहीं है। यह अच्छा है बहुत अच्छा है लेकिन इसके साथ कार्य करता हुआ तुम्हारा मन बीमार है। इसलिए क्षण-क्षण होश बना रहना चाहिए, केवल कृत्यों में नहीं बल्कि प्रश्न पूछने में भी, और हर भाव- भंगिमा में। अगर मैं इस अंगुली को उठाता हूं तो इसमें दोनों बातें हो सकती हैं। यह बस एक आदत भी हो सकती है। अगर यह केवल एक आदत भर है तब मैं किसी भी प्रकार से अपने शरीर का मालिक नहीं हूं। यह किसी ऐसी बात की सहज स्फूर्त अभिव्यक्ति हो सकती है जो ठीक इसी समय मेरी चेतना में उपस्थित है तब यह बिलकुल अलग ही बात है।

अगर तुम किसी ईसाई धर्म-प्रचारक के पास जाते हो तो उसकी हर भाव-भंगिमा पूर्व-निर्धारित है। उसे सिखा दिया गया है। वह एक प्रशिक्षण से होकर गुजरा है। एक बार मैं एक थियोलॉजिकल कॉलेज धर्मशास्त्रीय महाविद्यालय में था एक क्रिश्चियन थियोलॉजिकल कॉलेज ईसाई धर्मशास्त्रीय महाविद्यालय, तो मैंने बस ऐसे ही इधर-उधर घूम कर देखा। वे उपदेशकों को प्रशिक्षित कर रहे थे यह पांच साल का पाठयक्रम था, और सीख कर वे डी. डी. हो जाएंगे। डी. डी. का अर्थ है डॉक्टर ऑफ डिवनिटी। बेहूदी बात है! कोई भी डॉक्टर ऑफ डिवनिटी नहीं हो सकता है। और अगर तुम डॉक्टर ऑफ डिवनिटी हो भी जाओ तो कुछ भी नहीं हुआ इसका कोई महत्व नहीं है। पांच साल के पाठयक्रम को पूरा कर के व्यक्ति डॉक्टर ऑफ डिवनिटी बन सकता है। कोई व्यक्ति डॉक्टर ऑफ केमिस्ट्री तो बन सकता है, यह उचित है। इसका कुछ अर्थ भी निकलता है। लेकिन डॉक्टर ऑफ डिवनिटी, निपट पड़ता है यह।

तो मैं चारों ओर घूमा और मैंने देखा कि वहां पर हर बात पढ़ाई जा रही है। उन्हें हर बात में प्रशिक्षित किया जा रहा था मंच पर किस प्रकार से खड़ा होना है अपनी बात को किस प्रकार से शुरू करना है, भजन को कैसे गाना है, श्रोताओं की ओर किस तरह से देखना है, कहां पर रुक जाना है और कहा पर एक अंतराल कर

देना है और फिर एक खालीपन। सभी कुछ! ऐसा नहीं होना चाहिए। अगर ऐसा घटित होता है, तो यह एक दुर्भाग्य है।

इसलिए सजग रहो कि प्रश्न मौजूद था लगातार मन का द्वार खटखटा रहा था। तुम मुझे जरा भी नहीं सुन रहे थे। जो कुछ भी कहा जा रहा था उसे सुना नहीं जा रहा था–और ऐसा केवल इस प्रश्न के कारण हो रहा था। और एक बात और जब मैं तुम्हारे प्रश्न के बारे में बात कर रहा होऊंगा तो यही मन दूसरा प्रश्न निर्मित कर लेगा। और वह प्रश्न तुम्हारे मन के द्वार को खटखटाना जारी रखेगा। और तुम फिर से चूक जाओगे क्योंकि मन एक यांत्रिक ढंग से पुनरुक्ति करता रहता है। यह तुम्हारे लिए एक और प्रश्न बना देगा। और ऐसा केवल व्यक्तिगत रूप से तुम्हारे लिए ही नहीं है। ऐसा सभी के साथ होता है। इस बात से कोई अंतर नहीं पड़ता है कि तुमने प्रश्न पूछा है और दूसरे लोगों ने प्रश्न नहीं पूछा है। इस बात से जरा भी अंतर नहीं पड़ता है।

अब प्रश्न। मेरे लिए यह कहना कठिन है कि दिव्य प्रेम जैसी कोई चीज होती है क्योंकि प्रेम दिव्य है। यह जब भी कहीं होता है दिव्य ही होता है, जहां कहीं भी यह होता है यह दिव्य होता है। इसलिए 'दिव्य प्रेम' कहना अर्थहीन है। प्रेम दिव्य है। लेकिन हम चालाक हैं मन चालाक है। यह कहता है 'हम जानते हैं कि प्रेम क्या है। बस हम यह नहीं जानते कि दिव्य प्रेम क्या है।'

हम प्रेम को भी नहीं जानते हैं। प्रेम सर्वाधिक अनजानी चीजों में से एक है। इसके बारे में बहुत अधिक बातचीत होती है–लेकिन कभी प्रेम को जीया नहीं जाता है। और वास्तव में यह मन की एक तरकीब है। जिस चीज को हम जी नहीं सकते हैं उसके बारे में और-और अधिक बातचीत किया करते हैं।

इसलिए प्रेम ही एकमात्र केंद्र है जिसके चारों ओर साहित्य संगीत, काव्य, नृत्य घूमते हैं–सभी कुछ इसी के चारों ओर घटित होता है। और भीतर वहां पर कुछ भी नहीं है। अगर असलियत में प्रेम होता तो इसके बारे में कोई बातचीत न होती। हम केवल उन्हीं चीजों के बारे में बातचीत किया करते हैं जिनकी हमारे पास कमी होती है। प्रेम के बारे में इतनी अधिक बातचीत का मतलब है कि प्रेम का अस्तित्व नहीं है। मन इसी तरह से कार्य करता है। हम उन चीजों के बारे में बात करते हैं जो नहीं हैं। हम कभी उन चीजों के बारे में बात नहीं करते जो हैं। उन चीजों के बारे में जो नहीं हैं यह बातचीत बस एक परिपूरक विधि है। वह जो नहीं है–हम बातचीत से, भाषा से, प्रतीकों से, कला से उसका एक भ्रम निर्मित कर लेते हैं। हम एक छाया–अस्तित्व, एक भ्रम निर्मित कर लेते हैं कि वह चीज वहां पर है। तुम प्रेम के बारे में बहुत अच्छी कविता लिख सकते हो और हो सकता है कि तुमने प्रेम को जरा भी न जाना हो। और यह संभव है कि वह व्यक्ति जिसने प्रेम को न जाना हो, एक बेहतर कविता लिख सके क्योंकि उसके भीतर अभाव कहीं ज्यादा गहरा है, इसे भरा जाना है, उसका विकल्प चाहिए। इसलिए पहली बात, प्रेम का अभाव है, प्रेम वहां पर नहीं है।

इसलिए यह समझ लेना बेहतर रहेगा कि प्रेम क्या है, क्योंकि जब तुम पूछते हो कि दिव्य प्रेम क्या है तो ऐसा लगता है कि प्रेम को जान लिया गया है। प्रेम को नहीं जाना गया है। प्रेम की तरह जिस को जाना गया है वह कुछ और है। और सच्चे की ओर, वास्तविक की ओर कदम बढ़ाने से पहले उस नकली को जान लिया जाना चाहिए।

प्रेम के रूप में जो जाना गया है वह प्रेम नहीं है, बल्कि आसक्ति है। आसक्ति! यह आसक्ति पशुओं में नहीं पाई जाती है, इसलिए हम सोचते हैं यह प्रेम कुछ मानवीय है, क्योंकि पशु ऐसा कुछ भी नहीं जानते हैं...प्रेम जैसी कोई बात–वे कामवासना को जानते हैं। लेकिन यही समस्या है। पशुओं को प्रेम जैसी किसी चीज का कोई पता नहीं होता, वे कामवासना को अच्छी तरह से जानते हैं। इसलिए क्या मनुष्य के मन के लिए प्रेम कोई नई चीज है? क्या उसकी समझ में कुछ चूके हैं।

एक चूक यह है। तुम किसी को प्रेम करने लगते हो, अगर वह तुम्हें पूरी तरह से मिल जाए तो जल्दी ही प्रेम मर जाएगा। अगर वहां कुछ रुकावटें हों और तुम उस व्यक्ति को न पा सको जिसे तुम प्रेम करते हो, जिसे तुम प्रेम करते हो वह तुम को न मिल पाए तो प्रेम बढ़ने लगेगा। यह प्रगाढ़ हो जाएगा। जितनी अधिक रुकावटें होंगी और अवरोध होंगे, उतना ही तुम्हारा अहंकार कुछ करने के भाव से भर जाता है। यह अहंकार की समस्या बन जाता है। एक तनाव निर्मित हो जाता है। अहंकार सक्रिय हो जाता है और तनाव को जीने लगता है। जितना अधिक तुम्हें इनकार किया जाता है, उतना अधिक तनाव, अधिक जटिलता, अधिक आसक्ति। इसे, इस तनाव को तुम प्रेम कहते हो। यही कारण है कि अगर तुम्हारी प्रेमिका के साथ तुम्हारा विवाह हो जाए तो हनीमून समाप्त होने पर प्रेम भी समाप्त हो जाता है। बल्कि उससे पहले ही क्योंकि जो कुछ भी प्रेम की तरह तुमने जाना था वह प्रेम नहीं था। वह केवल आसक्ति थी, अहंकार की आसक्ति अहंकार का तनाव–एक संघर्ष एक कलह द्वेष, आक्रामकता अलगाव।

पुराने मानव समाज पहले के मानव समाज बहुत चालाक थे। उन्होंने तुम्हारे प्रेम को लंबे समय तक बनाए रखने के उपायों का अविष्कार कर लिया था। इसलिए अगर कोई व्यक्ति अपनी पत्नी को दिन के समय न देख पाए, तो प्रेम लंबे समय तक चलेगा। अगर वह उससे, अपनी पत्नी से भी अक्सर मिल न पाए, अगर उसकी अपनी स्वयं की पत्नी से मुलाकात न हो पाती हो, तो उसके भीतर पत्नी के प्रति भी एक आसक्ति और तनाव निर्मित हो जाता है। तब एक व्यक्ति अपने पूरे जीवन भर एक पत्नी के साथ बना रह सकता है। और वह ईश्वर से प्रार्थना करता हुआ मर भी सकता है कि उसे दुबारा यही पत्नी प्रदान की जानी चाहिए।

पश्चिम में अब विवाह और अधिक नहीं टिक सकता है। यह कुछ ऐसा नहीं है कि पश्चिमी मन अधिक कामुक है। नहीं। एक मात्र बात यह है आसक्ति को एकत्रित नहीं होने दिया जाता है। काम-संबंध इतनी आसानी से उपलब्ध है कि विवाह का अस्तित्व टिक नहीं सकता। इस प्रकार की स्वतंत्रता के साथ प्रेम का भी अस्तित्व नहीं रह पाता है। अगर तुम एक पूरी तरह से मुक्त यौन वाला समाज बना सको, तो केवल कामवासना बनी रह सकती है। और यह उस तल पर पहुंच जाएगी जहां पर पशु हैं। ऐसा कहने से मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि तुम किसी और अवस्था में हो, तुम बस सोचते हो कि तुम किसी और तल पर हो, पर तल वही बना रहता है। यह सारी बात काल्पनिक है।

इस आसक्ति से ऊब निर्मित हो ही जानी है क्योंकि ऊब दूसरा पहलू है यह आसक्ति का दूसरा पक्ष है। अगर तुम किसी को प्रेम करते हो और अपने प्रिय पात्र को न पा सको तो आसक्ति गहरे में चली जाती है। अगर तुम्हें अपना प्रिय पात्र मिल जाए, तो दूसरा पहलू सामने आ जाता है। तुम ऊब, बोझिलता अनुभव करने लगते हो। और बहुत से द्वैत हैं आसक्ति-ऊब प्रेम-घृणा, आकर्षण-विकर्षण। आसक्ति के साथ तुम आकर्षण अनुभव करोगे तुम प्रेम अनुभव करोगे। ऊब के साथ तुम विकर्षण अनुभव करोगे तुम घृणा अनुभव करोगे। इसी तरह से घटनाएं घटती रहती हैं।

कोई भी आकर्षण प्रेम नहीं हो सकता है क्योंकि बाद में विकर्षण को आना ही है। चीजों का यही स्वभाव है। दूसरा पहलू सामने आ जाएगा। अगर तुम नहीं चाहते हो कि दूसरा पहलू आ जाए, तो तुम्हें रुकावटें निर्मित करनी पड़ेगी ऐसी रुकावटें जिनके कारण आसक्ति कभी न समाप्त हो– आसक्ति चलती रहे, जिससे कि दूसरे पहलू को न जाना जा सके। तुम्हें रोज के तनाव निर्मित करने पड़ते हैं तो यह आसक्ति जारी रहती है। पुरानी व्यवस्था के द्वारा प्रेम का यही रूप निर्मित किया गया है।

अब यह संभव नहीं हो पाएगा, और अगर ऐसा संभव नहीं हो सका, तो विवाह के साथ प्रेम भी मिट जाएगा। वस्तुत: पश्चिम में तो यह विदा हो ही रहा है, विदा हो चुका है। कामवासना बची हुई है। और तब

जल्दी ही अकेली कामवासना भी खड़ी नहीं रह पाएगी। फिर यह बहुत यांत्रिक और बस शारीरिक तल की बन जाती है।

नीत्शे ने केवल सत्तर साल पहले घोषणा की थी कि ईश्वर मर गया है। लेकिन जो असली बात होने वाली है कि कामवासना मर गई है और इस सदी के साथ ही कामवासना पूरी तरह से मर जाएगी। मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि लोग कामवासना रहित हो जाएंगे। वे कामुक होंगे, लेकिन यह आसक्ति यह लगाव इसका बहुत अधिक महत्व दिया जाना यह मिट जाएगा। यह किसी और सामान्य कृत्य की तरह जैसे कि मूत्र-उत्सर्जन करना, या भोजन करना, या किसी भी काम की तरह का एक कार्य बन जाएगी। यह अर्थपूर्ण नहीं रह जाएगी। कामवासना अर्थपूर्ण बन गई थी उन रुकावटों और आसक्ति के कारण–और तुम इसे प्रेम कहा करते थे।

यह प्रेम नहीं है। यह रुकी हुई कामवासना है। बस रोक दी गई कामवासना है। तब प्रेम क्या है? प्रेम बिलकुल ही अलग आयाम है। वस्तुत: यह किसी भी तरह से कामवासना से संबद्ध नहीं है– सच है यह बात। कामवासना भीतर आ सकती है नहीं भी आ सकती है लेकिन वास्तव में प्रेम कामवासना से जरा भी संबद्ध नहीं है। इसका अपना स्वयं का अस्तित्व है।

मेरे लिए प्रेम ध्यानपूर्ण मन का उप-उत्पादन है। वस्तुत: यह कामवासना से जुड़ा हुआ नहीं है यह ध्यान से जुड़ा हुआ है यह ध्यान से संबंधित है–क्योंकि तुम जितना अधिक मौन हो जाते हो, उतना ही अधिक तुम अपने साथ विश्रांतिपूर्ण हो जाते हो उतनी ही परितृप्ति तुम महसूस करते हो तुम्हारे अस्तित्व की एक नई अभिव्यक्ति प्रकट हो जाती है। तुम प्रेम करने लगते हो। किसी विशेष व्यक्ति से नहीं– ऐसा हो सकता है विशेष तौर से ऐसा नहीं भी हो सकता है यह दूसरी बात है– लेकिन तुम प्रेम करना आरंभ कर देते हो। यह प्रेम करना तुम्हारे होने का रंग-ढंग बन जाता है। लेकिन यहां पर दूसरा पहलू नहीं है। तब यह कभी विकर्षण में नहीं बदल सकता है क्योंकि यह आकर्षण है ही नहीं।

इस अंतर को तुम्हें स्पष्टता से समझ लेना चाहिए। जब मैं किसी के प्रति प्रेम में पड़ जाता हूं तो आमतौर से वास्तविक अनुभूति यह नहीं होती कि मेरी ओर से उसकी ओर प्रेम का प्रवाह होना शुरू हो जाए, वास्तविक अनुभूति यह होती है कि उस पर किस तरह से मालकियत कर ली जाए। ऐसा नहीं है कि मुझसे कुछ उसकी ओर जा रहा है। बल्कि यह एक अपेक्षा है कि उसके पास से मेरे पास कुछ आएगा। यही कारण है कि प्रेम मालकियत बन जाता है किसी व्यक्ति पर कब्जा कर लो जिससे कि तुम उससे कुछ प्राप्त कर सको। लेकिन वह प्रेम जिसकी मैं बात कर रहा हूं न तो मालकियत है और न उसमें अपेक्षाएं हैं। यह बस ऐसा है जैसा कि तुम व्यवहार करते हो। तुम इतने मौन हो गए हो कि यह मौन अन्य व्यक्तियों तक जाता है।

जब तुम क्रोधित होते हो तो क्रोध दूसरों तक जाता है। जब तुम घृणा में होते हो, तो घृणा दूसरों तक जाती है। जब तुम प्रेम में इस तथाकथित प्रेम में होते हो, तो तुम्हें अनुभव होता है कि प्रेम दूसरों तक जा रहा है। लेकिन तुम विश्वसनीय, भरोसा करने योग्य नहीं हो। इस क्षण वहां पर प्रेम है अगले क्षण वहां पर घृणा होगी। और ऐसा मत सोचो कि यह घृणा तुम्हारे प्रेम के विपरीत कोई चीज है यह उसी का आधारभूत अवयव है, उसी की श्रृंखला में है।

अगर तुमने किसी को प्रेम किया है तो तुम उससे घृणा भी करोगे। तुम भले ही इसे स्वीकार करने का या इसे कह पाने का या अपनी इस गलती को मान लेने का साहस न कर पाओ लेकिन तुम घृणा करते तो जरा प्रेम करने वालों को देखो। अगर वे साथ-साथ हैं तो वे लगातार संघर्ष में रहते हैं। लेकिन जब वे साथ-साथ नहीं होते हैं तो वे एक-दूसरे के बारे में गीत भी गा सकते हैं लेकिन जब वे एक साथ होते हैं, तो वे बस झगड़ते रहते हैं। वे अकेले नहीं रह सकते हैं वे एक साथ नहीं रह सकते हैं– क्योंकि जब वे अकेले होते हैं तो दूसरे की कमी खलती

है। आसक्ति निर्मित हो जाती है क्योंकि दूसरा मौजूद नहीं है तब आसक्ति वहां आ जाती है तब दोनों फिर से प्रेम को अनुभव करते हैं। जब दूसरा मौजूद होता है तो आसक्ति विदा हो जाती है वे घृणा को अनुभव करते हैं।

जिस प्रेम की मैं बात कर रहा हूं उसका अभिप्राय है कि तुम इतने अधिक मौन हो गए हो कि अब वहां पर न तो आकर्षण है और न ही विकर्षण है। वास्तव में वहां पर न प्रेम है और न घृणा है। वस्तुत: अब तुम जरा भी पर–उन्मुख नहीं हो जरा भी नहीं। दूसरा मिट चुका है तुम अपने साथ अकेले हो। एकांत की इस अनुभूति में प्रेम तुम पर बस एक सुगंध की भांति आता है। जब कोई एकांत में, पूरी तरह से एकांत में होता है तो उससे उठने वाली सुगंध का नाम प्रेम है।

दूसरे की मांग करना सदा कुरूप होता है। दूसरे पर निर्भर हो जाना सदा मालकियत करने का प्रयास होता है। दूसरे से कुछ मांगना, सदा बंधन और कष्ट और संघर्ष निर्मित करेगा। व्यक्ति ऐसा हो जो अपने आप में परितृप्त हो–ध्यान से मेरा यही अभिप्राय है। ध्यान है अपने आप में परितृप्त हो जाना। तुम एक वर्तुल बन जाते हो, अकेले। तब मंडल पूर्ण हो जाता है।

तुम दूसरों के साथ मंडल को पूरा करने की कोशिश कर रहे हो पुरुष स्त्री के साथ स्त्री पुरुष के साथ वर्तुल को पूरा करने की कोशिश में हैं। किन्हीं विशेष क्षणों में दो रेखाएं मिलती हैं लेकिन वे मिल भी नहीं पाती हैं और अलगाव होने लगता है और तुम फिर से आधे हो जाते हो। अगर तुम भीतर से समग्र हो जाओ, एक वर्तुल–परिपूर्ण परितृप्त बाहर की ओर जाती हुई कोई भी रेखा नहीं बाहर की ओर किसी दूसरे की ओर जाता हुआ कुछ भी नहीं भीतर एक पूर्ण वृत्त–तब तुम्हारे भीतर कुछ पुष्पित होने लगता है यही प्रेम है। तब जो कोई भी तुम्हारे निकट आता है, तुम उसे प्रेम करते हो। यह जरा भी एक कृत्य नहीं है। यह कुछ ऐसा नहीं है कि तुम उसको प्रेम करते हो। यह किसी भी तरह से एक कृत्य नहीं है। यह कुछ ऐसा है कि तुम्हारा अस्तित्व ही तुम्हारी उपस्थिति ही प्रेम है। प्रेम तुम्हारे द्वारा प्रवाहित होता है।

अगर तुम ऐसे किसी व्यक्ति से पूछो ' क्या आप मुझसे प्रेम करते हैं?' तो वह कठिन परिस्थिति में फंस जाएगा। वह नहीं कह सकता है ' मैं तुम से प्रेम करता हूं ' क्योंकि उसकी ओर से यह कोई कृत्य नहीं है। उसके लिए यह कुछ करना नहीं है। वह यह भी नहीं कह सकता 'मैं तुमसे प्रेम नहीं करता हूं,' क्योंकि वह प्रेम करता है। वस्तुत: वह प्रेम ही है।

यह प्रेम सिर्फ उस स्वतंत्रता के साथ आता है, जिसकी मैं बात कर रहा हूं। इसलिए स्वतंत्रता तुम्हारी अनुभूति है और प्रेम तुम्हारे बारे में दूसरों की अनुभूति है। जब यह ध्यान भीतर घटित होता है, तो तुम्हें स्वतंत्रता की अनुभूति होती है–कि मैं स्वतंत्र हूं पूरी तरह से मुक्त। यह तुम्हारी स्वतंत्रता है, यह तुम्हारी अनुभूति है। कोई दूसरा इस स्वतंत्रता को अनुभव नहीं कर सकेगा क्योंकि यह कुछ बहुत भीतर की बात है। इसे कोई दूसरा व्यक्ति कैसे अनुभव कर सकता है? तुम्हारी स्वतंत्रता दूसरों के द्वारा अनुभव नहीं की जा सकती है। कभी-कभी तुम्हारा व्यवहार दूसरों के लिए मुश्किलें खड़ी कर सकता है क्योंकि वे कल्पना भी नहीं कर सकते कि तुम्हें क्या हो गया है। और एक प्रकार से तुम उनके लिए एक कठिनाई एक असुविधा हो जाओगे, क्योंकि तुम्हारे बारे में भविष्यवाणी नहीं की जा सकती है। तुम्हारे बारे में कुछ भी नहीं जाना जा सकता है तुम क्या करोगे तुम क्या कहोगे अगले क्षण में क्या होने वाला है। कोई भी नहीं जान सकता है। तब तुम्हारे चारों ओर रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति तुम्हारे बारे में असहजता महसूस करने लगता है। दूसरों के द्वारा तुम्हारी स्वतंत्रता केवल इसी प्रकार से अनुभव की जा सकती है कि तुम उनके लिए असुविधाजनक हो गए हो। वे तुम्हारे साथ कभी विश्रांति में नहीं रह सकते हैं। यही एकमात्र अनुभूति है जो उन्हें तुम्हारे बारे में होती है, क्योंकि तुम कुछ भी कर सकते हो, तुम मुर्दा नहीं हो।

लेकिन तुम्हारी स्वतंत्रता को वे अनुभव नहीं कर सकते–और वे लोग उसे अनुभव भी कैसे कर सकते हैं? उन्होंने इसे कभी जाना भी नहीं है। उन्होंने कभी इसकी जिज्ञासा भी नहीं की है उन्होंने कभी इसका अन्वेषण नहीं किया है उन्होंने कभी इस प्रकार की कोई खोज नहीं की है। और वे इतने अधिक बंधनों में हैं कि वे इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते कि स्वतंत्रता क्या है। वे कटघरों में रह रहे हैं। उन्होंने खुले आकाश को जाना ही नहीं है इसलिए अगर तुम उनसे खुले आकाश की बात भी करो तो यह उनकी समझ में नहीं आएगी यह उन तक नहीं पहुंच पाएगी।

लेकिन तुम्हारे प्रेम को वे अनुभव कर सकते हैं क्योंकि उन्होंने इसके लिए सदा और सदा मांग की है। अपने कटघरों में बंद रहते हुए भी अपने बंधनों में भी वे प्रेम की खोज करते रहे हैं। वास्तव में सारा बंधन उन्होंने ही निर्मित किया है क्योंकि वे प्रेम की मांग कर रहे थे। सारा बंधन उन्होंने ही निर्मित किया था–लोगों के साथ बंधन चीजों के साथ बंधन। वे केवल प्रेम की खोज के कारण ही इन बंधनों को निर्मित करते रहे थे।

इसलिए जब कभी कोई व्यक्ति मुक्त हो जाता है तो उसका प्रेम अनुभव किया जाता है। लेकिन तुम उसके प्रेम को करुणा की भांति अनुभव करोगे प्रेम की भांति नहीं, क्योंकि उसमें कोई उत्तेजना नहीं होगी। यह बहुत मद्धिम प्रकाश की भांति होगा–न कोई गर्मी, कोई उत्तप्तता भी नहीं। अगर हम कह सकें शीतल प्रकाश तो यह संबोधन उसके लिए अर्थपूर्ण होगा।

तुम ऐसा नहीं कह सकते हो कि बुद्ध का प्रेम उत्तप्त है–तुम यह नहीं कह सकते हो। यह बर्फ की तरह शीतल है। इसमें जरा भी उत्तेजना नहीं है। यह वहां पर है, बस इतनी बात। क्योंकि कोई भी उत्तेजना तुम्हारे अस्तित्व का भाग नहीं बन सकती है। उत्तेजना आती है और चली जाती है यह लगातार उपस्थित नहीं रह सकती है। इसलिए अगर बुद्ध के प्रेम में उत्तेजना हो तो बुद्ध को बार-बार घृणा में जाना पड़ जाएगा। उत्तेजना वहां नहीं होगी। शिखर वहां नहीं होंगे तब घाटियां भी वहां नहीं होंगी। इस तरह से वे न तो शिखर हैं और न ही घाटी वे बस एक समतल हैं। यह प्रेम हिम सा शीतल है तो तुम इसे करुणा के रूप में अनुभव करोगे।

यही मुश्किल है। बाहर से स्वतंत्रता को अनुभव नहीं किया जा सकता है केवल प्रेम को और उसे भी करुणा की भांति अनुभव किया जा सकता है। और मानव इतिहास के लिए यह बहुत कठिन घटनाओं में से एक है क्योंकि उनकी स्वतंत्रता से समाज में असहजता निर्मित होती है और उनके प्रेम को करुणा के रूप में अनुभव किया जाता है–इसलिए ऐसे लोगों के बारे में समाज हमेशा विभाजित हो जाता है।

जैसे कि क्राइस्ट– किसी ने उस असहजता को अनुभव किया जो उन्होंने निर्मित कर दी है। और ये वे ही लोग हैं जो समाज में अच्छी तरह से स्थापित हो चुके हैं, क्योंकि उन्हें किसी करुणा की कोई जरूरत नहीं है। ये वे लोग हैं जो समाज में अपना स्थान ठीक तरह से बना चुके हैं, जो सोचते हैं कि उनको प्रेम स्वास्थ्य, संपत्ति, सम्मान सभी कुछ मिल चुका है। इसलिए जब क्राइस्ट वहां होते हैं तो ये लोग जिनके पास कुछ है, उनके विरोधी हो जाएंगे क्योंकि वे उनके लिए असहजता निर्मित कर रहे होंगे और जिनके पास कुछ नहीं है, वे उनके समर्थक हो जाएंगे क्योंकि वे उनकी करुणा को महसूस करेंगे। उन्हें प्रेम की आवश्यकता है। किसी ने उनसे प्रेम नहीं किया है यह व्यक्ति उन से प्रेम करता है। वे लोग असहजता महसूस नहीं करेंगे। क्योंकि उनके पास ऐसा कुछ भी नहीं है जिसके कारण वे लोग असहजता अनुभव करें–उनके पास खोने के लिए कुछ भी नहीं है।

तो जब ऐसा व्यक्ति मर जाता है, तो प्रत्येक व्यक्ति उसकी करुणा को अनुभव करता है, क्योंकि अब वहां कोई असहजता नहीं है, अब जरा भी असहजता नहीं है। अब समाज में सम्मानित दशा वाले लोग, वे लोग जो परंपरावादी हैं विश्रांति अनुभव करेंगे। वे उनकी पूजा करेंगे। क्योंकि जब वह जीवित होता है, तो वह एक विद्रोही होता है। वह इसलिए विद्रोही नहीं है कि समाज कुछ गलत है। वह विद्रोही है क्योंकि वह मुक्त है।

तुम्हें समझ लेना चाहिए वह इसलिए विद्रोही नहीं हैं कि समाज में कुछ गलत है। ऐसे विद्रोही केवल राजनैतिक ही होते हैं। इसलिए जब कोई समाज बदलता है, तो वह व्यक्ति जो विद्रोही था परंपरावादी व्यक्ति बन जाता है। उन्नीस सौ सत्रह में यही हुआ। वे ही विद्रोही संसार के सबसे बड़े क्रांति-विरोधी केंद्र बन गए। स्टैलिन या माओ वे लोग जिस क्षण सत्ता में आए, वे सबसे बड़े क्रांति-विरोधी नेता बन गए क्योंकि वे विद्रोही नहीं थे वे एक विशेष स्थिति के विरोध में विद्रोह कर रहे थे। जब उस स्थिति को हटा दिया गया, तो वे भी उसी नाव में सवार हो गए।

लेकिन कोई क्राइस्ट सदा विद्रोही होता है। किसी विशेष स्थिति में वह विद्रोही हो, ऐसा नहीं होता है। न ही कोई ऐसी स्थिति है जिसमें उसका विद्रोह कुछ कम हो जाता है। यह विद्रोह कभी कम नहीं होगा, क्योंकि यह विद्रोह किसी के विरोध में नहीं है। यह इसलिए है कि उसके पास मुक्त चेतना है। इसलिए जहां कहीं भी उसे अवरोध महसूस होता है, वह विद्रोही हो जाएगा। विद्रोह उसकी आत्मा है। इसलिए अगर जीसस आज भी आ जाएं, तो ईसाई उनके साथ विश्रांति में नहीं रह पाएंगे। वे रह ही नहीं सकते। वे उनके साथ उसी ढंग से व्यवहार करेंगे जैसा कि यहूदियों ने जीसस के साथ किया था, क्योंकि अब ईसाई एक बनी बनाई लीक पर चल रहे हैं। पोप भी किसी और ढंग से व्यवहार नहीं कर सकता, उसका रंग ढंग भी पूर्व-निर्धारित है। और बाजार में खडे हुए जीसस फिर से पूरे मामले को अस्त-व्यस्त कर देंगे। रोम (वैटिकन) जीसस के साथ नहीं होगा। जीसस के साथ रोम संभव नहीं है, जीसस के साथ पोप संभव नहीं है। जीसस के बिना ही वह संभव हो सकता है।

लेकिन करुणा भी अनुभव की जाती है। यहां एक और बात है जो समझ लेनी चाहिए। प्रत्येक शिक्षक जो विद्रोही शिक्षक के रूप में जाना गया है, उससे बनने वाली परंपरा कभी विद्रोही नहीं होती है। यह केवल उसकी करुणा से संबंधित होती है। यह कभी उसके विद्रोह से संबंधित नहीं होती, कभी उसकी स्वतंत्रता से संबंधित नहीं होती, केवल उसके प्रेम से संबंधित होती है। तब यह नपुंसक बन जाती है क्योंकि प्रेम स्वतंत्रता के बिना अस्तित्व में नहीं रह सकता, प्रेम विद्रोह के बिना अस्तित्व में नहीं रह सकता।

तुम बुद्ध की तरह प्रेमपूर्ण तब तक नहीं हो सकते हो जब तक तुम बुद्ध की तरह मुक्त न हो। इसलिए एक बौद्ध भिक्षु बस करुणावान होने का प्रयास कर रहा है लेकिन करुणा नपुंसक है क्योंकि वहां पर मुक्ति नहीं है। और मुक्ति ही स्रोत है। महावीर करुणावान हैं, लेकिन जैन मुनि जरा भी करुणावान नहीं है। वह बस कोशिश करता है, वह बस अहिंसा और करुणा आदि का अभिनय करने का प्रयास कर रहा है, लेकिन वह जरा भी करुणावान नहीं है। वह हर प्रकार से निर्दयी है वह हर प्रकार से चालाक मक्कार है। अपनी करुणा और उसके दिखावे में भी वह चालाक है। वहां कोई भी करुणा नहीं है क्योंकि वहां पर स्वतंत्रता नहीं है।

इसलिए मेरे लिए जहां कहीं भी चेतना में स्वतंत्रता की घटना घटती है तो भीतर स्वतंत्रता की अनुभूति होती है और बाहर प्रेम की अनुभूति होती है। तब प्रेम घृणा का उलटा नहीं होता है। यह बस दोनों की प्रेम और घृणा की अनुपस्थिति है। यह कठिन है इसीलिए मुझे दोनों प्रकार के प्रेम के लिए प्रेम शब्द का उपयोग करना पड़ता है। यह प्रेम-प्रेम और घृणा दोनों की अनुपस्थिति है। पूरा द्वैत ही अनुपस्थित है। यह आकर्षण और विकर्षण दोनों की अनुपस्थिति है।

इसलिए उस व्यक्ति के साथ जो मुक्त और प्रेमपूर्ण है, यह तुम पर निर्भर है कि तुम उसके प्रेम को स्वीकार कर सकते हो या नहीं। हमारे साथ ऐसा नहीं है। अगर मैं तुमको प्रेम करता हूं तो ऐसा नहीं है लेने वाला कितना प्रेम ले सकता है यह सदा देने वाले पर निर्भर है कि कितना वह अधिक दे सकता है। आमतौर पर हम प्रेम करते हैं तो प्रेम उस व्यक्ति पर निर्भर करता है जो प्रेम दे रहा है वह नहीं भी दे सकता है। लेकिन जब ऐसा प्रेम घटित होता है, तो कितना प्रेम तुम ले सकते हो यह देने वाले पर निर्भर नहीं करता है। यह तुम पर निर्भर करता है

क्योंकि देने वाला पूरी तरह से खुला है और प्रतिपल दे रहा है। जब कोई भी उपस्थित नहीं है तब भी यह प्रेम प्रवाहित हो रहा है।

यह बस एक फूल की तरह है–एक घने जंगल में खिला हुआ एक फूल– कोई भी वहां होकर नहीं गुजर रहा है। हो सकता है कि कोई जानता भी न हो कि यह खिल गया है और अपनी सुगंध दे रहा है। लेकिन वह फूल सुगंध देगा क्योंकि यह किसी व्यक्ति विशेष को नहीं दी जा रही है, यह बस दी जा रही है यह बहुत गहरी घटना है। फूल खिल गया है इसलिए सुगंध वहां पर है। कोई वहां से होकर निकल सकता है या नहीं यह असंगत है। यदि कोई वहां से होकर निकलता है और वह सक्षम है संवेदनशील है तो वह इसे ग्रहण कर सकता है। अगर कोई वहां से होकर निकलता है और वह पूरी तरह से मृत है, संवेदनहीन है, तो हो सकता है कि वह जान भी न पाए कि सड़क के किनारे, उस ओर कोई फूल खिला हुआ था।

इसलिए जब प्रेम वहां होता है, तो तुम इसे ले सकते हो या नहीं ले सकते हो। जब प्रेम नहीं हो, तो दूसरा इसको तुम्हें दे सकता है या नहीं दे सकता है। और दिव्य प्रेम या अदिव्य प्रेम जैसा कोई विभाजन नहीं है। प्रेम दिव्य है, इसलिए वह सभी कुछ जो हम कह सकते हैं–प्रेम दिव्य है प्रेम भगवत्ता है।

शेष बात हम कल करेंगे।

बारहवां प्रवचन

तर्क और तर्कातीत का संतुलन

ओशो पश्चिम की युवा पीढ़ी विद्रोह क्यों कर रही है और पश्चिम से इतने अधिक युवा लोग क्यों पूरब के धर्म और दर्शन में उत्सुक होते जा रहे हैं क्या इस पर आप कुछ कहेंगे? क्या आपके पास पश्चिम के लिए कोई विशेष संदेश है?

मन एक बहुत विरोधाभासी व्यवस्था है। मन ध्रुवीय विपरीतताओं में कार्य करता है। लेकिन हमारी सोच हमारी सोचने की तर्कयुक्त विधि सदा एक भाग को चुन लेती है और दूसरे को इनकार कर देती है। तो तर्क एक अ-विरोधाभासी तरीके से आगे बढ़ता है और मन विरोधाभासी तरीके से कार्य करता है। जीवन विपरीतताओं में कार्य करता है, और तर्क एक दिशा में कार्य करता है–विपरीतताओं में नहीं।

उदाहरण के लिए मन में दो संभावनाएं हैं अतिशय क्रोधित हो जाना और अतिशय मौन हो जाना। यदि तुम क्रोधित हो सकते हो तो इसका अभिप्राय यह नहीं है कि तुम दूसरी अति तक अक्रोधित नहीं हो सकते हो। अगर तुम उलझन में हो सकते हो, तो इसका अर्थ यह नहीं है कि तुम मौन नहीं हो सकते हो। मन दोनों ढंगों से कार्य करता रह सकता है। अगर तुम प्रेमपूर्ण हो सकते हो तो तुम घृणा से परिपूर्ण भी हो सकते हो। कोई दूसरे को इनकार नहीं करता है।

लेकिन तर्क में विचार-प्रक्रिया में अगर हम सोचते हैं कि कोई व्यक्ति प्रेमपूर्ण है, तो हम सोचने लगते हैं कि वह घृणा करने में समर्थ नहीं हो सकता है। और हम अपने बारे में भी इसी ढंग से सोचने लगते हैं। यह एक भाग है। तो अगर तुम प्रेम करते रहो, तो तुम सोचना शुरू कर देते हो कि मैं घृणा कर पाने में असमर्थ हूं और तब घृणा भीतर एकत्रित होती चली जाती है और जब तुम अपने प्रेम की पराकाष्ठा पर पहुंचते हो, सभी कुछ छिन्न भिन्न हो जाता है और तुम घृणा में गिर पड़ते हो। न केवल निजी मन इस तरह से कार्य करता है, बल्कि समाज का मन भी ऐसे ही कार्य करता है।

उदाहरण के लिए पश्चिम तर्कयुक्त विचार-प्रक्रिया के शिखर पर पहुंच गया है। अब मन का अतर्कयुक्त भाग बदला लेगा। मन के तर्करहित भाग को अभिव्यक्ति से वंचित रखा गया है, इसलिए बीते हुए इन पचास सालों से मन का तर्करहित भाग अनेक उपायों से बदला ले रहा है–कला के द्वारा काव्य के द्वारा, नाटक द्वारा साहित्य द्वारा, दर्शनशास्त्र द्वारा, और अब जीने के ढंग से। इसलिए युवा पीढ़ी का यह विद्रोह वास्तव में मन के तर्कातीत भाग का अत्याधिक तर्क शीलता के खिलाफ विद्रोह है।

पूरब यहां पर सहायक हो सकता है, क्योंकि पूरब दूसरे भाग तर्कातीत के साथ रह चुका है। और पूरब भी इसके शिखर पर पहुंच गया है। इसलिए अब पूरब की युवा पीढ़ी धर्म के स्थान पर साम्यवाद में अधिक उत्सुक है पूरब का युवा अब तर्कातीत जीवन-शैली के स्थान पर तर्कयुक्त चिंतन में ज्यादा उत्सुक है।

तो जैसा कि मैं इसको देखता हूं अब पेंडुलम पलट जाएगा। पूरब पश्चिम बन जाएगा और पश्चिम पूरब बन जाएगा।

जब कभी तुम मन के एक भाग के शिखर पर पहुंच जाते हो, तुम्हें वापस लौटना ही पड़ता है। इतिहास इसी तरह से कार्य करता है। तो अब पश्चिम में ध्यान अधिक अर्थपूर्ण हो जाएगा। काव्य एक नया रूप ग्रहण कर लेगा और विज्ञान का पतन हो ही जाएगा। इसलिए आधुनिक युवा पीढ़ी तकनीक-विरोधी और आत्यंतिक रूप

से विज्ञान- विरोधी हो जाएगी। और पश्चिम का आधुनिक युवा संस्कृति विरोधी भी होगा और सभ्यता विरोधी भी। यह बस एक प्राकृतिक प्रक्रिया है।

और हम अभी तक ऐसा व्यक्तित्व विकसित करने में समर्थ नहीं हो पाए हैं जिसमें दोनों ध्रुवीयताएं निहित हों जो न पूरब का हो और न पश्चिम का। हमने सदा खंडों को चुना है मन के एक भाग को चुना है और हम और उस भाग को विकसित करने में संलग्न हो जाते हैं और दूसरा भाग भूखा अभावग्रस्त बना रहता है। और तब विद्रोह होना ही है। और सभी कुछ जो हमने बनाया था, छिन्न भिन्न हो जाएगा और मन दूसरी ओर चला जाएगा। सारे इतिहास की अब तक की यही कार्यप्रणाली रही है पूरब और पश्चिम दोनों में ही यही द्वंद्वात्मक कालचक्र चलता रहा है।

इसलिए पश्चिम में सोच-विचार की तुलना में अब ध्यान अधिक अर्थपूर्ण हो गया है क्योंकि ध्यान का अर्थ है निर्विचार। इसलिए झेन अधिक अच्छा लगेगा, बौद्ध धर्म अधिक आकर्षक लगेगा योग में और अधिक उत्सुकता उत्पन्न होगी। ये सभी जीवन के प्रति तर्कातीत दृष्टिकोण हैं। उनका जोर धारणाएं निर्मित करने पर नहीं है वे सिद्धांतों पर, धर्मशास्त्रों पर बल नहीं देते हैं। उनका प्रयास अस्तित्व में गहरे उतर कर उसका स्वाद लेने का है सोच-विचार का नहीं। इसलिए मैं सोचता हूं कि जितनी अधिक तकनीक विकसित होती है और मन की पकड़ गर्दन को जकड़ने लगती है उतनी ही ज्यादा संभावना हो जाती है कि दूसरा ध्रुव आ रहा होगा।

तो पश्चिम में युवाओं का विद्रोह बहुत अर्थपूर्ण, बहुत महत्वपूर्ण है, अत्यधिक महत्वपूर्ण है। यह परिवर्तन का, समग्र चेतना के परिवर्तन का ऐतिहासिक बिंदु है। अब पश्चिम वैसा नहीं रह पाएगा जैसा कि यह रहा है। अब यह वैसा नहीं रह सकता है। एक गहन संकट का, एक चरम परिवर्तन का समय आ गया है। तुम और आगे नहीं जा सकते हो। तुम्हें किसी और दिशा में जाना पड़ेगा क्योंकि अब पहली बार समाज समृद्ध हो गया है। व्यक्ति पहले भी समृद्ध रहे हैं लेकिन पूरा समाज कभी समृद्ध नहीं रहा है। अब पूरा समाज समृद्ध है। और जब कोई समाज समृद्ध हो जाता है तो संपत्ति अपना अर्थ खो देती है। गरीब समाज में ही संपत्ति अर्थपूर्ण होती है। संपदा गरीब समाज में महत्वपूर्ण होती है। वहां पर भी जब कोई वास्तव में समृद्ध हो जाता है, तो वह ऊब जाता है। अपने परिवार की धन-संपदा से बुद्ध ऊब चुके हैं वे बस ऊबे हुए हैं। कोई व्यक्ति जितना ज्यादा संवेदनशील होता है उतनी ही जल्दी से वह ऊब जाता है। बुद्ध बस ऊबे हुए हैं, वे सभी कुछ छोड़ देते हैं।

अब बुद्ध पश्चिम को आकर्षित कर रहे हैं और आधुनिक पश्चिमी युवा की पूरी रुचि संपत्ति के त्याग पर है। वे त्याग कर रहे हैं और वे तब तक त्याग करते रहेंगे जब तक कि पूरा समाज गरीब न हो जाए। वे उस समय तक छोड़ते रहेंगे जब तक कि सारा समाज गरीब नहीं हो जाता है, क्योंकि छोड़ने का यह आदोलन यह त्याग करने की वृत्ति केवल एक समृद्ध समाज में ही संभव है। लेकिन अगर यह छोड़ना अति पर चला जाता है तो समाज का पतन हो जाता है। तब तकनीक की जरा भी प्रगति नहीं होगी और अगर ऐसा ही चलता रहा तो पश्चिम में तुम पूरब को निर्मित कर दोगे।

और पूरब में अब वे दूसरी अति पर जा रहे हैं, वे पश्चिम निर्मित कर लेंगे। वस्तुत: अगर हम भविष्य को पढ़ सकें तो पूरब बस पश्चिम में बदल रहा है। भविष्य को देख पाना कठिन होता है लेकिन उसके कदमों की आहट सुनी जा सकती है–और पश्चिम पूरब में बदल रहा है। लेकिन बीमारी वैसी ही बनी रहती है क्योंकि जैसा कि मैं इसे देखता हूं यह बीमारी है मन का विभाजन।

हमने मनुष्य के मन को कभी उसकी पूर्णता में नहीं खिलने दिया। हमने सदा एक भाग को दूसरे के विरोध में दूसरे की कीमत पर चुन लिया है। सारी पीड़ा यही रही है। हमने मनुष्य के मन की पूर्णता को स्वीकार नहीं किया है।

इसलिए मैं न तो पूरब का हूं न पश्चिमी का। मैं दोनों के विरोध में हूं। मैं दोनों के विरोध में हूं क्योंकि मैं कहता हूं कि ये आशिक दृष्टिकोण हैं–इसलिए कभी तुम्हें एक दृष्टिकोण आकर्षित कर सकता है लेकिन यह आकर्षण आशिक है और यह एक समग्रता के एक समग्र मन के विकसित हो पाने में सहायक नहीं हो सकता है।

तो मेरे अनुसार न तो पूरब को चुना जाना है और न ही पश्चिम को वे दोनों असफल हो चुके हैं। पूरब धर्म को चुन कर असफल हो गया है और पश्चिम विज्ञान को चुन कर असफल हो रहा है। जब तक कि हम दोनों को नहीं चुन लेते हैं इस दुम्बक्र से बाहर निकल पाने का कोई उपाय नहीं है।

हम बदल सकते हैं, हम परिवर्तन कर सकते हैं–और यह अजीब बात है। अगर तुम जापान में बौद्ध धर्म के बारे में बात करो, तो कोई युवा उसे सुनने को तैयार नहीं है। वे प्रौद्योगिकी में उत्सुक हैं और पश्चिम का युवा झेन बौद्ध धर्म को जानना. चाहता है। भारत में नई पीढ़ी धर्म में बहुत कम उत्सुक है। उनको अर्थशास्त्र में अधिक रुचि है, राजनीति शास्त्र में अधिक रुचि है, प्रौद्योगिकी, विज्ञान, अभियांत्रिकी-धर्म के अतिरिक्त हर बात में रुचि है। और पश्चिम का युवा अब वास्तव में प्रौद्योगिकी में उत्सुक नहीं है। उनकी रुचि अब विज्ञान में, प्रगति में नहीं है। वे अभी और यहीं जी लेने में रुचि रखते हैं। वे भविष्य के आदर्शवादों में–समाजवाद आदि में रुचि नही रखते हैं। पश्चिम के युवाओं के नये और प्रयोगधर्मी वर्ग की उत्सुकता धर्म में है पूरब के नये और प्रयोगधर्मी की उत्सुकता विज्ञान में है। और यह बस बोझ को बदल लेने जैसा है–और फिर वही भ्रम।

मेरी रुचि संपूर्ण मन के साथ है। मैं पूर्ण मन में उत्सुक हूं–कैसे एक ऐसा मानवीय मन संभव हो सकता है, ऐसा मन में जो न पूरब का हो और न पश्चिम का, बल्कि बस मानवीय हो–एक सार्वभौमिक मन। और यह एक बहुत कठिन समस्या है, क्योंकि मन के एक भाग के साथ रहना बहुत आसान है। तुम साफ सुथरे ढंग से, स्पष्टता से, गणितीय ढंग से जी सकते हो। अगर तुम मन के दोनों भागों के साथ जीना चाहते, हो तो तुमको एक बहुत असंगत जीवन जीना पड़ेगा। निसंदेह यह जीवन सतह पर तो असंगत ही होगा। लेकिन एक गहनतर तल पर तुम्हारे जीवन में एक सुसंगतता, एक आध्यात्मिक लयबद्धता होगी।

और जैसा कि मैं देखता हूं जब तक किसी व्यक्ति में विपरीत ध्रुवीयता न हो वह आध्यात्मिक रूप से दरिद्र बना रहता है। किंतु दोनों ध्रुवों का जीवन जीकर तुम समृद्ध हो जाते हो।

उदाहरण के लिए, अगर तुम केवल एक कलाकार हो और तुम्हारे पास थोड़ा सा भी वैज्ञानिक मन नहीं है तो तुम्हारी कला दरिद्र होनी ही है। इस कला में समृद्धि नहीं हो सकती है क्योंकि समृद्धि केवल तब आती है जब विपरीत भी वहां हो। जैसे कि ठीक इस समय अगर इस कमरे में केवल पुरुष ही बैठे हुए हों– तो कमरे में कुछ कमी है। जिस क्षण कोई स्त्री इस कमरे में प्रवेश करती है कमरा आध्यात्मिक रूप से समृद्ध हो जाता है। अब ध्रुवीय विपरीतताएं यहां पर हैं और ध्रुवीय विपरीतताएं मिल कर विराटतर संपूर्णता निर्मित करती हैं।

इसलिए मेरे लिए मन को तरलता में गति कर पाने के योग्य होना चाहिए। इसे कहीं पर ठहर नहीं जाना चाहिए। अगर कोई गणितश कला के संसार में भी जा सके तो वह एक समृद्ध गणितज्ञ हो सकता है। कला के ये संसार बिलकुल गणित-विहीन हैं, बल्कि गणित के विपरीत भी हैं। लेकिन अगर कोई गणितज्ञ गतिमय हो सके अगर उसका मन निश्चितताओं से हट पाने के लिए स्वतंत्र हो और वह फिर लौट कर गणित पर आ जाए तो वह एक समृद्ध गणितज्ञ होगा– क्योंकि विपरीतताओं के माध्यम से एक वर्ण संकरता घटित हो जाती है और विपरीतताओं के माध्यम से तुम चीजों को बहुत से अलग-अलग आयामों में देखने लगते हो, तब पूरा परिप्रेक्ष्य समृद्धतर हो ही जाता है।

इसलिए मेरे अनुसार व्यक्ति के पास एक वैज्ञानिक प्रशिक्षण के साथ एक धार्मिक मन होना चाहिए, या धार्मिक अनुशासन के साथ एक वैज्ञानिक मन होना चाहिए। और मैं इसके भीतर छिपी कोई असंभावना नहीं

देखता हूं। बल्कि इसके विपरीत, मैं सोचता हूं कि अगर तुम गतिमय हो सको, तो मन अधिक जीवंत हो जाएगा। इसलिए मेरे लिए ध्यान का अर्थ है एक गहरी गतिशीलता, निर्धारित ढांचों से स्वतंत्रता।

उदाहरण के लिए अगर मैं बहुत ज्यादा तर्कनिष्ठ हो जाऊं तो मैं काव्य को समझने में असमर्थ हो जाता हूं। तर्क एक निर्धारित ढांचा बन जाता है। तो जब मैं कविता पड़ता हूं या कविता सुनता हूं तो यह निर्धारित ढांचा काम करने लगता है। तब वह कविता असंगत प्रतीत होती है ऐसा नहीं है कि यह असंगत है बल्कि इसलिए असंगत लगती है कि मेरे मन का ढांचा तर्क के साथ बना हुआ है। और तर्क के उस दृष्टिकोण से काव्य असंगत है। अगर मेरा ढांचा काव्य के साथ बन जाता है तो तर्क बस एक उपयोगी चीज भर बन जाती है जिसमें कोई गहराई नहीं है और मैं इसके प्रति बंद हो जाता हूं।

और इतिहास के पूरे काल में यही होता रहा है– प्रत्येक कालखंड में, प्रत्येक राष्ट्र में, संसार के प्रत्येक भाग में, प्रत्येक संस्कृति और सभ्यता में सदा ही मन का एक भाग चुन लिया गया है और उसी पर जोर दिया गया है, और उसी के चारों ओर एक व्यक्तित्व निर्मित कर दिया गया है। वह व्यक्तित्व दरिद्र बना रहा उसमें बहुत कमी है। न तो पूरब आध्यात्मिक रूप से समृद्ध रहा है और न पश्चिम। वे हो ही नहीं सकते हैं। समृद्धि विपरीतताओं के माध्यम से, एक आंतरिक संवाद, भीतर की द्वंद्वात्मकता के माध्यम से आती है। इसलिए मेरे लिए न तो पूरब चुनने योग्य है और न ही पश्चिम। मेरे लिए एक अलग तरह का मन पूरी तरह से अलग गुणधर्म वाला मन चुना जाना चाहिए। और उस गुणधर्म वाले मन का अभिप्राय है, व्यक्ति बिना कोई चुनाव किए अपने साथ विश्रांति में है।

उदाहरण के लिए एक वृक्ष विकसित होता है इसके बारे में हम चुनाव कर सकते हैं। हम इसकी सारी शाखाए काट सकते हैं और हम वृक्ष को केवल एक ही दिशा में बढ़ने दे सकते हैं इसकी एक शाखा विकसित होगी। यह एक दरिद्र वृक्ष होगा बहुत दरिद्र, और बहुत कुरूप और अंत में यह वृक्ष बहुत गहरी कठिनाई में फंस ही जाएगा क्योंकि एक अकेली शाखा बढ़ नहीं सकती है। यह केवल दूसरी शाखाओं के साथ गहरे संबंध के कारण ही विकसित हो सकती है। यह तभी विकसित हो सकती है जब कि यह शाखाओं के परिवार में हो। और एक क्षण आएगा ही जब इस शाखा को लगेगा कि यह अपने विकास के उच्चतम बिंदु पर पहुंच गई है। अब यह और अधिक विकसित नहीं हो सकती है। किसी भी वृक्ष को वास्तविक रूप से समृद्ध और विकसित होने के लिए सभी दिशाओं में विरोधी दिशाओं में विकसित होना चाहिए। इसे प्रत्येक दिशा की ओर बढ़ना चाहिए। केवल तब यह वृक्ष समृद्ध, सबल और बहु आयामी होगा।

मेरे लिए मनुष्य की आत्मा का विकास एक वृक्ष की भांति सभी दिशाओं में होना चाहिए। और वह पुरानी अवधारणा कि हम विपरीत आयामों में विकसित नहीं हो सकते, छोड़ दी जानी चाहिए। हम विकसित हो सकते हैं वस्तुत: हम केवल तभी विकसित हो सकते हैं जब हम विपरीत दिशाओं में विकसित हों। लेकिन अभी तक मामला ऐसा नहीं था। अभी तक हमने मनुष्य के मन में भी एक विशेषज्ञता निर्मित करने की कोशिश की है–व्यक्ति को केवल एक विशेष दिशा में ही विकसित होना चाहिए। तब कुछ कुरूपता घटित हो जाती है। व्यक्ति एक विशिष्ट दिशा में विकसित हो जाता है। किंतु तब उस में हर बात की कमी रहती है। वह एक शाखा बन जाता है वृक्ष नहीं वह वृक्ष नहीं बन पाता है। और यह शाखा दरिद्र होगी ही, यह शाखा दरिद्र होने के लिए बाध्य है।

हम न केवल मन की शाखाएं काटते रहे हैं बल्कि हम मन की जड़ें भी काटते रहे हैं। हम केवल एक जड़ और एक शाखा को ही विकसित होने देते हैं, तो इससे एक बहुत ही भूखा सा मनुष्य पूरे संसार में निर्मित हो गया है। पूरब में, पश्चिम में सब कहीं–बहुत ही भूखा सा मनुष्य निर्मित हो गया है। और पूरब सदा पश्चिम से

आकर्षित रहा है और पश्चिम पूरब की ओर आकृष्ट है क्योंकि मैं उसकी ओर आकृष्ट होता हूं जिसकी मुझ में कमी है और तुम उस की ओर आकर्षित होगे जिसकी तुम में कमी है। अगर तुम्हारे भीतर धर्म की कमी है तो जब कभी तुम्हें धर्म की भूख लगती है तभी तुम पूरब की ओर आकर्षित हो जाते हो। और जब पूरब को गरीबी, दरिद्रता की समस्याएं, बीमारियां रोग सताने लगते हैं तो पूरब पश्चिम की ओर उसके विज्ञान तकनीक धन की प्रचुरता दवाइयों और सभी कुछ के कारण आकृष्ट होने लगता है।

शरीर की जरूरतों के कारण पूरब पश्चिम की ओर आकृष्ट होने लगता है। और आत्मा की जरूरतों के कारण पश्चिम पूरब की ओर आकर्षित होने लगता है। लेकिन हम स्थितियां बदल सकते हैं और बीमारी वही की वही बनी रहती है। तो अब स्थितियां बदल देने का प्रश्न नहीं है। अब यह सारे परिप्रेक्ष्य को बदलने का प्रश्न है। यह पूरब को पश्चिम में बदल देने का प्रश्न नहीं है। अब यह सारे अतीत को नये भविष्य में बदल देने का प्रश्न है।

सारा अतीत मनुष्य की संभावनाओं को आशिक रूप से स्वीकार करने का रहा है। हमने कभी संपूर्ण अस्तित्व को स्वीकार नहीं किया है। कहीं पर कामवासना स्वीकृत नहीं है तो हम किसी चीज से इनकार करते हैं। कहीं पर संसार स्वीकृत नहीं है तो हम किसी चीज से इनकार करते हैं। कहीं पर भावना को स्वीकार नहीं किया जाता है तो हम किसी चीज से इनकार करते हैं।

यह इनकार हमारी समस्या रहा है और हम कभी इतने ताकतवर नहीं हो पाए कि हम प्रत्येक उस चीज को जो मानवीय है निंदा के बिना स्वीकार कर सकें और मनुष्य को हर दिशा में विकसित होने दें। और तुम जितना ज्यादा विपरीत दिशाओं में विकसित होते हो तुम्हारा विकास और समृद्धि और आंतरिक प्रचुरता उतनी ही अधिक हो जाएगी। और परिणाम में अतिशयता को आना ही है।

इसलिए मेरे पास पश्चिम से या पूरब से कहने के लिए कुछ खास बात नहीं है। जो कुछ मैं कहना चाहता हूं वह मानवीय मन से कह रहा हूं कि पूरे परिप्रेक्ष्य को बदल डालो। परिवर्तन को अतीत से भविष्य की ओर होना है–न कि इस वर्तमान से उस वर्तमान की ओर। और जब तक कि हम इस बात को न देख लें कि नये मनुष्य का विकास मुश्किल है और समस्या यह है कि नया मनुष्य कैसे निर्मित होगा।

यह समस्या विराट है जटिल है। क्योंकि यह खंड-खंड होना बहुत गहराई तक चला गया है। मैं अपने क्रोध को स्वीकार नहीं कर सकता मैं अपनी कामवासना को स्वीकार नहीं कर सकता, मैं अपने शरीर को स्वीकार नहीं कर सकता, मैं अपने आप को अपनी परिपूर्णता में स्वीकार नहीं कर सकता। कहीं न कहीं किसी बात से इनकार किया जाना है और उसे त्याग देना है। कुछ है जो पाप है, कुछ है जो बुरा है कुछ है जो अशुभ है। इसलिए मैं शाखाओं को काटता चला जाता हूं और अंत में मैं एक वृक्ष नहीं रहता, एक जीवित जीव नहीं रहता, बस मुर्दा होता हूं क्योंकि उन शाखाओं के बढ़ जाने का भय, जिनको मैंने इनकार कर रखा है... कहीं वे फिर से न आ जाएं बना रहता है। इसलिए मैं भयभीत हो जाता हूं सब कहीं से दमित और भयभीत। तब एक स्थ्याता एक उदासी, एक मौत, मेरे भीतर बैठ जाती है।

इस प्रकार से हम एक ऐसा आशिक जीवन जीए चले जाते हैं, जो जीवन के बजाय मृत्यु के ज्यादा निकट है। मनुष्य की संपूर्ण संभावना का यह स्वीकार भाव और प्रत्येक चीज को बिना किसी असंगतता, बिना किसी विरोधाभास की अनुभूति के उसके उत्कर्ष तक वास्तविक रूप से ले जाना, अगर मैं प्रमाणिक रूप से क्रोध नहीं कर सकता हूं तो मैं प्रेमपूर्ण भी नहीं हो सकता हूं। लेकिन अभी तक ऐसा दृष्टिकोण नहीं रहा है। हम सोचते रहे हैं कि जो व्यक्ति क्रोध करने में असमर्थ है वह अधिक प्रेमपूर्ण होता है।

ओशो मान लें कि एक वृक्ष दीवाल के निकट विकसित हो रहा है। वहां पर एक दीवाल है। उसकी शाखाएं बढ़ नहीं सकतीं क्योंकि वहां पर दीवाल है। यह दीवाल एक समाज हो सकता है या उसके चारों ओर उपस्थित परिस्थितियां हो सकती हैं। तो वह वृक्ष कैसे विकसित हो सकता है?

हां मैं समझता हूं। दीवालें बहुत सी हैं। लेकिन उन दीवालों को वृक्षों ने ही बनाया है किसी और ने नहीं। दीवालें हैं लेकिन उन दीवालों को किसी और ने नहीं थोप। है, उन्हें वृक्षों ने ही बनाया है और वृक्ष उन दीवालों को सहारा भी देते रहे हैं। तो यह उनका सहयोग ही है जिसके माध्यम से दीवालों का अस्तित्व है। जिस क्षण वृक्ष उन्हें सहयोग देने को, उन्हें बनाने को राजी नहीं होते हैं वे दीवालें ढह जाएंगी वे चकनाचूर हो जाएंगी वे बस खो जाएंगी।

वे दीवालें मनुष्य-जाति के चारों ओर बनी हुई हैं, वे हमारा ही निर्माण हैं और हमने उन्हें कुछ अवधारणाओं, कुछ दर्शनशास्त्रीय दृष्टिकोणों के कारण बनाया है। हम ने उन दीवालों को अपने मानवीय मन के दृष्टिकोण के कारण बनाया है। उदाहरण के लिए मुझे अपने बच्चे को क्रोधित न होना सिखाना चाहिए और यह इस अवधारणा के कारण होता है कि अगर वह क्रोधित हो जाता है या वह और-और क्रोध की अनुभूति में रहता है, तो वह प्रेमपूर्ण बच्चा नहीं रहेगा। इसलिए मैं दीवालें निर्मित करता हूं कि उसे क्रोधित नहीं होना चाहिए–उसे अपने क्रोध का दमन करना चाहिए–बिना यह जाने कि अगर वह अपने क्रोध का दमन करता है तो इसके साथ ही उसकी प्रेम कर पाने की सामर्थ्य नष्ट हो जाती है। वे विरोधी नहीं हैं। वे दो शाखाएं हैं। अगर तुम एक को काट देते हो, तो दूसरी दरिद्र हो जाती है क्योंकि इन सभी शाखाओं में एक वृक्ष का ही रस बहता है।

इसलिए अगर मैं अपने बच्चे को एक बेहतर जीवन के लिए प्रशिक्षित करना चाहे, तो मैं उसे प्रामाणिक रूप से क्रोधित होना सिखा दूंगा। मैं ऐसा नहीं कहूंगा, 'क्रोध मत करो।' मैं कहूंगा, ' जब तुम क्रोध महसूस करो तो प्रमाणिक रूप से और पूरी तरह से क्रोधित हो जाओ और क्रोध के बारे में कोई अपराध भाव अनुभव मत करो। 'क्रोधित न होना सिखाने के बजाय मैं उसको ठीक से क्रोधित होने के लिए प्रशिक्षित करूंगा। और जब कभी भी ठीक समय हो, तो प्रमाणिक रूप से क्रोधित हो जाओ। जब गलत समय हो, तो क्रोधित मत होना। और इसी तरह से मैं उसे बताऊंगा कि जब प्रेम का उचित समय हो, तो प्रामाणिक रूप से प्रेम में हो जाओ, लेकिन जब गलत समय हो तो प्रेम में मत होना। इसलिए प्रश्न क्रोध और प्रेम में से चुनने का नहीं है। प्रश्न तो सही और गलत के बीच का है। क्रोध को अभिव्यक्ति मिलनी ही चाहिए। और एक बच्चा जब वास्तव में क्रोधित होता है, वह सुंदर होता है। उसके ऊपर ऊर्जा और जीवन की एक अचानक आने वाली चमक एक सौंदर्य और ओज आ जाता है। अगर तुम क्रोध को मार देते हो, तो तुम जीवन को मार रहे हो। तब वह अपने सारे जीवन भर बस नपुंसक हो जाएगा। वह जीवित, गतिमय नहीं रह सकता, वह एक मुर्दा लाश की भांति चलता फिरता रहेगा।

इसलिए हम कहें–हम उन धारणाओं को निर्मित किए चले जाते हैं जो दीवालों को निर्मित करती हैं। हम दृष्टिकोण, विचार धाराएं दिए चले जाते हैं जो दीवालें निर्मित करती हैं। ये दीवालें हम पर थोपी नहीं गई हैं हमारा निर्माण हैं वे। और जिस पल हम सजग हो जाते हैं ये दीवालें खो जाएंगी। हमारे कारण वे अस्तित्व में हैं।

लेकिन माना कि वह वृक्ष या वह व्यक्ति बॉयोलॉजिकल कंडीशंस जैविकीय परिस्थितियों के कारण अपंग है। वह बदल नहीं सकता है। ऐसा नहीं है कि वह बदलना नहीं चाहता बल्कि वह बदल ही नहीं सकता। या उदाहरण के लिए एक पागल व्यक्ति। ऐसे व्यक्ति की अवस्था को आप किस प्रकार से देखते हैं?

वस्तुत: ये लोग अपवाद हैं ये लोग समस्या नहीं हैं। वह आम आदमी जो अपवाद नहीं है वही समस्या है। ये अपवाद समस्या नहीं हैं। हम उनका इलाज कर सकते हैं। जब सारा समाज जीवित है जब सारा समाज जीवित हो तो हम उनका इलाज कर सकते हैं। हम उनका विश्लेषण कर सकते हैं हम उनकी सहायता कर सकते हैं। उनकी सहायता की ही जानी चाहिए अपने आप से वे लोग कुछ भी नहीं कर सकते हैं। परंतु उनकी असमर्थता की अवस्था में भी हमारा समाज एक भूमिका अदा करता है।

उस भूमिका को हटा लिया जाना चाहिए।

उदाहरण के लिए, एक वेश्या का पुत्र तुम्हारे समाज की, तुम्हारी नैतिक धारणाओं के कारण कभी मुक्ति अनुभव नहीं कर सकता है। वह एक गहरे अपराध-बोध की अनुभूति करता रहता है) जिसके लिए वह जरा भी उत्तरदायी नहीं है। तुम्हारा समाज उसके लिए उत्तरदायी है अगर उसकी मां वेश्या थी, तो इसके लिए वह जरा भी उत्तरदायी नहीं है। वह इसमें किस तरह सहायक हो सकता है? वह इसके बारे में क्या कर सकता है? लेकिन तुम्हारा समाज उस बालक के साथ एक भिन्न तरह का व्यवहार किए चला जाता है। उसकी मां के वेश्या होने में उसका उत्तरदायित्व कहीं से भी नहीं है। लेकिन जब तक कामवासना के बारे में हमारा दृष्टिकोण अलग नहीं हो जाता है उसके भीतर वेश्या-पुत्र होने का अपराध-बोध बना रहेगा, ऐसा चलता रहेगा, यह होता रहेगा।

वेश्यावृत्ति की घटना एक अपराध-बोध बन जाती है क्योंकि हमने विवाह को पवित्र मान लिया है। अगर विवाह में कुछ पवित्रता है तो वेश्यावृत्ति को कुछ पापमय होना ही पड़ता है। जब तक कि विवाह को पवित्रता की सीढ़ियों से नीचे नहीं उतारा जाता है, तुम कुछ नहीं कर सकते हो। यह केवल एक भाग है एक अंश। और वेश्या वृत्ति तुम्हारी विवाह की व्यवस्था के कारण ही अस्तित्व में रही है। और जब तक कि विवाह की पूरी व्यवस्था बदल नहीं जाती है यह चलती रहेगी। तो यह वेश्यावृत्ति विवाह की पूरी व्यवस्था का एक हिस्सा भर है।

वस्तुत: जैसा कि मनुष्य का मन है एक स्थायी संबंध अप्राकृतिक है। और थोपा गया स्थायी संबंध वास्तव में एक अपराध है। अगर मैं किसी के साथ रहना चाहता हूं तो मैं साथ रहना जारी रख सकता हूं) लेकिन इसको मेरा चुनाव होना चाहिए। इसके लिए कोई कानून नहीं होना चाहिए। अगर यह कानून है अगर यह मेरे ऊपर थोप। गया है कि अगर आज मैं किसी को प्रेम करता हूं — तो यह प्रकृति में नहीं है ऐसी कोई अंतरनिहित आवश्यकता नहीं है कि कल भी प्रेम वहां पर होगा। ऐसा होने के लिए कोई अंतरनिहित प्राकृतिक व्यवस्था नहीं है। ऐसा हो भी सकता है ऐसा नहीं भी हो सकता है। और जब तुम प्रेम को होने के लिए बाध्य करते हो तो यह और असंभव हो जाता है। यह वहां पर नहीं होगा। तब पिछले दरवाजे से वेश्यावृत्ति भीतर आ जाती है। जब तक कि हमारे पास एक ऐसा समाज न हो जिसमें संबंध मुक्त हैं तब तक हम वेश्यावृत्ति को समाप्त नहीं कर सकते हैं।

लेकिन अगर संबंध जारी रहता है तो तुम्हें अच्छा लग सकता है क्योंकि तुम्हारे संबंध स्थायी हैं, और तुम्हें अच्छा महसूस करना पड़ता है वरना स्थायी संबंधों में रह पाना कठिन हो सकता है। तुम्हारे अहंकार को तो संतुष्ट होना ही चाहिए। तुम्हारे अहंकार को परितृप्त करने के लिए–कि तुम एक वफादार पति हो या एक वफादार पत्नी हो–वेश्यावृत्ति की निंदा करनी ही पड़ती है। तब वेश्या के पुत्र की निंदा करनी पड़ती है, और यह एक रोग बन जाता है।

किंतु ये अपवाद हैं कि कोई चिकित्सीय रूप से या शारीरिक रूप से रुग्ण है। तब हमें उसकी सहायता करनी पड़ती है तब हमें उसका चिकित्सीय रूप से शारीरिक रूप से इलाज करना पड़ता है। लेकिन पूरा समाज

तो इस तरह का नहीं है। निन्यानबे प्रतिशत समाज तो हमारी रचना है वह एक प्रतिशत अपवाद है। वह जरा भी समस्या नहीं है। और अगर निन्यानबे प्रतिशत यह समाज बदल जाता है, तो वह एक प्रतिशत भी इससे प्रभावित हो जाएगा और यह समस्या मिट सकती है।

हम अभी तक यह निर्धारित नहीं कर पाए हैं कि तुम्हारा शरीर किस सीमा तक तुम्हारे मन से प्रभावित होता है। इस बारे में अभी तक हम निश्चित नहीं कर पाए हैं और इसके बारे में हम जितना अधिक जान पाते हैं उतना ही अधिक अनिश्चय में पड़ जाते हैं। शरीर की अनेक बीमारियां गलत मन के कारण हो सकती हैं। गलत मन के साथ तुम रोगों के प्रति अधिक ग्रहणशील हो जाते हो गलत मन के साथ तुम अधिक असुरक्षित हो जाते हो। और हम इसे तब तक नहीं जान सकते हैं जब तक कि हमारा मन मुक्त नहीं है।

वास्तविकता यह है कि अनेक बीमारियां वस्तुत: मानवीय घटनाएं हैं। पशुओं में वे नहीं होती हैं। पशु अधिक स्वस्थ हैं, कम रुग्ण कम कुरूप हैं। ऐसा कोई कारण नहीं है कि मनुष्य अधिक जीवंत अधिक सुंदर, अधिक स्वस्थ न हो सके। पिछले दस हजार वर्षों का यह प्रशिक्षण मन का यह गलत प्रशिक्षण मूल कारण हो सकता है हमारी समस्याओं का मूल कारण हो सकता है।

और जब तुम भी इसी व्यवस्था का हिस्सा हो तो तुम कल्पना भी नहीं कर सकते। तुम ऐसा अनुमान भी नहीं कर सकते हो... अनेक शारीरिक बीमारियां बस एक मन के एक पंगु मन के कारण होती हैं। और हम प्रत्येक व्यक्ति के मन को पंगु बनाने में लगे हुए हैं। और अब मनावैज्ञानिक कहते हैं कि अगर शुरू से खयाल न रखा जाए, तो यह कठिन है–बच्चे के पहले सात साल सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। अगर तुम मन को उस समय पंगु बना सको तो उसे बदल पाना बहुत ही कठिन हो जाता है। लेकिन हम पंगु बनाए चले जाते हैं। हम बहुत अच्छी भावना से मन की काट छांट करके इसको मारते चले जाते हैं। और जब तुम बहुत अच्छी भावना से कुछ गलत करते हो तो यह एक समस्या है, तब यह एक समस्या है।

मन की जड़ों में मनोविज्ञान जितनी गहराई तक नजर डाल रहा है उतना ही प्रतीत होता है कि अनजाने में माता पिता अपराधी हैं अध्यापक लोग और सारी शिक्षा व्यवस्था अनजाने में अपराधी प्रतीत होती है–क्योंकि उन्होंने भी पुरानी पीढ़ियों से कष्ट उठाया है और वे लोग सिर्फ रोग का हस्तांतरण कर रहे हैं।

किंतु अब पहली बार संसार के अनेक भागों में विशेष तौर से पश्चिम में एक संभावना खुल गई है क्योंकि मनुष्य अपनी दिन प्रतिदिन की जरूरतों से मुक्त है, मनुष्य गरीबी के लंबे इतिहास से मुक्त है। तो अब हम विचार कर सकते हैं, हम योजना बना सकते हैं हम परिवर्तन कर सकते हैं। हम मन की नई संभावनाओं के साथ प्रयोग कर सकते हैं। अतीत में यह असंभव था क्योंकि शारीरिक आवश्यकताएं एक बड़ा बोझ थीं। उस समय इसकी कोई संभावना नहीं थी, तब ऐसी संभावना नहीं थी। किंतु अब यह संभावना खुल गई है। और हम लोग एक बहुत गहरी क्रांति के द्वार पर जी रहे हैं, एक ऐसी क्रांति जिसका मानव इतिहास ने कभी सामना नहीं किया है। अब चेतना में एक क्रांति संभव है। जान लेने और समझ लेने की और अधिक सुविधाओं के साथ हम बदल सकते हैं। हम परिवर्तन कर सकते हैं। इसमें समय लगेगा, बहुत से समय की जरूरत होगी, लेकिन संभावना खुली हुई है। लेकिन अगर हम साहस कर सकें अगर हममें हिम्मत हो, तो यह एक वास्तविकता बन सकती है।

अब सारी मनुष्य-जाति दांव पर लगी है। या तो हम अतीत की ओर वापस जाएंगे या एक नये भविष्य की ओर। इसलिए मेरे लिए यह तीसरे विश्वयुद्ध का प्रश्न नहीं है न ही साम्यवाद या पूंजीवाद का प्रश्न है। ये समस्याएं अब तिथि-बाह्य हो चुकी हैं। एक नया संकट एक बहुत जीने मरने जैसा संकट हमारे सामने है। या तो

हम नई चेतना के लिए निर्णय लें और उसके लिए कार्य करें या कि हमें वापस हो जाना है पुराने ढांचों में लौट जाना है।

यह भी संभव है कि हम वापस लौट जाएं क्योंकि मन के साथ यह प्रवृत्ति होती है कि जब भी कभी तुम किसी ऐसी चीज के संपर्क में आ जाते हो जिसका तुम सामना नहीं कर सकते हो तो तुम वापस लौट जाते हो। जैसे कि हम लोग यहां पर हैं और अचानक इस घर में आग लग जाए, तो हम बच्चों की भांति व्यवहार करने लगेंगे। हम पीछे लौट जाएंगे। हम कुछ और कर नहीं सकते! हम कुछ और नहीं कर सकते हैं, इसलिए हम पीछे लौट जाते हैं। हम बच्चों की तरह से व्यवहार करने लगते हैं। यह खतरनाक हो सकता है क्योंकि जब घर में आग लगे तो तुम्हें अधिक परिपक्वता की जरूरत है तुम्हें और अधिक समझ की जरूरत है तुम्हें और अधिक होशपूर्ण ढंग से व्यवहार करने की जरूरत है। लेकिन जब घर में आग लगी हो, तो तुम पांच वर्ष की आयु पर लौट जाओगे और तुम इस तरह से यहां वहां दौड़ने लगोगे कि तुम अपने लिए आग द्वारा निर्मित खतरे से भी बड़ा खतरा निर्मित कर लोगे।

तो इस बात की भी एक दुखद संभावना है और ऐसी नई घटना का सामना करने के कारण–एक नये मानवीय अस्तित्व के निर्माण करने के लिए–हम वापस हो सकते हैं हम पीछे लौट सकते हैं। और ऐसे उपदेशक हैं जो पीछे लौटना सिखाते रहते हैं। वे सदा अतीत से आसक्त रहते हैं वे वापस जाना चाहते हैं ' यह बेहतर था। हमेशा से ऐसे उपदेशक रहे हैं जो मुर्दा अतीत के संदेश वाहक हैं जो हमेशा कहेंगे 'स्वर्ण-युग अतीत में था। इसलिए पीछे लौटो। पीछे लौट चलो। ' लेकिन मेरे लिए, यह आत्मघाती है। हमें भविष्य की ओर जाना ही चाहिए भले ही यह कितना दुष्कर हो और भले ही कितना जोखिम भरा और कठिन हो।

जीवन को भविष्य की ओर जाना ही चाहिए। हमें अस्तित्व के नये आयामों को पा लेना चाहिए। और मैं आशा से भरा हूं कि ऐसा हो सकता है। और इस घटना के घटित होने के लिए पश्चिम को ही भूमि बनना है पूरब को नहीं, क्योंकि पूरब बस तीन सौ वर्ष पुराना पश्चिम है। तो पूरब को पश्चिम का अनुकरण करना ही पड़ेगा–इसके ऊपर पालन-पोषण की अनेक समस्याओं का भार है लेकिन इस मामले में पश्चिम इन सबसे मुक्त है। इसलिए जब मेरे पास हिप्पी लोग आते हैं, तो मै सदा यह जानता हूं कि वे दोनों काम कर सकते हैं। वे बस पीछे लौट सकते हैं। एक ढंग से तो वे पीछे लौट रहे हैं, वे बच्चों की तरह से व्यवहार कर रहे हैं, वे वापस लौट रहे हैं। यह अच्छी बात नहीं है। वे पीछे लौट रहे हैं, वे आदिम मनुष्यों की तरह से व्यवहार कर रहे हैं। यह अच्छा नहीं है। उनका विद्रोह अच्छा है, लेकिन उन्हें नये मनुष्य की तरह से व्यवहार करना चाहिए, आदिम मनुष्यों की तरह से नहीं। और उन्हें नई चेतना के लिए संभावनाओं का सृजन करना चाहिए।

लेकिन वे लोग बस अपने आप को नशे में डुबो रहे हैं और नशों के द्वारा आदिम मन सदा से ही अति प्रसन्न होता रहा है। आदिम मन सदा से ही नशों से जादुई ढंग से सम्मोहित होता रहा है। इसलिए पश्चिम की युवा पीढ़ी अगर आदिम मनुष्यों जैसा व्यवहार कर रही है तो यह विद्रोह नहीं है बल्कि एक प्रतिक्रिया और पीछे लौट जाना है। उन्हें एक नई मानवता की तरह व्यवहार करना चाहिए। और उनको एक नई चेतना की ओर जो, समग्र और सार्वभौमिक हो और जो मनुष्य के अस्तित्व के भीतर की सभी तर्कातीत संभावनाओं को स्वीकार करती हो बढ़ना चाहिए।

वास्तव में पशुओं और मनुष्य के बीच यही अंतर है। पशुओं के पास निर्धारित संभावनाएं, संगतियां होती हैं। यही कारण है कि उन्हें उनकी मूलवृत्ति कहा जाता है। मनुष्य की कोई निश्चित संभावना नहीं है–अनंत संभावनाएं केवल संभावनाएं हैं। वह एक साथ अनेक दिशाओं में विकसित हो सकता है। इस विकास में उसकी

सहायता की जानी चाहिए और हमें ऐसे केंद्र निर्मित करने चाहिए जहां इस विकास के लिए हर प्रकार से सहायता उपलब्ध कराई जा सके।

मन को तर्क बुद्धि के रंग ढंग में प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। साथ ही साथ मन को तर्कातीत, अतर्क्य ध्यान में भी प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। मनुष्यों के तर्क को प्रशिक्षित किया जाना चाहिए, और उसी समय उनके भाव पक्ष को भी पोषित किया जाना चाहिए। तर्क का प्रशिक्षण अब भावना की कीमत पर नहीं दिया जाना चाहिए। उनके तर्क को सबल होना चाहिए। लेकिन उनकी भावना को स्वस्थ होना चाहिए। यही समस्या है।

तर्क के बिना आस्थावान होना सरल है। यह आसान है। बिना किसी आस्था के संदेहशील होना आसान है–यह सरल है। लेकिन अब इन सरल सूत्रों से काम नहीं चलेगा। हमें एक स्वस्थ संदेह, एक दृढ़ संदेह एक शंकालु मन, जिसके साथ में एक श्रद्धालु एक आस्थावान मन भी हो निर्मित करना चाहिए। और हमारे आंतरिक अस्तित्व को संदेह से श्रद्धा में जाने में समर्थ होना चाहिए। अगर कुछ ऐसा है– उदाहरण के लिए कोई वस्तुगत अनुसंधान किया जाना हो–तो नये मनुष्य को संदेहयुक्त शंकालु, प्रश्नकर्ता खोजी हो जाना चाहिए। लेकिन अस्तित्व का एक और आयाम भी है जहां पर श्रद्धा से सूत्र मिलते हैं संदेह से नहीं। लेकिन आवश्यकता दोनों की है।

तो समस्या यह है एक साथ विपरीत ध्रुवीयताओं को कैसे निर्मित किया जाए। और मेरी उत्सुकता इसी में है। इसलिए मैं संदेह को निर्मित करता रहता हूं और श्रद्धा को निर्मित करता रहता हूं! और मैं इसमें कोई अंतर्निहित असंगतता नहीं देखता हूं क्योंकि मेरे लिए तो गति ही महत्वपूर्ण है, एक ध्रुव से दूसरे ध्रुव की ओर गति।

लेकिन हम जितना अधिक एक ध्रुव पर ठहरे रहते हैं उतनी ही हमारी गति कठिन हो जाती है। अगर हम जोर देते हैं– उदाहरण के लिए पूरब में हमने कभी बहुत अधिक सक्रियता पर जोर नहीं दिया इसलिए आलस्य पूरब की चेतना का एक भाग रहा है।

इसलिए पूरब बहुत अच्छी तरह से सो सकता है। उस समय भी जब कि पूरब सो न रहा हो यह निद्रामग्न सा रहता है। लेकिन पश्चिम में तुमने सक्रियता विकसित कर ली है। अब मन उस पर ठहर गया है। तुम सो नहीं सकते) तो अब नींद के लिए औषधि लेनी पड़ती है शामक दवाओं या किसी और बात के द्वारा जबरन नींद लानी पड़ती है। लेकिन तब भी यह जबर्दस्ती थोपी गई नींद तुम्हें नींद नहीं दे पाती है। यह प्राकृतिक नहीं है। यह बस रासायनिक और सतही है कहीं गहरे में उपद्रव जारी रहता है। यह नींद बस एक दुखस्वप्न बन चुकी है ऊपरी सतहों पर रसायनों का प्रभाव रहता है लेकिन भीतर बिखराव चलता रहता है। क्यों? तुमने सक्रियता पर बहुत अधिक बल दिया हुआ था, तो तुम्हारा मन उस पर ठहर गया है। इसलिए जब तुम सोने जाते हो इसे सक्रियता से निष्क्रियता में जाने की जरूरत होती है। लेकिन यह जा नहीं पाता, यह ठहरा हुआ है। इसलिए तुम अपने बिस्तर पर करवटें बदलते रहते हो लेकिन मन सक्रियता से हट नहीं सकता है। यह सक्रिय बना रहता है।

और पूरब में इसका उलटा हो गया है। पूरब मजे से सो सकता है पर सक्रिय नहीं हो सकता है। सुबह को भी पूरब का मन अलसाया निद्रामग्न अनुभव कर सकता है। शताब्दियों से वे लोग भलीभांति सो रहे हैं किंतु और कुछ भी नहीं कर रहे हैं। अब पश्चिम ने बहुत कुछ कर लिया है किंतु तुमने एक बेचैनी, एक रोग निर्मित कर लिया है। और इस बेचैनी के कारण हर चीज व्यर्थ है जो कुछ तुमने कर लिया है वह व्यर्थ है। तुम ईमानदारी से सो भी नहीं सकते हो।

तो यही कारण है कि मेरा जोर सदा मन को सक्रियता के लिए और ठीक उसी समय निष्कियता के लिए प्रशिक्षित करने पर है और तीसरी बात जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण है वह मन को गति करने के लिए प्रशिक्षित करने पर है– जिससे तुम दोनों ओर गति कर सको और मन को प्रशिक्षित किया जा सके। सक्रियता के किसी भी पल से एक क्षण में मैं निष्कियता में जा सकता हूं तुम जा सकते हो। मैं जा सकता हूं मैं तुमसे घंटों बात करता रह सकता हूं और तब एक पल में ही मैं आंतरिक गहन मौन में जा सकता हूं जहां पर भीतर कोई बातचीत नहीं चल रही है। जब तक कि ऐसा न हो जाए तुम्हारा विकास रुका रहता है।

तो मेरे लिए भविष्य को भीतरी ध्रुवीयताओं के मध्य एक गहन लयबद्धता होनी चाहिए। जब तक कि ऐसी गति निर्मित नहीं हो जाती मनुष्य की खोज रुकी हुई है। तुम उसे जारी नहीं रख सकते हो। तुम और आगे नहीं बढ़ सकते हो। पूरब थका हुआ है, पश्चिम थक चुका है। तुम उनको आपस में बदल सकते हो लेकिन दो सौ साल बाद यही समस्या फिर आ जाएगी। तब हम एक वर्तुल में घूमना शुरू कर देते हैं।

मानव इतिहास के प्रति द्वद्वात्मक दृष्टिकोण से मैं अत्यधिक प्रभावित हूं। किंतु तर्कयुक्त विचार और तर्कातीत विचार के मध्य पूर्ण द्वैत की आपकी दृष्टि मेरी समझ में नहीं आ रही है।

परंपरागत समाज को देखिए। पश्चिम और पूरब दोनों में ही एक सामान्य चित्र ऐसा बनेगा कि वहां पर अनेक वैज्ञानिक होंगे और ऐसे लोग होंगे जो अपने व्यवसायिक कार्य में लगे हैं ये विचार के तार्किक आयाम में सक्रिय होंगे और उसी समय वे लोग गहरे धार्मिक लोग होंगे और इस तर्कातीत आयाम में सक्रिय होंगे ये लोग दोनों तलों पर कार्य कर रहे होंगे और ऐसा जरूरी नहीं है कि ये एक दूसरे को हानि पहुंचा रहे हों। और ऐसा भी हो सकता है कि इन दो पक्षों में जिनके बारे में आपने इतने विस्तार से समझाया है एक प्रकार का आदान प्रदान या लयबद्धता स्थापित हो जाए। मुझे ऐसा नहीं लगता कि वास्तव में यह तार्किक विचार प्रक्रिया ही है जिसने हमें संकट में ला खड़ा किया है। मेरे विचार से यह हमारी तार्किक विचार प्रक्रिया को उपयोग करने का परिणाम है। हमारे समाज का यही लक्ष्य है। प्रगति का यह रूप काफी कुछ उसी तरह का है जिसे युवा लोग अब स्वीकार नहीं कर रहे हैं और मेरा विचार है कि वहां पर ये लोग सही हो सकते हैं। लेकिन ऐसी समानता मेरी तार्किक विचार प्रक्रिया का परिणाम नहीं होगी। बल्कि मुझे ऐसा खयाल आता है कि कहीं कोई गलती हो रही है। हमारे समाज के लक्ष्य इतने अस्पष्ट हो चुके हैं कि...?

मैं समझता हूं मैं समझता हूं। लेकिन वास्तव में लक्ष्य की खोज तार्किक विचार प्रक्रिया का हिस्सा है। वास्तव में भविष्य का अस्तित्व तर्क के कारण होता है। इसीलिए पशुओं के लिए न तो कोई भविष्य है और न ही कोई लक्ष्य। वे जीते हैं परंतु उनका कोई लक्ष्य नहीं है। तर्क आदर्श बना लेता है तर्क लक्ष्य निर्मित कर लेता है, तर्क भविष्य का सृजन करता है। असली समस्या यह नहीं है कि सही लक्ष्य चुना गया है या गलत लक्ष्य चुना गया है। असली समस्या यह है कि लक्ष्य चुना जाए या नहीं।

नई पीढ़ी पूछ रही है कि लक्ष्य हों कि न हों। जिस पल तुम्हारे पास लक्ष्य होता है तुम जीवन का रंग ढंग बदलने लगते हो, क्योंकि तब तुम इसे लक्ष्य के अनुसार ढालना आरंभ कर देते हो। तब वर्तमान कम अर्थपूर्ण हो जाता है। तब भविष्य अर्थवत्ता ग्रहण कर लेता है और वर्तमान को इसके साथ समायोजित करना पड़ता है बदलना पड़ता है।

इसलिए लक्ष्य-उन्मुख मन तर्क है और जीवन-उन्मुख मन तर्क के पार है।

एक ओर आप कहते हैं कि मनुष्य की सभी संभावनाओं को साकार किया जाना है और व्यावहारिक रूप से व्यक्ति उतना ही भला है जितना कि दूसरे लोग हैं और हम किसी बात का जितना दमन करते हैं उतना ही हम असंतुलन और कठिनाई उत्पन्न कर लेते हैं। साथ ही साथ आप हिप्पियों के बारे में भी बात कर रहे हैं आप कहते हैं कि वे बच्चों जैसा व्यवहार कर रहे हैं या कि जैसा कि मुझे समझ में आया है वे पीछे लौट जाने की अवस्था में हैं। तो क्या आपके पास मनुष्य की कोई विशिष्ट प्रतिमा है कि उसे कैसा होना चाहिए या कि कोई विशेष लक्ष्य जो उसे प्राप्त करना हो?

मेरे पास है–जो मैं कह रहा हूं–मेरे पास है। जो मैं कह रहा हूं वह यह है कि यहां पर प्रश्न यह नहीं है कि तर्क के लिए उचित लक्ष्य हों। प्रश्न है कि मानवीय मन का इकलौता आयाम एक मात्र दिशा केवल तर्क को ही नहीं होना चाहिए।

तर्क को लक्ष्य रखने पड़ते हैं लक्ष्य के बिना तर्क का अस्तित्व नहीं बना रह सकता है। लेकिन इसको अधिनायकवादी नहीं हो जाना चाहिए। इसीलिए तर्क को लक्ष्य रखने पड़ते हैं। वरना यह कार्य नहीं कर सकता है। भविष्य द्वारा निर्मित किए गए रिक्त स्थान के बिना तर्क कार्य नहीं कर सकता है। लक्ष्य के बिना तर्क कार्य नहीं कर सकता है कहीं पर कोई लक्ष्य हो जहां पहुंचना है जिस तक पहुंचना है। तर्क को लक्ष्यों के साथ कार्य करना पड़ता है लेकिन तर्क को हावी हो जाने वाली चीज नहीं हो जाना चाहिए। इसको अधिनायकवादी नहीं हो जाना चाहिए। इसको विकसित होती हुई एकमात्र शाखा नहीं होना चाहिए।

तो जो मैं कह रहा हूं वह यह है कि तर्क को लक्ष्य रखने पड़ते हैं उन के बिना इसका अस्तित्व नहीं बना रह सकता है, और तर्क का अस्तित्व रहना चाहिए, यह एक संभावना है। फिर मनुष्य के मन का एक तर्क विरोधी भाग भी है जिसके लिए लक्ष्य नहीं हो सकते जो बस पशुओं की भांति है जो बस बच्चों की भांति है। बिलकुल बच्चों की भांति यह अभी और यहीं रह सकता है। और वास्तव में यही वह भाग है जो जीवन के प्रेम के सौंदर्य के कला के गहनतर आयामों को अनुभव करता है। वह भाग वह तर्कातीत भाग गहनतर आयामों का अनुभव करता है क्योंकि यह वर्तमान में गहरा उतर सकता है। इसको भविष्य में जाने की कोई जरूरत नहीं होती। यह यहीं और अभी, इसी क्षण में गहरा उतर सकता है। इस भाग को साथ ही साथ विकसित होते रहना चाहिए और तुम इसे दो ढंगों से कर सकते हो।

तुमने ठीक कहा है, ऐसे वैज्ञानिक हुए हैं जिनका बहुत गहरा धार्मिक व्यक्तित्व था। लेकिन जिस प्रकार से मैं इसको देखता हूं इसको दो प्रकार से किया जा सकता है। या तो यह एक गहरी लयबद्धता हो सकता है, या यह एक झरोखे को बंद करके, बिना किसी लयबद्धता के दूसरे को खोलना हो सकता है। बिना किसी लयबद्धता के मैं एक वैज्ञानिक हो सकता हूं और फिर मैं अपने वैज्ञानिक संसार को बंद कर सकता हूं और मैं चर्च जा सकता हूं और प्रार्थना कर सकता हूं। तब वहां पर वैज्ञानिक प्रार्थना नहीं कर रहा है, वैज्ञानिक वहां प्रार्थना नहीं कर रहा है–वैज्ञानिक बाहर छोड़ दिया गया है। वास्तव में यह लयबद्धता नहीं है। यह एक गहरा विभाजन है। वहां पर कोई लयबद्धता नहीं है, वैज्ञानिक और इस पूजा करने वाले में कोई भीतरी संवाद नहीं है। वहां पर कोई संवाद नहीं है। वैज्ञानिक तो चर्च में आया ही नहीं है। और यह व्यक्ति जब अपनी प्रयोगशाला में जाता है, तो पूजा करने वाला व्यक्ति बाहर छूट जाता है वह भीतर नहीं आया है।

तो यह वास्तव में एक गहरा विभाजन है। एक बंद अलगाव है। वे दोनों आपस में मिले हुए नहीं हैं। वे परस्पर मिले हुए नहीं हैं, तो इस तरह के व्यक्ति में तुम्हें दोहरापन अनुभव होगा, लयबद्धता नहीं, कोई लयबद्धता नहीं। वह व्यक्ति ऐसी बातें कह रहा होगा जिनके बारे में उसको स्वयं अपराध-बोध अनुभव होगा कि

उसने ऐसा कहा था। वह वैज्ञानिक के रूप में ऐसे वक्तव्य दे रहा होगा जो उसके पूजा करने वाले मन के बिलकुल विरोध में जाते हैं और वह इन दोनों आयामों के बीच में किसी लयबद्ध समग्रता का निर्माण नहीं कर सकता है।

इसलिए अनेक वैज्ञानिकों ने वास्तव में बहुत खंडित जीवन जीए हैं। उनका एक भाग कुछ है और दूसरा भाग कुछ और है। मेरा लयबद्धता से यह अभिप्राय नहीं है। लयबद्धता से मेरा अभिप्राय है कि बंद नहीं होना है। तुम बिना बंद हुए एक से दूसरे आयाम में चले जाने में समर्थ हो। वैज्ञानिक प्रार्थना करने के लिए चला जाता है और धार्मिक व्यक्ति प्रयोगशाला में आता है। वहां कोई विभाजन नहीं है। वहां पर कोई अंतराल नहीं है।

अन्यथा तो तुम अपने भीतर दो व्यक्ति समा सकते हो, तुम अनेकों को समा सकते हो। तुम्हारे भीतर अनेक व्यक्ति हो सकते हैं– और आमतौर पर यही करते हैं। हमारे पास बहुत से व्यक्तित्व हैं और हम ने उनमें से एक के साथ तादात्म्य कर रखा है। फिर हम दूसरे आयाम में चले जाते हैं, तब हम अपना व्यक्तित्व बदल लेते हैं हम कुछ और बन जाते हैं। यह परिवर्तन करने की व्यवस्था वहां पर है। वास्तव में यह कोई लयबद्धता नहीं है। और यह कार्य तुम्हारे अस्तित्व में एक बहुत गहरा तनाव निर्मित कर देगा क्योंकि इतने सारे विभाजनों के साथ तुम विश्रांति में नहीं जी सकते हो।

एक अविभाजित चेतना जो ध्रुवीय विपरीतताओं में जाने में समर्थ हो, केवल तभी संभव है जब कि हमारे पास ऐसे मनुष्य की संपूर्ण धारणा हो जो विपरीत ध्रुवों में भी उतनी ही सघनता से जी सकता हो-स्वभावत: विरोध में जीते हुए उसमें विरोधों के प्रति कोई अस्वीकार भाव नहीं होता है। उदाहरण के लिए अगर मैं प्रार्थना करने जाता हूं तो उसके बारे में मुझे कोई तनाव अनुभव नहीं होगा– कि यह मैं क्या कर रहा हूं? क्या यह तर्कयुक्त है? क्या यह तर्कपूर्ण है? क्या कहीं कोई ईश्वर है?

अगर मैं प्रयोगशाला में कार्य करता हूं तो संदेह कार्य करता है। क्या मैं संदेह के साथ मिल कर किए जा रहे अपने इस कार्य में संदेह की एक उपयोगी उपकरण के रूप में कल्पना कर सकता हूं बजाय इसके कि मैं संदेह पर ही ठहर जाऊं? विश्वास भी एक उपयोगी उपकरण ही है। वे दोनों बस दो पहलू हैं जो विभिन्न आयामों में देखते हैं। इसलिए जब तुम्हें बहुत दूर देखना हो तो तुम अपना दृष्टिकोण बदलते हो पास देखने के लिए तुम अपना देखने का ढंग बदल लेते हो। तुम अपने दृष्टिकोण से चिपक नहीं जाते, तुम एक पर ही नहीं ठहरे रहते हो और इसमें कोई अंतर्निहित दुविधा भी अनुभव नहीं होती। तो व्यक्ति को कोई दुविधा, कोई विभाजन अनुभव नहीं करना चाहिए और उसे सहजता से सरलता से गति करना चाहिए। यहां तक कि वह गति भी अनुभव नहीं होनी चाहिए। और जब भी वहां पर वास्तव में एक गहरी लयबद्धता होती है तो गति अनुभव नहीं होती। तुम चले जाते हो लेकिन कोई गति अनुभव नहीं होती, क्योंकि गति तभी अनुभव होती है जब वहां पर कोई रुकावट हो।

और एक बात और। मैं जानता हूं कि जब मैं कहता हूं 'पूरब' और 'पश्चिम' तो मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि पश्चिम में कभी कोई पूरब का मन नहीं हुआ और मेरा अभिप्राय यह भी नहीं है कि पूरब में कभी कोई पश्चिम का मन नहीं हुआ है। वस्तुत: पूरब और पश्चिम भौगोलिक कम हैं और मनोवैज्ञानिक अधिक हैं। पश्चिम में ऐसे मन हैं जो पूरब के हैं और पूरब में ऐसे मन हैं जो पश्चिम के हैं। लेकिन जो मुख्य धारा है–मैं मुख्य धारा के बारे में बात कर रहा हूं।

उदाहरण के लिए कोई इकहार्ट या कोई बोहमे वे पूरब से जुड़े हैं। वे पूरब से संबंधित हैं, उन्हें पश्चिम के इतिहास में शामिल नहीं किया जाना चाहिए। वे पूरब के हैं। और वास्तव में कभी हमें संसार का मनोवैज्ञानिक इतिहास लिखना चाहिए जिसमें पूरब के पास पश्चिम से अनेक चेहरे होंगे और पश्चिम के पास पूरब से कई चेहरे और कई नाम होंगे। अभी हमने जो भी लिखा है वह केवल भौगोलिक इतिहास है। हमें मनोवैज्ञानिक इतिहास

की परिकल्पना करनी चाहिए–इतिहास का एक अधिक विकसित रूप जिसमें विश्व का विभाजन भौगोलिक आधार पर न किया गया हो बल्कि उसे मनोवैज्ञानिक आधार पर बांटा गया हो।

इसलिए मेरा मतलब यह नहीं है कि दोनों एकपक्षीय हैं लेकिन मुख्य धारा, पश्चिम की मुख्य धारा तार्किक विकास की रही है यहां तक कि धार्मिक क्षेत्र में भी। यही कारण है कि चर्च इतना प्रभावशाली बन गया है। वस्तुत: हिंदू धर्म में कोई चर्च नहीं है या कि यह बहुत अराजकता से भरी घटना है– क्योंकि तर्कातीत धर्म के साथ तुम कोई धर्मशास्त्र जिसमें तर्क दिए गए हों ईश्वर के होने के सबूत दिए गए हों और एक चर्च और एक ईश्वर का प्रतिनिधि पोप हो, कैसे रख सकते हो? तुम ऐसा नहीं कर सकते।

पश्चिम में तो धर्म भी तर्क की सरणियों के अनुसार विकसित हुआ है। जीसस अपने आप में एक तर्कातीत व्यक्ति थे लेकिन सेंट पाल नहीं। सेंट पाल के पास एक बहुत वैज्ञानिक मन था, बहुत वैज्ञानिक बहुत तर्कयुक्त। तो वास्तव में ईसाइयत सेंट पाल से संबंधित है यह जीसस से जरा भी जुड़ी हुई नहीं है। जीसस के साथ कोई ईसाइयत नहीं हो सकती है। ऐसा असंभव है। इस प्रकार का अराजक व्यक्ति उसके साथ इतने बड़े संगठन इतने बड़े साम्राज्य की कोई संभावना नहीं है। जब वे प्रभु के राज्य की बात कर रहे थे तो वे किसी और के बारे में बात कर रहे थे। लेकिन चर्च का इतना बड़ा राज्य–यह चर्च का राज्य–यह जीसस के साथ असंभव है। वे पूरब के थे परंतु सेंट पाल नहीं।

तो अब चर्च विदा हो चुका है और यही कारण है कि विज्ञान और चर्च में एक संघर्ष रहा था, क्योंकि दोनों तार्किक थे। और दोनों एक ही घटना को तर्कबद्ध करने की कोशिश कर रहे थे। चर्च को हारना ही था, क्योंकि यह उतना तर्कयुक्त नहीं हो सकता है क्योंकि इसका केंद्र धर्म था। चर्च ने तर्कयुक्त होने की कोशिश की, लेकिन यह ऐसा करने में सफल नहीं हो सका क्योंकि धर्म की घटना अपने आप में तर्कातीत है। धर्म के लिए तर्क कुछ बाहर की चीज है यही कारण है कि चर्च को हारना पड गया और विज्ञान जीत गया। लेकिन पूरब में विज्ञान और धर्म में कोई संघर्ष नहीं रहा, क्योंकि धर्म ने कभी तर्क के आयाम में कोई दावा नहीं किया तो वहां कोई संघर्ष नहीं हुआ। वे जरा भी एक ही आयाम से संबंधित नहीं हैं। पश्चिम की सारी प्रगति अरस्तूवादी रही है अभी तक अरस्तू पश्चिम का केंद्र बना हुआ है।

अपनी सोई हुई संभावना को साकार करने के लिए पूरब और पश्चिम दोनों में परिकल्पित प्रतिमा और धार्मिक विचार यहां तक कि अनीश्वरवादी दर्शन इन सभी में मनुष्य का मूल प्रश्न क्या है? सदा से इन सभी के पास मनुष्य की एक निश्चित आदर्श प्रतिमा रही है कि उसकी कौन सी संभावनाएं हैं जिनको विकसित किया जाना है साकार करना है जिनमें मनुष्य के कुछ ऐसे लक्षणों को निश्चित प्राथमिकता देते हुए शामिल किया गया है उन्हें कृपया अपने कथन के संदर्भ में समझा दें। और अब आप इसे चाहे दमन से करें या ऊर्ध्वगमन से करें या किसी और उपाय से इससे कोई अंतर नहीं पड़ता है। लेकिन मूल रूप से खयाल सदा यही रहा है कि मनुष्य की प्रतिमा उससे कुछ महानतर है जैसा कि मैं हूं और उसकी ओर बढ़ने के लिए मुझे कोशिश करनी चाहिए। मनुष्य की उस प्रतिमा के साथ जिसकी सभी संभावनाओं का एक सा महत्व है–भले ही वे सकारात्मक हों या नकारात्मक या पशुवत

हों या पशुवत न हों इत्यादि-इत्यादि यहां पर आप अपना उचित दृष्टिकोण किस प्रकार से रखेंगे?

यह विचित्र घटना धर्म के कारण नहीं घटित होती है। लेकिन जब भी कभी धर्म को व्यवस्था में बांध दिया जाता है, तभी यह घटना घट जाती है। उदाहरण के लिए कोई बुद्धपुरुष किसी आदर्श का अनुगामी नहीं

होता है। बुद्ध स्वयं किसी आदर्श के अनुगामी नहीं हैं या जीसस स्वयं किसी आदर्श के अनुगामी नहीं हैं। वे बहुत सहजता का जीवन जीया करते हैं लेकिन वे आदर्श बन जाते हैं–वे आदर्श बन जाते हैं। वे बहुत सहजस्फूर्त जीवन जीते हैं और वे अपने निजी ढंग से विकसित होते हैं भले ही उनका जीवन जो भी शैली और जो भी प्रकार ग्रहण कर ले। वे विकसित होते हैं, वे जंगल के वृक्षों की भांति विकसित होते हैं। लेकिन अनुयायियों के लिए वह जंगली वृक्ष ही एक आदर्श बन जाता है। और तब अनुयायी लोग जीवन-शैली, प्राथमिकताएं, चुनाव और निंदाएं निर्मित करने लगते हैं।

तो वास्तव में धर्म के दो भाग होते हैं। पहला, एक गहरा धार्मिक व्यक्तित्व जो पल-पल में जीया करता है। वह सहजता से जीया करता है और दूसरा, वे अनुयायी जो मत निर्मित करते हैं जो अनुशासन वे बनाते हैं जो विश्वास-परंपरा वे बनाते हैं वे इन्हें अपने आदर्श की तरह से बना लेते हैं। तब एक बौद्ध के पास एक आदर्श होता है–' व्यक्ति को बुद्ध की तरह का होना चाहिए।' तब प्राथमिकताओं को उपलब्ध करना पड़ता है क्योंकि बुद्ध को कभी क्रोधित नहीं देखा गया था। उनके लिए यह एक सहज स्फूर्त विकास रहा होगा लेकिन तब अनुयायी को भी क्रोधित नहीं होना चाहिए, यह एक– नहीं होना चाहिए–बन जाता है। तब तुम्हें या तो दमन करना या उसका ऊर्ध्वगमन करना है या जो कुछ भी नाम तुम इसका रख दो उसका अभिप्राय एक ही होता है। तब तुमको अपने आप को अनेक उपायों से नष्ट करना पड़ता है, क्योंकि केवल तब ही तुम वह प्रतिमा निर्मित कर सकते हो। तब तुम्हें एक प्रतिलिपि बन जाना पड़ता है।

और मेरे लिए यह एक अपराध है। धार्मिक व्यक्तित्व होना अपने आप में एक सुंदर घटना है लेकिन धार्मिक मत फिर से एक तर्कयुक्त बात बन जाती है। यह एक तर्कातीत घटना के सामने आकर तर्क का खडा हो जाना है।

बुद्ध के प्रसंग में देखें तो वे बहुत तर्कयुक्त व्यक्ति थे...?

वे बहुत तर्कयुक्त थे लेकिन उनके साथ बहुत से तर्कातीत अंतराल भी थे। और वे इन तर्कातीत अंतरालों के साथ बहुत सहजता से जीते थे। और बुद्ध की जो अवधारणा हमारे पास है वह वास्तव में बुद्ध की नहीं है बल्कि उन तर्कयुक्त परंपराओं की है जिन्होंने उनका अनुगमन किया और इस पूरी अवधारणा को निर्मित किया है।

वस्तुत: बुद्ध का सामना करना एक अलग बात है। लेकिन हम और कुछ कर भी नहीं सकते हैं। हमें बौद्धों के माध्यम से जो दो हजार वर्ष पुरानी श्रृंखला है और बुद्ध की जैसी प्रतिमा उन्होंने बना दी है उससे होकर गुजरना पड़ता है और उन्होंने इस प्रतिमा को बहुत तर्कयुक्त बनाया है। वे इस प्रकार के नहीं थे। अगर तुम अस्तित्व में गहरे उतर गए हो, तो तुम ऐसे नहीं हो सकते, तुम ऐसे नहीं हो सकते हो। अनेक बार तुमको तर्क के पार जाना पड़ता है–और बुद्ध तर्क के पार हैं। लेकिन तब हमें पूरी परंपरा को हटा कर एक ओर कर देना पड़ता है और सीधे ही जाना पड़ता है। यह कठिन है, बहुत कठिन है।

हम बुद्ध या लाओत्सु से कभी मिल नहीं सकते हैं आमने- सामने की मुलाकात तो असंभव है?

एक ढंग से तो यह असंभव ही है लेकिन हम लोग कुछ प्रयास तो कर ही सकते हैं और उस प्रयास के लाभ होते हैं उस प्रयास से लाभ हुआ करते हैं। एक नये आयाम का आरंभ हो जाता है–तुम्हें नई झलकियां मिलने लगती हैं। क्योंकि उदाहरण के लिए–ऐसा घटित हो जाता है, यह रोज ही घटित हो रहा है–अगर मैं किसी

तर्कशील व्यक्ति से बात कर रहा हूं तो वह चुनाव करता है। वह अचेतन रूप से वह सभी कुछ छोड़ देता है जो तर्कपूर्ण नहीं था। और अगर मैं किसी कवि से बात कर रहा होऊं तो वह किसी और बात का चुनाव कर लेता है। जब मैं किसी तर्कशील व्यक्ति से बात कर रहा होता हूं तो वे ही वाक्य, वे ही शब्द किसी और चीज के प्रतीक बन जाते हैं। क्योंकि वह शब्दों में विद्यमान काव्य को नहीं देख सकता। वह केवल तर्क की ओर शब्दों के तर्कपूर्ण होने को देख सकता है। उस तर्क का एक अलग ही आयाम है। कोई कवि, कोई चित्रकार किसी शब्द के अलग आयाम को समझ सकता है। शब्द में एक रंग, एक झलक होती है। शब्द में एक लय, एक काव्य होता है। यह किसी भी तरह से तर्क से संबंधित नहीं है।

इसलिए बुद्ध–बल्कि हमें कहना चाहिए, बुद्ध के चेहरे, चेहरा नहीं– बुद्ध के चेहरे भिन्न हैं अलग हैं। वे उस व्यक्ति के अनुसार हैं जिसने उनको देखा है। और भारत में बुद्ध की घटना उस काल में घटित हुई थी जब पूरा देश एक तार्किक संकट से होकर गुजर रहा था। यह तर्कातीत के विरोध में जा रहा था, सभी तर्कातीत वेदों, उपनिषदों सारे रहस्य-दर्शन पर एक संकट छाया हुआ था–इनके विरोध में एक आंदोलन चल रहा था। यह आंदोलन ऐसा था कि सारे देश का, विशेष तौर से बिहार का मन इससे जुड़ रहा था–यह रहस्यवाद का विरोध था।

और बुद्ध आभावान थे और बुद्ध सम्मोहक थे। लोग उनसे प्रभावित हो गए थे। लेकिन बुद्ध के चेहरे की व्याख्या तर्कपूर्ण होगी ही–ऐसा होना ही था। अगर बुद्ध इतिहास के किसी और काल में हुए होते, ऐसे संसार में हुए होते जो रहस्यवाद के विरोध में नहीं था तो उन्हें एक महान रहस्यदर्शी के रूप में जाना गया होता बौद्धिक महामानव के रूप में नहीं। तो ऐसा हो जाता है। इतिहास के किसी विशेष काल से संबंधित होना पड़ता है और चेहरे की व्याख्या उसी के अनुरूप कर दी जाती है।

लेकिन जैसा कि मैं इसे देखता हूं बुद्ध बौद्धिक नहीं हैं वे बौद्धिक हो भी नहीं सकते हैं। निर्वाण की सारी धारणा बस रहस्यपूर्ण है। और वे उपनिषदों से भी ज्यादा रहस्यपूर्ण हैं, क्योंकि उपनिषदों में, भले ही वे कितने रहस्यपूर्ण दिखाई पड़ते हों, उनकी अपनी स्वयं की तर्कयुक्तता है। वे पुनर्जन्म के बारे में बात करते हैं, लेकिन वे पुनर्जन्म की बात आत्मा के साथ करते हैं। यह बात तर्कयुक्त है। बुद्ध आत्मा के बिना पुनर्जन्म के बारे में बात करते हैं। यह और भी रहस्यपूर्ण है। यह बात और भी रहस्यपूर्ण है– आत्मा के बिना पुनर्जन्म। उपनिषद मोक्ष के बारे में बात करते हैं, लेकिन ' तुम ' वहां पर होगे। यह बात तर्कयुक्त है, अन्यथा तो पूरी बात ही मूर्खतापूर्ण बन जाती है। अगर अस्तित्व की उस परम दशा में मैं ही न हो पाऊं तो सारा प्रयास अर्थहीन है, तर्कहीन है। बुद्ध कहते हैं कि प्रयास करना पड़ेगा–और फिर तुम वहां पर नहीं होगे, यह बस एक ना-कुछपन होगा। यह और भी रहस्यपूर्ण है।

हिप्पियों के प्रश्न पर लौटते हैं जब आप कहते हैं कि वे लोग पीछे लौट रहे हैं वे बच्चों की तरह व्यवहार कर रहे हैं या कि वे लोग असभ्यों की तरह व्यवहार कर रहे हैं। मैं आपकी बात से बिलकुल सहमत हूं। लेकिन ऐसा कहने पर क्या आप उनके व्यवहार की तुलना एक अलग प्रकार के व्यवहार से एक श्रेष्ठतर प्रकार के व्यवहार से करके उन पर अपना फैसला नहीं सुना रहे हैं? तो क्या आपके पास मनुष्य की कोई प्रतिमा है जिसे आप एक आदर्श प्रतिमा कह सकें?

वास्तव में यह कोई प्रतिमा नहीं है वस्तुत: कोई प्रतिमा नहीं है यह बल्कि कुछ अलग बात है। जब मैं कहता हूं कि वे बच्चों की भांति व्यवहार कर रहे हैं तो मेरा मतलब यह है कि वे विकसित नहीं हो रहे हैं। वे पीछे

लौट रहे हैं। मेरे पास ऐसी कोई प्रतिमा नहीं है कि उनको उसकी तरह से करना चाहिए। मेरे पास विकास की एक अवधारणा है कोई प्रतिमा नहीं किसी तरह की प्रतिमा नहीं है। मैं यह नहीं चाहता हूं कि उन्हें किसी विशेष प्रतिमा से लयबद्धता या समायोजन कर लेना चाहिए। मैं केवल यह कह रहा हूं कि वे अतीत की ओर वापस लौट रहे हैं भविष्य की ओर विकसित नहीं हो रहे हैं। मेरे पास कोई ऐसी प्रतिमा नहीं है कि वृक्ष किस प्रकार से विकसित हो, लेकिन इसे बिना किसी प्रतिमा के ही विकसित होना चाहिए। इसे वापस नहीं लौटना चाहिए। तो यह विकसित होने या पीछे लौट जाने का प्रश्न है, किसी प्रतिमा का नहीं है।

दूसरी बात जब मैं कहता हूं कि वे पीछे लौट रहे हैं तो मेरा अभिप्राय यह है कि वे एक अत्यधिक बुद्धिवादी समाज के विरुद्ध प्रतिक्रिया कर रहें हैं। वे प्रतिक्रिया कर रहे है? लेकिन यह प्रतिक्रिया दूसरी अति पर, उसी भ्रम के साथ जा रही है। तर्क का उपयोग कर लिया जाना चाहिए उसका त्याग नहीं करना चाहिए। अगर तुम तर्क को छोड़ देते हो तो तुम वही गलती कर रहे हो जिसे तर्कातीत को छोड़ कर किया गया था।

विक्टोरियन युग ने एक ऐसा मनुष्य पैदा किया जो बस एक दिखावा, एक मुखौटा था। वह भीतर से कोई जीवित अस्तित्व नहीं था। बल्कि व्यवहार का एक नमूना, शिष्टाचार की एक शैली था–वह अस्तित्व कम था और चेहरा अधिक। ऐसा संभव हो सका क्योंकि हमने हर बात की कसौटी तर्क को चुन लिया था। इसलिए तर्कातीत, अराजक और भीतर की अव्यवस्था को हमने दूर धकेल दिया, दबा दिया। अब वह अराजक पक्ष बदला ले रहा है, यह दो कार्य कर सकता है। यह विध्वंसक हो सकता है, तब यह पीछे लौटने लगेगा। अगर यह विध्वंसक हो तो यह इसी प्रकार से बदला लेगा। यह तार्किक भाग को इनकार कर देगा। यह तार्किक भाग को अस्वीकार कर देगा और तब तुम छोटे बच्चों की तरह अपरिपक्व हो जाते हो। तुम पीछे लौट जाते हो।

अगर यह पक्ष सृजनात्मक हो, तो इसे वही गलती नहीं करनी चाहिए। इसे तर्क के साथ तर्कातीत को समाविष्ट कर लेना चाहिए। इसे दोनों को एक कर लेना चाहिए। तब यह विकसित हो जाएगा, उन दोनों की तुलना में विकसित हो जाएगा–वह जिसने तर्कातीत को इनकार किया है और वह जिसने तर्क को इनकार कर दिया है, वे दोनों विकसित नहीं हो रहे हैं।

वे दोनों विकसित नहीं हो रहे हैं क्योंकि तुम्हारा विकास तब तक नहीं हो सकता जब तक कि तुम समग्रता में विकसित न हो। जब तक कि तुम समग्र रूप से विकसित नहीं होते कोई विकास नहीं होता है। तो मेरे पास तुलना करने के लिए कोई प्रतिमा नहीं है।

एक छोटा सा प्रश्न। पश्चिम में हमारी जीवन-शैली पाप की अवधारणा और अपराध-बोध की अवधारणा से प्रभावित होती है। जैसा कि आप जानते ही हैं कि ये अवधारणाएं पूरब में नहीं हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि पूरब के युवा लोगों की समस्याएं वैसी नहीं हैं जैसी कि हमारी हैं। आपके अनुयायियों के मध्य यह समस्या कैसी दिखाई पड़ती है? क्या आपके पूरब के अनुयायियों और पश्चिम के अनुयायियों की आवश्यकताएं और समस्याएं वास्तव में अलग- अलग हैं?

हां, ऐसा होना ही है ऐसा ही है। क्योंकि पाप की अवधारणा अपने चारों ओर एक बिलकुल ही अलग चेतना निर्मित कर देती है। पूरब के मन में इस तरह की अवधारणा का अभाव है। बल्कि यहां इसके स्थान पर अज्ञान की अवधारणा है। पूरब की चेतना में हर बुराई की जड़ में अज्ञान है पाप नहीं। बुराई की जड़ है क्योंकि तुम अज्ञानी हो। तो समस्या अपराध-बोध की नहीं है, बल्कि अनुशासन की है। तुम्हें और अधिक सजग, अधिक

प्रज्ञावान हो जाना चाहिए। इसलिए पूरब में शान ही रूपांतरण है—इसलिए ध्यान इसका स्रोत, इसका परम उपाय बन जाता है।

पश्चिम में ईसाइयत के साथ पाप केंद्र बन गया है। ऐसा नहीं कि क्योंकि तुम अज्ञानी हो इसलिए तुम पाप करते हो। तुमने पाप किया है इसी कारण से तुम अज्ञानी हो। यहां पर पाप को प्राथमिक महत्व मिल गया है– और यह केवल तुम्हारा ही पाप नहीं है। यह मानवजाति का मूल पाप है। तो तुम पाप की अवधारणा से दबे हुए हो। यह अपराध- बोध निर्मित करती है यह तनाव निर्मित करती है। यही कारण है कि ईसाइयत वास्तव में ध्यान की विधियां निर्मित नहीं कर पाई। इसने सिर्फ प्रार्थना को विकसित किया-क्योंकि पाप के विरोध में तुम कर ही क्या सकते हो? तुम नैतिक और प्रार्थनापूर्ण हो सकते हो।

इसलिए पूरब में वास्तव में दस आशाओं जैसी कोई चीज नहीं है। पूरब में इस तरह का कुछ भी नहीं है वहां पर अत्यधिक नैतिकता की अवधारणा भी नहीं है। इसलिए समस्याएं अलग हैं। पश्चिम के लिए, पश्चिम से आने वाले लोगों के लिए अपराध- भाव समस्या है। कहीं गहरे में वे अपराधी अनुभव करते हैं। जिन्होंने विद्रोह कर दिया है, कहीं गहराई में वे भी अपराध-बोध का अनुभव करते हैं। तो यह एक मनोवैज्ञानिक समस्या है जो मन से ज्यादा संबंधित है और अस्तित्व से कम।

तो पहले उनके अपराध-बोध को निकालना पड़ेगा। यही कारण है कि पश्चिम को मनोविश्लेषण या आत्म-स्वीकृति का विकास करना पड़ गया है। पूरब में उनका विकास नहीं हुआ क्योंकि उनकी कभी जरूरत ही नहीं पड़ी। तुम को अपने दोष स्वीकार करने पड़ेंगे। केवल तभी तुम उस अपराध- भाव से मुक्त हो सकते हो जो गहरे में भीतर है। या फिर तुम को मनोविश्लेषण से जो विचार साहचर्य की एक लंबी प्रक्रिया है, होकर गुजरना पड़ता है जिससे कि अपराध-बोध को बाहर फेंका जा सके। लेकिन इसको स्थायी रूप से बाहर कभी नहीं फेंका जा सकता है। यह फिर आ जाएगा क्योंकि पाप की अवधारणा तो रहती ही है। यह दुबारा से निर्मित हो जाएगा, यह फिर से एकत्रित हो जाएगा।

इसलिए मनोविश्लेषण केवल एक अस्थायी सहायता हो सकता है, और आत्म- स्वीकृति भी एक अस्थायी सहायता है। तुम्हें बार-बार आत्म-स्वीकृति करनी पड़ती है। ये किसी ऐसी बात के विरोध में अस्थायी सहायताएं हैं जिसे स्वीकार कर लिया गया है। सारी बीमारियों की जड़– पाप की अवधारणा को स्वीकार कर लिया गया है।

पूरब में यहां पर यह मनोविज्ञान का प्रश्न नहीं है। यहां पर यह अस्तित्व का प्रश्न है। तो यह मानसिक स्वास्थ्य का प्रश्न नहीं है। बल्कि यह आध्यात्मिक विकास का प्रश्न है। तुमको आध्यात्मिक रूप से विकसित होना पड़ेगा, तुम्हें वस्तुओं के प्रति अधिक बोधपूर्ण हो जाना है। तुम्हें अपना मौलिक व्यवहार नहीं बदलना है बल्कि तुम्हें अपनी मौलिक चेतना को बदल देना है। तब व्यवहार उसका अनुगमन करता है।

इसलिए ईसाइयत अधिक व्यवहारवादी है और इस प्रकार से यह रक्षात्मक है, क्योंकि व्यवहार तो बस परिधि की घटना है। प्रश्न इस बात का नहीं है कि तुम क्या करते हो प्रश्न इस बात का है कि तुम क्या हो। इसलिए अगर तुम अपने कृत्यों को बदलते चले जाओ, तो तुम नहीं बदलते हो। और तुम अपने कृत्य का उलटा करने पर भी वैसे ही बने रह सकते हो। तुम एक संत बन सकते हो और फिर भी वैसे ही रह सकते हो, क्योंकि कृत्यों को बहुत सरलता पूर्वक बदला जा सकता है। उन्हें जबरन थोपा जा सकता है।

तो पश्चिम से जो भी आ रहा है, उसकी समस्या व्यवहार की, अपराध-बोध की है। और उन्हें एक और गहरी समस्या के प्रति–जो अस्तित्व की है, मनस की नहीं, सजग करने के लिए मैं उनके साथ संघर्ष करता हूं।

बौद्धों के संसार में भी व्यवहार महत्वपूर्ण है। व्यवहार नैतिक व्यवहार काफी कुछ ईसाइयत की तरह से बहुत महत्वपूर्ण है लेकिन वहां अपराध-बोध नहीं है। व्यवहार पर बहुत बल दिया गया है लेकिन हिंदू विचार धारा में ऐसा नहीं है। यह सत्य है आप ठीक कहते हैं।

हां, बौद्ध धर्म में ऐसा है–और जैन धर्म में–ऐसा बहुत अधिक है, लेकिन पाप की अवधारणा के बिना। उनके पास पाप की अवधारणा नहीं है। इनमें व्यवहार पर बहुत बल दिया गया है। लेकिन उन्होंने भी कुछ निर्मित किया है, वैसा ही अपराध-बोध तो नहीं है लेकिन एक अलग ढंग से उन्होंने इसे बना लिया है। खास तौर से जैनों ने एक बहुत गहरी हीनता की अनुभूति निर्मित कर ली है। अपराध-बोध तो वहां पर नहीं है, क्योंकि वहां पर पाप का कोई प्रश्न ही नहीं है बल्कि हीनता की गहरी भावना है कि व्यक्ति हीन है। जब तक व्यक्ति सारे पापों के पार नहीं चला जाता है वह श्रेष्ठतर नहीं हो सकता है, वह श्रेष्ठतर नहीं बन सकता है। एक बहुत गहरी हीनता की भावना वहां होती है और यह गहन हीन भावना इसी ढंग से कार्य करती है। इससे समस्याएं निर्मित होती हैं।

यही कारण है कि जैन लोग ध्यान-विधियां निर्मित नहीं कर पाए। उन्होंने केवल नैतिकता के सूत्र निर्मित कर लिए हैं यह करो ऐसा करो वैसा मत करो और पूरी अवधारणा व्यवहार के चारों ओर केंद्रित है। यही कारण है कि जैन धर्म बस एक मरी हुई चीज बन चुका है। तुम किसी जैन मुनि के पास चले जाओ जहां तक व्यवहार का प्रश्न है, वह एक आदर्श है, लेकिन जहां तक तरिक अस्तित्व का प्रश्न है, वह निर्धन है–बिना किसी आंतरिक अस्तित्व के बस निर्धन। वह बस एक कठपुतली की भांति व्यवहार किए चला जाता है।

तो जैन धर्म मुर्दा है। बौद्ध धर्म उसी ढंग से मुर्दा नहीं हुआ है, क्योंकि वहां पर एक अलग बात पर जोर दिया गया है। बौद्ध धर्म में एक अलग बात पर बल दिया गया है। बौद्ध धर्म का आचरण वाला भाग इसके ध्यान वाले भाग का परिणाम भर है और अगर व्यवहार को बदला जाना है तो यह बस ध्यान का एक हिस्सा है। यह ध्यान की सहायता के लिए बस ध्यान का ही एक हिस्सा है। अपने आप में यह निरर्थक है। अपने आप में यह अर्थहीन है। ईसाइयत में यह अपने आप में अर्थपूर्ण है, जैन धर्म में यह अपने आप में महत्वपूर्ण है। अगर तुम भला कर रहे हो, तो तुम भले हो। बुद्ध के लिए ऐसी बात नहीं है। तुम्हें भीतर की ओर से बदलना पड़ेगा। भला करना इसमें सहायता कर सकता है, इसका एक भाग बन सकता है, इसका हिस्सा बन सकता है, इसका एक अंश बन सकता है, लेकिन ध्यान ही केंद्र है।

तो केवल बौद्ध लोग ही गहरे ध्यान विकसित कर सके, ध्यान की गहन विधियां। और सभी कुछ बस एक सहायता है–यह महत्वपूर्ण नहीं है। तुम इसे छोड़ भी सकते हो। यह तुम्हारी क्षमता पर बना रहता है। यहां पर तुम्हारी सामर्थ्य का प्रश्न है। तुम इसे नकार भी सकते हो। अगर तुम बिना किसी सहायता के ध्यान कर सको, तो तुम इसे छोड़ भी सकते हो।

'लेकिन हिंदू धर्म और भी जटिल और गहरा, अधिक गहरा है। यही कारण है कि हिंदू धर्म तंत्र के विभिन्न आयामों का विकास कर सका है। तो जिसको तुम लोग पाप कहते हो उसका भी उपयोग किया जा सकता है। एक ढंग से हिंदू धर्म बहुत स्वस्थ है–निस्संदेह यह अराजक है, लेकिन जो भी स्वस्थ है वह अराजक होने के लिए बाध्य है, उसे अराजक होना पड़ता है। इसे व्यवस्था में नहीं बांधा जा सकता है। इसको व्यवस्थित नहीं किया जा सकता है।

आज इतना ही।

समाप्त